सङ्गीत-चिन्तन

प्रथम-खण्ड

डा० सौभाग्य वर्द्धन बृहस्पति

Scanned with OKEN Scanner

सङ्गीत-चिन्तन

प्रथम खण्ड

डॉ. सौभग्यवर्धन बृहस्पति

ISBN : 81-8247-022-6

मूल्य	:	695 रुपये
संस्करण	:	2004
आवरण	:	आर.पी. वर्मा
प्रकाशक	:	अभिषेक पब्लिकेशन्ज़ एस.सी.ओ. 57–59 सेक्टर 17–सी, चण्डीगढ़
लेज़र टाइपसेटिंग	:	आधार ग्राफ़िक्स, पंचकूला
मुद्रक	:	बालाजी ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली

Price : Rs. 695.00

SANGEET CHINTAN by Dr. S.V. Brihaspati

Scanned with OKEN Scanner

ॐ नमो नाद ब्रह्मणे

दो शब्द

''सङ्गीत-चिन्तन'' का प्रथम खण्ड सहृदय पाठकों के करकमलों में प्रस्तुत है। इसमें २८ लेख हैं, जो मैंने समय-समय पर लिखे हैं। मुझे आशा ही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक सभी सङ्गीत प्रेमियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। इस पुस्तक में प्रस्तुत लेखों में सङ्गीत के ऐतिहासिक पक्षों के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया है ।

मैं सङ्गीत का एक विद्यार्थी हूँ तथा जो कुछ भी मैं अपने अध्ययन में समझ पाता हूँ, उसको लेखनीबद्ध करने का प्रयास करता हूँ। यही प्रयास मेरे जीवन का लक्ष्य है ।

प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे शोध-परक लेखों को स्थान दिया गया है जो सङ्गीत के विद्यार्थियों के लिए तथा साङ्गीतिक शोध-कर्ताओं के लिए विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध होंगे।

कु० (डा०) शरयू कालेकर [जो श्रीमती सुलोचना बृहस्पति की बहन हैं तथा इंदिरा कला सङ्गीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छत्तीसगढ़) की भूतपूर्व उपकुलपति भी रह चुकी हैं] जो स्वयं एक सङ्गीत-साधिका हैं तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन की 'ए' श्रेणी की कलाकार हैं तथा आचार्य्य जी की सुयोग्य शिष्याओं में अग्रणी स्थान रखती हैं, ने इस पुस्तक का आमुख लिखकर मेरा उत्साहवर्द्धन किया है । आपने आचार्य्य बृहस्पति पर एक ग्रन्थ 'रामपुर सदारङ्ग परम्परा और प्रतिनिधि- आचार्य बृहस्पति' की रचना भी की है, इसलिये मेरी इस पुस्तक के लिए डा० शरयू कालेकर से अधिक उपयुक्त और कोई हो ही नहीं सकता । इस उत्साहवर्द्धन के लिए मैं उनका बहुत आभारी हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वह मेरा मार्गदर्शन करती रहेंगी।

मेरी प्रात: स्मरणीय गुरु व माता श्रीमती सुलोचना बृहस्पति का आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा है। यह उन्हीं का वरद्हस्त है, जिससे मैं इस पुस्तक को सङ्गीत

Scanned with OKEN Scanner

जगत् के समक्ष प्रस्तुत करने का साहस जुटा पाया।

सङ्गीत-चिन्तन का द्वितीय खण्ड भी शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। मैं अभिषेक पब्लिकेशन्स का विशेष रूप से आभारी हूं जिनके प्रयास से यह पुस्तक आप कलाप्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत हो सकी। श्री बी० एस० भारद्वाज का भी मैं अत्यन्त आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को टाइप किया है।

अन्त में अपने सभी गुरुओं, शुभचिन्तकों का भी आभार प्रकट करता हूँ जिनके आशीर्वाद व स्नेह से यह पुस्तक प्रस्तुत हो सकी।

इस विश्वास के साथ कि यह पुस्तक सङ्गीत के जिज्ञासुओं, विद्यार्थियों तथा शोधार्थियों के लिए सहायक सिद्ध होगी, मैं अकिञ्चन इसे अपने परम पूज्य पिता का तर्पण समझकर उनके चरणों में समर्पित करता हूँ।

धन्यवाद

डॉ० सौभाग्य वर्द्धन 'बृहस्पति'
२६९, सैक्टर २२-ए, चण्डीगढ़
दूरभाष: ०१७२-२७०६२४४

Scanned with OKEN Scanner

आमुख

डॉ० सौभाग्य मेरे शिष्य भी हैं तथा मेरी बहन सुलोचना के पुत्र भी। इनके आग्रह को न मानना मेरे लिए एक दुष्कर कार्य्य है।

सौभाग्य की यह दूसरी पुस्तक है, जो सङ्गीत प्रेमियों के लिए प्रकाशित हो रही है। इनकी पहली पुस्तक '**भारतीय सङ्गीत के आप्त ऋषि आचार्य्य बृहस्पतिः एक अध्ययन**' कुछ समय पहले प्रकाशित हुई थी ।

इस पुस्तक की भूमिका लिखने का कार्य्य मुझे सौंपा गया है। जैसा कि मैं पहले भी लिख चुकी हूँ कि भूमिका लिखना एक कठिन कार्य्य है, क्योंकि यह लेखक के साथ अन्याय होगा, यदि पुस्तक के विषय में पाठकों को कुछ अधिक जानकारी दे दी जाय, परन्तु यदि पुस्तक का अध्ययन भूमिका की लेखिका का विषय बन जाय तो, अपने उद्‌गार प्रकट किए बिना वह रह नहीं सकती।

सर्वप्रथम इस पुस्तक के पाठकों को इस तथ्य से अवगत कराना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है कि इसके लेखक स्व० आचार्य्य बृहस्पति के सबसे छोटे पुत्र डॉ० सौभाग्य हैं। सौभाग्य अठारह वर्ष की अवस्था से मेरे पास हैं तथा मेरे लिए पुत्रवत् हैं तथा मेरे गुरु स्व० आचार्य्य बृहस्पति के पुत्र हैं। बाल्यकाल से ही इन्होंने अपने पिता को निरन्तर कार्य्य करते हुए देखा है। इसलिए निरन्तर कार्य्य करना इनकी भी आदत है। यही कारण है कि यह पुस्तक आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल अट्ठाईस ऐसे लेख हैं जो सङ्गीत प्रेमियों के लिए लाभदायक सिद्ध होंगे। इन लेखों में सङ्गीत की विभिन्न विधाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है।

प्रथम लेख "**ध्रुवपद का जन्म्, विकास तथा घराने**" में ध्रुवपद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है तथा ध्रुवपद के विभिन्न घरानों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। ध्रुवपद के विकास के विभिन्न चरणों का वर्णन भी किया गया है ।

Scanned with OKEN Scanner

दूसरा लेख **"भारतीय सङ्गीत और ख़याल गायन के घराने"** हैं इसमें घरानों के जन्म् से लेकर ख़याल गायन के विभिन्न घरानों तथा उनकी विशेषताओं का वर्णन किया गया है ।

तीसरा लेख **"सङ्गीत में लय का एक आधार वाद्य : तबला"** है। तबले के जन्म् से लेकर तबले के आधुनिक घरानों तक का वर्णन इसमें किया गया है। तबले के जन्म् के विषय में भ्रान्त धारणाओं का वर्णन भी इसमें किया गया है, धारणाओं को सिद्ध करने के लिए आचार्य्य बृहस्पति की पुस्तकों को आधार बनाया गया है ।

चौथा लेख **"ठुमरी : एक अध्ययन"** है। सङ्गीत की इस विधा का वर्णन विशद् रूप में किया गया है। भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र क्रमिक पुस्तक मलिका के विभिन्न खण्डों का अध्ययन भी सूक्ष्मता से किया गया है। पंजाब तथा पूरब अंग की ठुमरियों के घरानों का वर्णन भी किया गया है।

पाँचवाँ लेख **"आलाप एवं भारतीय सङ्गीत"** है। इस लेख में आलाप का विशद् वर्णन किया गया है तथा गायन वादन में राग की बढ़त के लिए स्वस्थान नियमों को उदाहरण सहित समझाया गया है ।

छठा लेख **" स्व० आचार्य्य बृहस्पति एवम् भारतीय सङ्गीत"** है। इस लेख में आचार्य्य जी की जीवन शैली तथा व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है । रामपुर की साङ्गीतिक परम्परा का भी विशद् वर्णन किया गया है। आचार्य्य जी के परिवार के सम्बन्ध में भी काफी जानकारी दी गई है ।

सातवाँ लेख **"राग ध्यान चित्र"** है। इस लेख में राग ध्यान चित्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन किया गया है तथा वर्तमान परिपेक्ष में इसका क्या महत्त्व है, इसका वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है ।

आठवाँ लेख **"गान में छन्द ताल : एक अध्ययन"** है। सङ्गीत के विद्यार्थियों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण लेख है क्योंकि बंदिश की रचना करते समय ताल को ध्यान में रखते हुए रचना किस प्रकार करनी चाहिए, इसका वर्णन इस लेख में बहुत ही विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया गया है ।

Scanned with OKEN Scanner

नौंवा लेख **"राग मिश्रण के सिद्धान्त"** है। जैसा कि नाम से ही विदित है, इस लेख में राग मिश्रण के सिद्धांतों का वर्णन बहुत ही सूक्ष्मता से किया गया है। किस प्रकार दो या दो से अधिक रागों को मिलाया जाना चाहिए तथा और किन-किन सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाना चाहिए, इस का वर्णन किया गया है ।

दसवां लेख **"कान्हड़ा अङ्ग के रागों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि"** है। इस लेख में कान्हड़ा अङ्ग के रागों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुए कान्हड़ा अङ्ग के रागों साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है ।

ग्यारहवाँ लेख **"तोड़ी थाट तथा राग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि"** है। इसमें जैसा कि नाम से ही विदित है तोड़ी थाट का ऐतिहासिक वर्णन दिया गया है तथा तोड़ी थाट के रागों का भी वर्णन किया गया है।

बारहवाँ लेख है **"बिलावल थाट तथा राग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि"**। इस लेख में बिलावल ठाठ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देते हुए बिलावल ठाठ के रागों का वर्णन भी किया गया है।

तेरहवाँ लेख **"ठाठ सिद्धान्त या मेल सिद्धान्त की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि"** है। यह लेख आचार्य्य जी की पुस्तक राग-रहस्य प्रथम भाग से लिया गया है। रामपुर सदारङ्ग परम्परा में ठाठ लौटने के सिद्धन्त का साङ्गोपाङ्ग वर्णन इस लेख में किया गया है ।

चौंदहवाँ लेख है **"नायक-नायिका भेद"**। इस लेख में भी नायक-नायिका भेद का वर्णन विशद् रूप में किया गया है। नृत्य के विद्यार्थियों के लिए भी यह लेख काफी महत्त्वपूर्ण है।

पन्द्रहवाँ लेख है **"ख़याल गायन में शब्दार्थ की उपेक्षा"**। यह लेख गायन के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । ख़याल गायन में शब्दों की उपेक्षा कब से आरम्भ हुई तथा इसके पीछे क्या कारण रहे, इन तथ्यों को इस लेख में उजागर किया गया है ।

Scanned with OKEN Scanner

सोलहवाँ लेख है **"रागों में स्वरों का सच्चा लगाव या प्रयोग"** यह एक महत्त्वपूर्ण लेख है, जो गायन तथा वादन दोनों के विद्यार्थियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण लेख है।

सत्रहवाँ लेख **"संहति और अनुगति (Harmony & Melody)"** है, इस लेख में हार्मनी तथा मेलोडी का पूर्ण विवरण दिया गया है। हार्मनी का इतिहास क्या है, यह कितने प्रकार की होती है इत्यादि का वर्णन दिया गया है।

अट्ठारहवाँ लेख है **"राग और भाव"** इस लेख में किन-किन रागों के साथ भावों के सम्बन्ध को तथा स्वरों के साथ भावों के सम्बन्ध को दर्शाया गया है ।

उन्नीसवाँ लेख है **"समप्रकृतिक रागों में अन्तर"**। यह भी एक पठनीय लेख है तथा गायन तथा वादन दोनों विधाओं के विद्यार्थियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण लेख है। समप्रकृतिक राग एक दूसरे से कैसे अलग होते हैं, उनके क्या सिद्धांत होते हैं, इनका वर्णन इस लेख में सैद्धान्तिक रूप से किया गया है ।

बीसवाँ लेख है **"तानपुरा-एक अध्ययन"** । सङ्गीत गायन का आधार वाद्य तानपुरा है तथा आजकल इसका प्रयोग वादन में भी उन्मुक्त रूप से हो रहा है। इसका विशद् वर्णन इस लेख में किया गया है ।

इक्कीसवाँ लेख **"नाद और उसका रूप"** है। सारा संसार नादमय है। नाद के बिना कुछ भी सम्भव नहीं, नाद के प्रकार क्या हैं? नाद के रूप क्या हैं? नाद का महत्त्व क्या है? इस लेख में यही वर्णन किया गया है ।

बाईसवाँ लेख इस पुस्तक में दिया गया है **"सौन्दर्य"** । इसमें पहले सौन्दर्य का वर्णन किया गया है, तदुपरान्त सङ्गीत में सौन्दर्य के महत्त्व का वर्णन किया गया है। कला प्रदर्शन के समय किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए, उन सिद्धान्तों को भी इस लेख में स्थान दिया गया है ।

तेईसवां लेख **"सङ्गीत सम्बन्धी कुछ किंवदन्तियाँ और वास्तविक इतिहास"** है। इसमें महान सङ्गीतज्ञ तानसेन विषयक कुछ तथ्य उजागर किए गए हैं।

Scanned with OKEN Scanner

चौबीसवाँ लेख **"घरानेदार गायकी" के सिद्धान्तों का निरूपण : एक अध्ययन"** है। इसमें श्री वामन राव देशपाण्डे जी की पुस्तक घरानेदार गायकी का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है। यह एक पठनीय लेख है।

पच्चीसवाँ लेख **"जिकरी, जकरी, जक्करी, जगड़ी या झकरी"** भी एक पठनीय लेख है।

छब्बीसवाँ लेख है "ध्रुवपद व धमार की लोकप्रियता कैसे सम्भव हो?" ध्रुवपद गायन की विधा का लोप हमारे देश में होता चला जा रहा है तथा विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों ने उसको महज गणित बनाकर रख दिया है। दुगुन, चौगुन तथा अठगुन इत्यादि ही ध्रुवपद बनकर रह गए हैं। सच माना जाय तो इस विधा के सत्यानाश में सङ्गीत शिक्षकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसकी लोकप्रियता कैसे सम्भव हो सकती है, इसका वर्णन इस लेख में किया गया है।

सत्ताईसवां लेख है **"पंजाब और सङ्गीत"**। पंजाब में सङ्गीत के उत्थान व पतन का वर्णन इस लेख में किया गया है। पंजाब के घरानों का संक्षिप्त विवरण भी किया गया है ।

अट्ठाईसवां लेख है **"पंजाब का लोक-सङ्गीत"** है। पंजाब के लोक सङ्गीत के विषय में जो जिज्ञासु कुछ विवरण प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए यह लेख महत्त्वपूर्ण है ।

परमपिता परमेश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि सौभाग्य को इतनी शक्ति प्रदान करे कि वह निरन्तन सङ्गीत के लिए कार्य्यरत रहें, मेरा उनके लिए यही आशीर्वाद है।

कु० (डा०) शरयू कालेकर
भूतपूर्व-उपकुलपति
इंदिरा कला सङ्गीत विश्वविद्यालय,
खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)

1. ध्रुवपद का जन्म, विकास तथा घराने (पृ० 1-19)

गौरारी बानी -5, खण्डारी बानी- 5, डांगरी बानी -5, नौहारी बानी -6, राजस्थान-7, बिहार [दरभंगा]-8, बिहार [बेतिया]-9, मथुरा घराना-10, विष्णुपुर घराना-13, आगरा घराना-16

2. भारतीय सङ्गीत और ख़याल गायन के घराने (पृ० 20-27)

ग्वालियर घराना-22, अतरौली घराना-23, आगरा घराना-23, किराना घरा-24, दिल्ली घराना-25, पटियाला घराना-25, रामपुर घराना-26

3. सङ्गीत में लय का आधार वाद्य : तबला (पृ० 28-35)

जन्म्-28, दिल्ली घराना-31, अजराड़ा घराना-31, लखनऊ घराना-32, फर्रुखाबाद घराना-32, बनारस घरना-33, पंजाब घराना-34

4. ठुमरी : एक अध्ययन (पृ० 36-45)

ठुमरी का जन्म्-36, क्र० पु० म० की ठुमरियाँ-32, ठुमरी का अर्थ-38, ठुमरी की तालें-39, ठा० जयदेव सिंह के विचार-40, ठुमरी अङ्ग व ठुमरी शैली-41, पूरब अङ्ग की ठुमरियाँ-43, पंजाब अङ्ग की ठुमरियाँ-43

5. आलाप एवं भारतीय सङ्गीत (पृ० 46-52)

आलाप का अर्थ-46, आधुनिक आलाप गान-47, नोम-तोम-47,आलाप के चार भाग-48,आलाप में लय की गति-48,आचार्य्य बृहस्पति द्वारा चार स्वस्थान-48,

Scanned with OKEN Scanner

भातखण्डे जी का कथन-50, सवाल-जवाब-50, सवाल जवाब अथवा राग-सम्वाद-51, राग का अविर्भाव करने का तरीका-51, एमन के माध्यम से चार स्वस्थान-52

6. स्व० आचार्य्य बृहस्पति एवं भारतीय सङ्गीत (पृ० 53-61)

नवाब हामिद अली खाँ के दरबारी कलाकार-53, आचार्य्य बृहस्पति का जीवन वृत्त-54, आचार्य्य जी की शिक्षा-दीक्षा-55, उत्तर भारतीय सङ्गीत को देन-56, प्रो० देवधर के विचार-59

7. राग ध्यान-चित्र (पृ० 62-70)

राग ध्यान परम्परा-62, गीतियाँ-देवरूप-63, स्वरों के रङ्ग-64, राग-ध्यानों का आधार-64, राग ध्यानों के चित्र श्लोकों के रूप में-65, राजस्थानी चित्रकला में रागों का स्वरूप-65, राग ध्यानों के रूप-66, भैरव का ध्यान-67, रागिनी भैरवी का ध्यान-67, हिन्दी रागमाला-67, स्वरों के देवता, जाति, रस-70

8. गान में छन्द और ताल : एक अध्ययन (पृ० 71-75)

छन्द का अर्थ-71, छन्द के प्रकार-71, अद्धा ताल का उदाहरण-73, तिलवाड़ा ताल का उदाहरण-73, झपताल का उदाहरण-74

9. राग-मिश्रण के सिद्धान्त (पृ० 76-86)

राग मिश्रण का अर्थ-76, मिश्र राग के नियम-77, राग मिश्रण के तत्त्व-78, भातखण्डे जी का मत-80, रामपुर परम्परा-80, सप्तश्रुति का सम्बन्ध-82, लाग-डाट से स्वरों का प्रयोग-83, रामपुर के छम्मन साहिब की परम्परा-85

Scanned with OKEN Scanner

10. कान्हड़ा-अङ्ग के रागों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (पृ० 87-103)

दरबारी तथा कान्हड़ा -87, कान्हड़ा के प्रमुख अट्ठारह प्रकार-87, विभिन्न ग्रन्थों में कान्हड़ा-88, कानड़ा की उत्पत्ति-90, शुद्ध कानड़ा-91, कानड़ा के मुख्य अङ्ग-91, ग्रन्थों में पाये जाने वाले कानड़ा के प्रकार-91, अभिनव राग मंजरी-92, सङ्गीत सुधाकर-94, सङ्गीतानुपांकुश-95, गीत सूत्रधार के अट्ठारह प्रकार-96, कौंसी कानड़ा के विषय में आ० बृ० के विचार-102, कानड़ा के प्रकार के 30 राग-103

11. तोड़ी थाट तथा राग की ऐतिहासिक पृष्ठभमि (पृ० 104-121)

सर्वप्रथम मतङ्ग द्वारा राग शब्द की व्याख्या-104, मूर्च्छना -105, तोड़ी राग तथा सम्बन्धित रागों का विवरण -मतङ्ग कृत बृहद्देशी-106, श्री पार्श्वदेव कृत सङ्गीत-समयसार-106, श्रीलोचन कृत रागतरङ्गिणी-107, रामामात्य कृत स्वर मेल कलानिधि -107, पुण्डरीक विट्ठल कृत सद्रागचन्द्रोदय-107, दामोदर कृत सङ्गीतदर्पण-108, व्यंकटमखी कृत चुतुर्दन्डीप्रकाशिका-108, हृदय नारायण देव कृत हृदय प्रकाश -108, श्री कण्ठ कृत रस कौमुमदी-108, भावभट्ट कृत अनूपसङ्गीत विलास-108, अहोबल कृत सङ्गीतपरिजात-108, तुलाजी कृत सङ्गीतसारामृत-109, पं० सुदर्शनाचार्य कृत-सङ्गीतसुदर्शन-109, हरिनारायण कृत ध्रुवपद स्वरलिपि-109, श्रीगोपेश्वर कृत सङ्गीत मंजरी-110, भातखण्डे जी द्वारा तोड़ी थाट व राग-115, आचार्य्य बृहस्पति के विचार-116, लक्ष्मी तोड़ी,-119

12. बिलावल थाट तथा राग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (पृ० 122-132)

बिलावल की पृष्ठभूमि-122, दक्षिण का शंकराभरण थाट-123, क्र० पु० म० भाग-2 में अल्हैया बिलावल-123, राग रहस्य-प्रथम भाग में शुद्ध बिलावल व अल्हैया बिलावल-126, देवगिरी व भातखण्डे जी-127, एमनी-बिलावल-128, शुक्लविलावल अथवा सुकल बिलावल-129, कुकुभ बिलावल-130

Scanned with OKEN Scanner

13. ठाठ-सिद्धान्त या मेल-सिद्धान्त की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (पृ०133-148)

पायथॉगोरस पद्धति-133, अकबरी दरबार व विभिन्न ठाठ-133, कल्याण मूल ठाठ क्यों?-134, सदारङ्ग परम्परा के दस ठाठों में सवाल-जवाब अर्थात परस्पर सम्वादी यमक-137, अपसृत भिन्न यमक-138, षड्ज-पंचम हीन संश्लिष्ट यमक-139, सदारङ्ग परम्परा में रागों के शिक्षण का क्रम-141, सदारङ्ग परम्परा में वादी-सम्वादी एवं न्यास-अपन्यास स्वर-142, राग की बढ़त-144, बन्दिश याद करने व गाने का ढंग-145, ताल में तान के कहने का ढंग-147

14. नायक-नायिका भेद (पृ० 149-172)

भूमिका-149, नायक-150, धीरोदात्त नायक-151, धीरोद्धत नायक-151, धीर ललित नायक-151, धीर प्रशान्त नायक-151, धर्मानुसार भेद-152, उपपति के भेद-153, अवस्थानुसार नायक भेद-153, नायकों में सहायक-153, श्रृंगार में सहायक-154, अंत:पुर में सहायक-154, नायिका भेद-155, धर्म्म, प्रकृति तथा जाति और अवस्था के अनुसार नायिका भेद-157, मुग्धा-157, अज्ञात यौवना, ज्ञात-यौवना-158, मध्या धीरा-160, मध्या धीराधीरा-160, मध्या अधीरा-160, प्रौढ़ा या प्रगल्भा -160, प्रौढ़ा भेद-169, रति-प्रिया-161, आनन्द सम्मोहिता-161, प्रौढ़ा धीरा-161, प्रौढ़ा धीरा-धीरा-161, मध्या व प्रौढ़ा के अन्य भेद-162, सुरत दुखिता-गर्विता-रूपगविर्तता-प्रेम गर्विता-मानवती-162, स्वकीया के विशेष भेद-ज्येष्ठा-कनिष्का-प्रौढ़ा के अन्य भेद-स्मरा-धा- गाढ तारुण्या- समस्त रति- केविदा-भावोन्नता-दरव्रीड़ा- आक्रान्त नायिका-परकीया नायिका-163, परकीया के भेद-ऊढा-अनूढा-उढ़ा-अनूढ़ा के भेद-उद्बुद्धा-उद्बोधिता-परकीया के अन्य भेद -सुरत गुप्ता-भूत सुरत सांगोपना-164, वर्तमान सुरत संगोपना-भविष्यत सुरत संगोपना- विदग्धा-वचन विदग्धा क्रिया विदग्धा-लक्षिता-कुलटा- अनुशयना-165, संकेत विघट्टना भावी संकट नष्टा-रमण गमना-मुदिता-166, गणिका या सामान्या जननी- अधीना-स्वतंत्रता-प्रकृति के अनुसार नायिका भेद-166, उत्तमा- मध्यमा-अधमा-167, जाति के अनुसार नायिका भेद-पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी-167, अष्ट नायिका या अवस्थागत नायिका भेद-प्रोषित पतिका- खण्डिता-कलहान्तरिता, विप्रलब्धा-उत्कंठिता-168

Scanned with OKEN Scanner

13. ठाठ-सिद्धान्त या मेल-सिद्धान्त की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (पृ० 133-148)

पायथॉगोरस पद्धति-133, अकबरी दरबार व विभिन्न ठाठ-133, कल्याण मूल ठाठ क्यों?-134, सदारङ्ग परम्परा के दस ठाठों में सवाल-जवाब अर्थात परस्पर सम्वादी यमक-137, अपसृत भिन्न यमक-138, षड्ज-पंचम हीन संश्लिष्ट यमक-139, सदारङ्ग परम्परा में रागों के शिक्षण का क्रम-141, सदारङ्ग परम्परा में वादी-सम्वादी एवं न्यास-अपन्यास स्वर-142, राग की बढ़त-144, बन्दिश याद करने व गाने का ढंग-145, ताल में तान के कहने का ढंग-147

14. नायक-नायिका भेद (पृ० 149-172)

भूमिका-149, नायक-150, धीरोदात्त नायक-151, धीरोद्धत नायक-151, धीर ललित नायक-151, धीर प्रशान्त नायक-151, धर्मानुसार भेद-152, उपपति के भेद-153, अवस्थानुसार नायक भेद-153, नायकों में सहायक-153, शृंगार में सहायक-154, अंतःपुर में सहायक-154, नायिका भेद-155, धर्म्म, प्रकृति तथा जाति और अवस्था के अनुसार नायिका भेद-157, मुग्धा-157, अज्ञात यौवना, ज्ञात-यौवना-158, मध्या धीरा-160, मध्या धीराधीरा-160, मध्या अधीरा-160, प्रौढ़ा या प्रगल्भा -160, प्रौढ़ा भेद-169, रति-प्रिया-161, आनन्द सम्मोहिता-161, प्रौढ़ा धीरा-161, प्रौढ़ा धीरा-धीरा-161, मध्या व प्रौढ़ा के अन्य भेद-162, सुरत दुखिता-गर्विता-रूपगविर्तता-प्रेम गर्विता-मानवती-162, स्वकीया के विशेष भेद-ज्येष्ठा-कनिष्का-प्रौढ़ा के अन्य भेद-स्मरा-धा- गाढ तारुण्या- समस्त रति- केविदा-भावोन्नता-दरव्रीड़ा- आक्रान्त नायिका-परकीया नायिका-163, परकीया के भेद-ऊढा-अनूढा-उढ़ा-अनूढ़ा के भेद-उद्बुद्धा-उद्बोधिता-परकीया के अन्य भेद -सुरत गुप्ता-भूत सुरत सांगोपना-164, वर्तमान सुरत संगोपना-भविष्यत सुरत संगोपना- विदग्धा-वचन विदग्धा क्रिया विदग्धा-लक्षिता-कुलटा- अनुशयना-165, संकेत विघट्टना भावी संकट नष्टा-रमण गमना-मुदिता-166, गणिका या सामान्या जननी- अधीना-स्वतंत्रता-प्रकृति के अनुसार नायिका भेद-166, उत्तमा- मध्यमा-अधमा-167, जाति के अनुसार नायिका भेद-पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी-167, अष्ट नायिका या अवस्थागत नायिका भेद-प्रोषित पतिका- खण्डिता-कलहान्तरिता, विप्रलब्धता-उत्कंठिता-168, वासकसज्जा-स्वाधीन पति का-अभिसारिका-शुक्लाभिसारिका-कृष्णाभिसारिका-

Scanned with OKEN Scanner

दिवाभिसारिका-प्रवत्स्यत् पतिका-आगत पतिका-169, स्वकीया-170, गायन शैलियों में परिवर्तन-171, रागिनी व नायिका रूप-171

15. ख़याल गायन में शब्दार्थ की उपेक्षा (पृ० 173-177)

भातखण्डे के विचार-173, शब्दार्थ भक्षण का इतिहास, 174, बंदिश करने के अधिकारी-175

16. रागों में स्वरों का सच्चा लगाव या प्रयोग (पृ० 178-189)

षड्ज मध्यम-षड्ज-पंचम भाव से प्राप्त स्वर-178, तोड़ी का थाट-181, मुलतानी का थाट-182, बागेश्री का थाट-183, बागेश्री-186, भीमपलासी में प्रयोज्य स्वर-187, मुलतानी का थाट -189

17. संहति और अनुगति (HARMONY & MELODY) (पृ० 190-202)

हार्मनी अर्थ-190, हार्मनी का इतिहास-191, सिंपल हार्मनी-मेगाडाइजिंग हार्मनी - आर्गानाइजिंग हार्मनी -कॉमप्लीकेटेड हार्मनी-193, अनुगति (MELODY)-196मैलोडी सङ्गीत की विशेषताएँ-198, हार्मनी व मेलोडी में विभिन्नताएँ-200, हार्मनी तथा मेलोडी का प्रयोग-202

18. राग और भाव (पृ० 203-209)

अनुभाव-203, संचारी भाव -कला मुख्य चार रस-204, राग व इनके ध्यान 205, षाड्जी जाति का ध्यान-206

19. समप्रकृतिक रागों में अन्तर (पृ० 210-216)

राग गायन का अर्थ-210, थाट-210, स्वरों का महत्व-211, वादी-संवादी

Scanned with OKEN Scanner

स्वर विस्तार क्षेत्र–राग की प्रकृति–पूर्वराग व उत्तर राग–
तिरोभाव–212, खमाज थाट के राग–तिलंग का स्वरूप–दुर्गा, रागेश्री–214, कानड़ा अङ्ग के राग–धनाश्री अङ्ग के राग–215

20. तानपुरा—एक अध्ययन (पृ० 217–224)

तानपुरा क्या– 217, तानपुरे की प्रगति–217, तानपुरे का महत्व–219, विशेषता–220, भारतीय साङ्गीतिक गूँज के सिद्धांत–221, ड्रोन–222, विभिन्न वाद्यों में ड्रोन का प्रयोग–223, ड्रोन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

21. नाद और उसका रूप (पृ० 225–230)

नाद का अर्थ–225, शब्द साधना, स्थान–प्रयत्न–227, नासिक्य या अनुनासी–229, दन्त्य–वर्त्स्य–230

22. सौन्दर्य (पृ० 231–247

सौन्दर्य का अर्थ–231, सौन्दर्य की पाश्चात्य अवधारणा–आत्मवादी दृष्टिकोण–वस्तुवादी दृष्टिकोण –234, भाववादी दृष्टिकोण – सौन्दर्य – वस्तुनिष्ठ या व्यक्तिनिष्ठ–सौन्दर्य की भारतीय अवधारणा–सौन्दर्य के पर्य्यायवाची शब्द–235, सौन्दर्य की अनुभूति–236, सौन्दर्यशास्त्र–237, कला में वास्तविकता–239, रस से सम्बन्ध–प्रकृति और सौन्दर्य – 241, कला व सौन्दर्य– 241, सङ्गीत में सौन्दर्य की अनुभूति–242, साङ्गीतिक सौन्दर्योत्पत्ति के नियम–246

23. सङ्गीत सम्बन्धी कुछ किंवदन्तियाँ और वास्तविक इतिहास (पृ०248–253)

तानसेन सम्बन्धी भ्रान्तियाँ–248, तानसेन की समाधि 249, तानसेन सम्बन्धी कुछ प्रश्न–249, औरंगजेब–252

Scanned with OKEN Scanner

24.'घरानेदार गायकी' के सिद्धान्तों का निरुपण:एक अध्ययन (पृ०254-261)

घराने के उद्‌भव के कारण-254, किराना-254, आगरा-ग्वालियर-255, अल्लादिया खाँ की गायकी-256, तालीम-258

25. ज़िकरी, जकरी, जक्करी, जगड़ी या झकरी (पृ० 262-265)

26. ध्रुवपद व धमार की लोकप्रियता कैसे सम्भव हो ? (पृ० 266-270)

ध्रुवपद के लक्षण - 266, ध्रुवपद की गायकी-267, आलाप-268, धमार-269

27. पंजाब और सङ्गीत (पृ० 271-279)

इतिहास -271, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक अवस्था-272, धार्मिक परिस्थितियां- 273, पंजाब का आभिजात्य वर्ग-274, धर्म्म का योगदान-274, मीरासी-275, विभिन्न रूप-275, समय चक्र के लोक गीत-276, संस्कार सम्बन्धी लोकगीत-276, घोड़ियाँ-सिठणियाँ-वैण-अलाहणे, स्फुट लोकगीत-277, प्रबन्धात्मक लोक काव्य-278

28. पंजाब का लोक सङ्गीत (पृ० 280-298)

अनुष्ठान गीत-संस्कार गीत-ऋतुओं तथा त्यौहारों के गीत-281, कार्य्यगीत-प्रेमगीत-लोकगाथाओं पर आधारित गीत, वीर गाथाओं पर आधारित गीत-पृत्य गीत-282, पेशावरों अथवा ज़ातियों के गीत-विविध गीत-283, घोड़ियाँ-सिट्ठणियां-283, छन्द-मृत्यु सम्बन्धी गीत-286, जिन्दुआ-टप्पे-287, माहीआ-बोलियाँ-290, हीर-रांझा--295, लोकगीतों में प्रयुक्त लोकवाद्य-297, पंजाब के लोकगीतों की विशेषताएं-297

ध्रुवपद का जन्म, विकास तथा घराने

'ध्रुवपद' का आधुनिक नाम ध्रुपद हो गया है। 'ध्रुपद' शब्द संस्कृत के ध्रुवपद शब्द का अपभ्रंश तथा हिन्दी नाम है । यह दो शब्दों के मेल से बना है। (१) ध्रुवा अथवा ध्रुव (२) पद। ध्रुव से तात्पर्य है 'नियत' एवं दृढ़ तथा 'पद' वह है जो गेय अथवा गाये जाने योग्य हो, जो निश्चित स्वर व ताल के आकार प्रकार में निबद्ध हो, जिसको गाते समय किञ्चित मात्र भी बदला न जा सके। ध्रुपद शब्द जिसका गायकों में प्रचार है, संस्कृत के ध्रुवपद शब्द का अपभ्रंश है। 'ध्रुव' का अर्थ है 'नियत' विशिष्ट रूप से रचित, पद का अर्थ है 'गेय शब्द समूह' अर्थात् ध्रुवपद वह गान है जिसका प्रत्येक शब्द निश्चित स्वर तथा ताल में निबद्ध हो।[1] भरत के अनुसार 'ध्रुवा' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है— वर्ण, अलंकार, लय, यति एवं उपपाणि, इन अंगों के पारस्परिक ध्रुव अथवा नियत सम्बन्ध के कारण यह ध्रुवा कहलाती हैं। 'पद' शब्द की व्याख्या करते हुए मुनि भरत कहते हैं कि 'पद' अक्षर से सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु कहलाती है।[2] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ध्रुवपद का तात्पर्य उस साङ्गीतिक अभिव्यंजना से है, जिसमें साहित्यिक विषय-वस्तु तथा गायन के निश्चित नियमों का पालन दृढ़ता से होता है। सङ्गीत मकरंद में ध्रुवपद का वर्णन इस प्रकार है:— इसमें उद्ग्राह, ध्रुवक तथा आभोग नामक तीन तुकें होती हैं, कुछ विद्वान उसे उद्ग्राह रहित तथा कुछ आभोग रहित गाते हैं तथा कुछ विद्वान ध्रुव भाग को ही ध्रुवपद कहते हैं।[3] मानकुतूहल रचित ग्रन्थ के फारसी अनुवाद ग्रन्थ 'राग-दर्पण' के अनुसार 'ध्रुवपद' में चार पंक्तियाँ होती हैं, ध्रुवपद की भाषा देशी होती है। 'ध्रुवपद' को समस्त रसों में बांधा जा सकता है।[3] गायक तानसेन ने अपने ध्रुवदों में ध्रुवपद को इस प्रकार लक्षित किया है —

"जो धुरपद नां सुध अछिरनि उक्त जुक्त न सङ्गीत राग बनावै,
जो अग्यांन गुनी मन को पचावै भिम से निरगुनि को कीयौ गावै।
नौं रस राग जाने न अ लोकमध वाद री कवि कहावै,
साहि अकबर की सौं मोहि तौं दुषं और हांसी याही ते आवति अरथ पूछे ते कवि
नाहिं कर आवै।"[4]

Scanned with OKEN Scanner

अबुल फ़ज़ल ने 'आइनेअकबरी' में लिखा है—

'ध्रुवपद' तीन या चार लयबद्ध पंक्तियों से निर्मित पद है। इन पंक्तियों की लम्बाई अनिश्चित है। ध्रुवपद का विषय प्रधानतया पौरुषवान एवं गुणवान व्यक्तियों की प्रशंसा करना होता है। 'ध्रुवपद' का प्रचलन आगरा, ग्वालियर तथा आसपास के प्रदेशों में है।[५] अबुल फ़ज़ल कृष्ण के वर्णन से युक्त पदों को विष्णुपदों की संज्ञा देते हैं, ध्रुवपद की नहीं। इन्होंने ध्रुवपद गायकों तथा विष्णुपद गायकों को क्रमशः कलावंत तथा कीर्तनिया कहा है। वह चार या छह पंक्तियों से युक्त कृष्णविषयक पदों को 'विष्णुपद' लिखते हैं; जो मथुरा में गाये जाते हैं।

भावभट्ट ने (१८वीं शताब्दी) ध्रुवपद के लक्षण इस प्रकार दिये हैं-

गीर्वाण मध्यदेशीय भाषा साहित्यराजितम्,
द्विचतुर्वाक्य सम्पन्नं नरनारी कथाश्रयम्।
श्रृंगाररस भावाढ्यं रागालापपदात्मकम्,
पादान्तानुप्रासयुक्तं पादान्तयमकं च वा।
प्रतिपादं यत्र बद्धमेव पादचतुष्टयम्,
उद्ग्राह ध्रुवकाभोगोत्तमं ध्रुवपद स्मृतम्।[६]

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार— ध्रुवपद में चार, पाँच चरण होते हैं, कभी-कभी दो चरण भी होते हैं। चरण का अर्थ 'तुक' से लेते हुए उन्होंने प्रथम तुक को (चरण) 'आस्ताई' द्वितीय को अन्तरा, तीसरे चरण को 'भोग' तथा चौथे चरण को 'आभोग' कहा है। तुक को स्थल के अतिरिक्त 'खण्ड' की संज्ञा भी दी गयी है ।[७]

स्व० भातखण्डे जी के अनुसार— ध्रुवपद के चार भाग स्थाई, अन्तरा, सञ्चारी तथा आभोग होते हैं तथा कुछ ध्रुवपदों में केवल स्थाई व अंतरा ही होता है। वीर, शृंगार और शांत रस की प्रधानता ध्रुवपदों में होती है, इनकी भाषा उच्च श्रेणी की होती है, इनका गायन चौताल, सूलफाक, झम्पा, तेवरा, ब्रह्मा, रुद्र इत्यादि तालों में होता है। यह मर्दाना तथा ज़ोरदार गायन है।[८] आधुनिकयुगीन महान वाग्गेयकार-

Scanned with OKEN Scanner

स्व० आचार्य्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति के अनुसार— एला आदि शुद्ध सूढ प्रबन्धों के 'ध्रुव' नामक धातु में नियोजित पद ध्रुवपद कहलाते थे। इन्होंने भरतानुसार ध्रुवा +पद शब्दों की व्याख्या की है कि भाषा, स्वर, गति इत्यादि आवश्यक व्यंजक तत्त्वों को लेकर ध्रुवा की सृष्टि हुई। वाक्य, वर्ण, साङ्गीतिक, अलंकार, यति पाणि व लय के 'ध्रुव' (नित्य) रूप में अन्योन्याश्रित रूप को ध्रुवा कहते हैं। अक्षर सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु पद कहलाती है। पद के दो प्रकार निबद्ध व अनिबद्ध में ध्रुवा निबद्ध अथवा 'सताल' पद के अन्तर्गत आते हैं। 'ध्रुवपद' ध्रुव तथा मण्ठ एवं छह अङ्गों, पाँच धातुओं आदि प्रबन्ध तत्त्वों को अपनी संरचना में समेटे हुए है।[८] विमलकान्त राय चौधरी के अनुसार— ध्रुव का अर्थ है अचल तथा चिरस्थाई, इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वर ही ध्रुव है तथा उसके गुणसूचक पद को 'ध्रुवपद' कहा जाता है।[९]

इन सब परिभाषाओं को देखते हुए यह सिद्ध होता है कि स्व० आचार्य्य बृहस्पति ने ध्रुवपद गायन के उद्भव तथा उसके स्वरूप की शास्त्रबद्ध व्याख्या की है तथा उसकी परिभाषा का वर्णन विद्वतापूर्ण ढंग से किया है।

ध्रुवपद के मुख्यत: चार भग माने जा सकते हैं। (१) आलापचारी, (२) बंदिश (पद), (३) लयकारी, तथा (४) उपज। इन्हें साङ्गीतिक भाषा में रागालप्ति, गीत, लय-वैचित्र्य तथा भंजनी रूपकालप्ति कह सकते हैं।

आधुनिक काल में ध्रुवपद की चार बानियाँ प्रसिद्ध हैं। स्व० आचार्य्य बृहस्पति अपने ग्रन्थ ध्रुवपद और उसका विकास में लिखते हैं— ध्रुवपदों में चार बानियाँ प्रसिद्ध अकबरी युग के कहीं पश्चात् हुईं। स्व० भातखण्डे जी 'बानी' का अर्थ स्वराश्रित गान शैली या 'गीति' समझते हैं। एक ध्रुवपद को तानसेन कृत कहा जाता है, जो वस्तुत: तानसेन की कृति प्रतीत नहीं होता, इसमें अचल 'षड्ज-पंचम' की चर्चा है, जो इस ध्रुवपद के अतिरिक्त तानसेन की कृति में कहीं नहीं मिलती। ध्रुवपद में चारों बानियों के ब्यौहार गिनाए गए हैं, वस्तुत: इस ध्रुवपद की रचना 'डागुर' लोगों को नीचा दिखाने के लिए की गई है, जो तानसेन को हरिदास डागुर का शिष्य कहते हैं। ध्रुवपद निम्नांकित है[१०]—

बानी चारों के ब्यौहार सुन लीजै हो गुनीजन तब पावै यह विद्यासार।
राजा गुबरहार, फौजदार खंडार, दीवान डागुर, बकसी नौहार।

Scanned with OKEN Scanner

अचल सुर पंचम, चल सुर रिषभ, मध्यम, धैवत, निषाद, गंधार।
सप्त तीन, इकईस मूर्च्छना, बाईस सुरति, उनचास कूट तान तानसेन अधार।[११]

इसमें 'गुरबहार को 'राजा'' अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, खण्डार को 'फौजदार' अर्थात् गुरबहार की अपेक्षा हीनतर, डागुर को दीवान, अर्थात् पूर्वोक्त दोनों की अपेक्षा हीन, तथा नौहार को 'बख्शी' कहा गया है। तानसेन के ध्रुवपदों में 'सुधं बानी' (शुद्ध वाणी) की चर्चा मिलती है। 'वाणी' का अर्थ रीति से कहीं नहीं होता। सन्तों की उक्ति को भी 'बानी'कहते हैं। प्रदेश-विशेष अथवा जाति-विशेष की भाषा को भी 'वाणी' कहा जा सकता है, 'गान शैली' अथवा 'गीति' को नहीं। मुहम्मद करम इमाम ने चार बानियों की चर्चा करते हुए 'बानियों' की जाति या प्रदेश से ही सम्बद्ध किया है। उनके अनुसार—ब्रजचन्द, दिल्ली के निकट 'डांगर' प्रदेश, समोखन सिंह 'खण्डहर' प्रदेश और श्रीचन्द 'जौहा' नामक प्रदेश के रहने वाले थे।[१२] एक अन्य स्थान पर वह तानसेन को 'गौरारी' (गोबरहारी नहीं) बानी का प्रवर्तक मानते हैं, ब्रजचन्द को 'नौहारी', श्रीचन्द को 'डांगरी' तथा समोखन सिंह को 'खण्डारी' बानी का प्रवर्तक मानते हैं। यद्यपि इन चारों वाणियों के नामकरण का कोई प्रामाणिक आधार प्राप्त नहीं है, फिर भी ग्रन्थों में प्रचलित इन वाणियों के नामकरण के सन्दर्भ वर्णनों से कोई महत्त्वपूर्ण आधारभूत मत निकाला जा सकता है।

१. गौरारी बानी

'गौरारी' शब्द 'ग्वालियरी' का अपभ्रंश है तथा ग्वालियर में बोली जाने वाली भाषा का द्योतक है, फकीरुल्लाह ने इसी भाषा को श्रेष्ठ कहकर इसका क्षेत्र निश्चित् किया है। यही भाषा ध्रुवपदकारों की 'सुध बानी' (शुद्ध वाणी) है। ऐसा भी कहा जाता है कि इस वाणी का प्रचलन अधिकांशतः तानसेन व उसकी शिष्य-परम्परा में रहा तथा जिसका आदर्श तानसेन रहा । इस वाणी को तानसेन द्वारा प्रचार में लाया गया, वस्तुतः इस वाणी की उत्पत्ति 'ग्वालियरी' से हुई है। 'ग्वालियरी' शब्द क्रमानुसार ग्वारियरी, ग्वारेरी, गौरेरी, गौरारी, गौरहारी, गौहारी, गउहरहारी इत्यादि हो गया। इसी वाणी को कुछ विद्वान गौरहार, गोबरहार, गौहरहार तथा गुबरहार इत्यादि नामों से भी पुकारते हैं। इस वाणी में मींड़ की प्रधानता होती है। इस वाणी की रचनाओं में पंक्तियों की तुलना में शब्दों की संख्या कम होने के कारण इसमें बीच के अन्तर को मींड़ से भरा जाता है। मींड़ युक्त होने के कारण इसमें गायन

Scanned with OKEN Scanner

का क्रम निर्विरोध तथा अटूट होता है । आवाज के इस प्रयोग के कारण इस वाणी की गति सीधी, सरल तथा विलम्बित लय के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इस वाणी में करुण, शान्त, श्रृंगार तथा वीररस के ध्रुवपद पाये जाते हैं, यह प्रचलित एवं अप्रचलित दोनों प्रकार के तालों में निबद्ध होते हैं। इस वाणी की प्रमुख विशेषता वाणी की शुद्धता मानी जाती है, इसे शुद्धा गीति से सम्बन्धित माना गया है ।

२. खण्डारी बानी

खण्डार नामक स्थान पर एक दुर्ग भी था। इस पर बाबर के आक्रमण के समय राणा सांगा ने अधिकार कर लिया था।[१२] इस स्थान के निवासियों की भाषा का 'खण्डारी बानी' होना सम्भव है।[१३] इस वाणी का प्रचार राजपूताना के खण्डार निवासी नौबत खाँ द्वारा माना जाता है। राजस्थान में राजपूताना नामक स्थान आज भी है। यहाँ पर कई मुसलमान कलाकार आकर बस गए थे। यहाँ के स्थानीय संगीत के प्रस्तुतिकरण के ढंग तथा शास्त्रीय सङ्गीत के संयोग से खण्डार बानी का जन्म् हुआ, महाराज समोखन सिंह को भी इसका जन्म्दाता माना जाता है, जिनका जन्मस्थान खण्डार था। यह वाणी वीरतापूर्ण तथा ओजपूर्ण मानी जाती है। इसमें गमक की प्रधानता रहती है तथा इससे वीररस की उत्पत्ति होती है। इसमें अन्य वाणियों की झलक भी दिखाई पड़ती है। इसमें रचनाएँ मध्य लय तथा द्रुत लय में गायी जाती है। प्रत्येक मात्रा में गमक का प्रयोग करने के कारण इस में मात्राएँ अलग-अलग दिखाई पड़ती हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि इस वाणी की गायकी से ही आगे चलकर ख़याल की तानों का जन्म् हुआ। वाद्य सङ्गीत में वीणा द्वारा खण्डारवाणी का सेनिया घराने के लोग अनेकों प्रकार से मध्यलय, गमक व जोड़ का प्रयोग करते थे, यही सारी चीजें इनकी गायन शैली में भी स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। इनकी रचनाएँ अधिकांशतः चारताल तथा मध्यलय में होती हैं।

३. डांगरी वानी

मुहम्मद करम इमाम ने दिल्ली के निकट स्थित 'डांगर' नामक एक प्रदेश की चर्चा की है, सम्भव है वह आधुनिक दाग नामक स्थान रहा हो। यहां के निवासियों की भाषा हो सकती है। सालिमचन्द 'डागुर' (डागर) की चर्चा फकीरुल्लाह ने भी की है। डागर एक जाति भी है।[१४] एक अन्यमत के अनुसार इस शैली के प्रवर्तक

Scanned with OKEN Scanner

राजपूताने के डागुर नामक स्थान के निवासी ब्रजचन्द माने जाते हैं। अनेक मत-मतान्तरों के अन्तर्गत इस वाणी का नाम 'डागर' भी माना गया है, जिसका अर्थ 'पथ' है। उसी से डागर बन गया, किसी भी प्राचीन ग्रंथ में इसका कोई उचित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। सङ्गीत के क्षेत्र में हरिदास 'डागुर' भी एक प्रसिद्ध नाम है। जगन्नाथ कविराय ने इनकी गणना तानसेन तथा धौंधू के पश्चात् करके इनके चरणों में अपनी भक्ति प्रदर्शित की है । यह तथ्य इस बात का परिचायक है कि यह तानसेन से कहीं छोटे थे। फकीरुल्लाह ने लिखा है कि जगन्नाथ अपने बाल्यकाल में स्वरचित ध्रुवपदों को दिखाने के लिए तानसेन की सेवा में उपस्थित हुआ करते थे। जगन्नाथ को शाहजहाँ के दरबार में अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। अकबरी युग के कलाकारों के पश्चात् ये अन्य कलाकारों के शिष्य हुए होंगे, जिनमें हरिदास डागुर के होने की संभावना है। 'स्वामी हरिदास' तथा 'हरिदास डागुर' को एक ही व्यक्ति मानकर कुछ लोगों ने तानसेन को अपनी परम्परा में जोड़ने का प्रयत्न किया था, परन्तु वृन्दावनवासी 'स्वामी हरिदास' जी तथा हरिदास 'डागुर' की भिन्नता सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है। कविराय जगन्नाथ के ध्रुवपद से यह सिद्ध होता है कि यह तानसेन की अपेक्षा कनिष्ठ थे।[१५]

४. नौहारी बानी

मुहम्मद करम इमाम एक प्रदेश को 'नौहा' बताकर वहाँ के व्यक्ति को 'नौहार' कहते हैं। हसन खाँ नौहार की चर्चा फकीररुल्लाह ने भी की है। इन लोगों की भाषा नौहारी कहलाना सम्भव है। इस वाणी के प्रवर्तक 'श्रीचन्द' माने जाते हैं। अन्य मतानुसार नौहार देहली के नाम पर इस वाणी का नाम हुआ। राजपूताने के इस स्थान का असली नाम 'नौहार' है, जिसका अपभ्रंश 'नौहा' है। अभी भी नौहार की आँचलिक धुनों में छूट की प्रधानता पायी जाती है। यद्यपि इस गीत को 'नौहार वाणी' नहीं कहा जा सकता, फिर भी उसमें नौहार वाणी की झलक अवश्य प्रतीत होती है । यह एक छूट प्रधान वाणी है, अतः एक मतानुसार 'नौहार' अर्थात् सिंह की गति से साथ इस वाणी को जोड़ते हैं। इस वाणी के छूट के कार्य में एक से दो तीन स्वरों को लांघकर आगे पहुँचा जाता है तथा अन्य वाणियों के अंश भी इसमें रहते हैं। इस वाणी में विलम्बित लय की रचनाएँ बहुत कम रहती हैं। मध्य अथवा द्रुत लय की रचनाएँ ही इसमें अधिकतर रहती हैं। डागर वाणी की अपेक्षा इसमें अलंकार प्रयोग अधिक होता है। गमक, मींड, आस तथा छूट

Scanned with OKEN Scanner

का प्रयोग अधिक होने के कारण इसमें अधिकतर वीर रस तथा अद्‌भुत रस का अधिक प्रयोग होता है। यह वाणी बेसरा गीति से सम्बन्धित मानी जाती है ।

आधुनिक काल में ध्रुवपद गायकी के निम्न घराने प्रचलित हैं-

राजस्थान

वर्तमान युग में ध्रुवपद व डागर घराना परस्पर पर्य्याय माने जाते हैं। डागर का नाम सामने आते ही ध्रुवपद स्वयं प्रत्यक्ष आ जाता है। इस घराने की उन्नीस पीढ़ियों ने ध्रुवपद की परम्परा में अपना सहयोग दिया है। इस घराने के पूर्वज इमाम बख़्श खान होते हुए भी यह घराना जयपुर के ध्रुवपद सम्राट बाबा बहराम खाँ के नाम से पहचाना जाता है। इसे सहारनपुर घराने के नाम से भी जाना जाता है। इसका कारण यह है कि बहराम खाँ का जन्म् सहारनपुर जिले के अंबैठा नामक गाँव में सन् १७५७ ई० के लगभग हुआ था। सहारनपुर अच्छे सङ्गीतज्ञों का केन्द्र रहा, जहाँ ख़लीफा जमा, ग़ुलाम तकी, ग़ुलाम ज़ाकिर खाँ, ग़ुलाम आलम, ग़ुलाम कासिम, ग़ुलाम जामिन, ग़ुलाम जाकिर खाँ के पुत्र बन्दे अली खाँ आदि अच्छे वीणा वादक, ध्रुवपदिये एवं सितार वादक आदि हुए। बहराम खाँ का जन्म् तो यहां अवश्य हुआ, परन्तु इनकी ध्रुवपद शैली देश के विभिन्न क्षेत्रों में इनके वंशजों द्वारा प्रचारित हुई अतः बहराम खाँ के मुख्य केन्द्र बिन्दु होने के कारण यह घराना उन्हीं के नाम का पर्य्याय बन गया।

बहराम खाँ ध्रुवपद गायन में एक अद्वितीय स्थान रखते थे। ध्रुवपद गायन शैली के उत्थान में उनका पूर्ण सहयोग तो रहा ही, स्वयं भी वह ध्रुवपद गायन में तल्लीन रहते थे । उन्होंने ध्रुवपद गायकी को नए आयाम देकर एक ऐसी शैली में परिवर्तित कर दिया जो एक लोक-शैली बन गयी ।

राजस्थान संस्कृति का एक उत्कृष्ट केन्द्र रहा है। यहाँ पर गायक, वादक तथा नृत्य तीनों विधाओं के कलाकारों ने आश्रय तथा आदर प्राप्त किया है। राजस्थान के सबसे प्रसिद्ध ख़याल-गायकी के लिए विख्यात जयपुर घराने में भी कई गायक, ध्रुवपद गायकी के दक्ष कलाकार हुए हैं। जयपुर के राजा रामसिंह के दरबार में नियुक्त अमीर बख़्श, इनके शिष्य करामत खाँ, (स्व० विलायत हुसैन खाँ इन्हीं के शिष्य थे) कल्लन खाँ- जिनके पिता घघ्घे ख़ुदा बख़्श भी जयपुर के दरबार

Scanned with OKEN Scanner

में डागर घराने के नहराम खाँ के साथ नियुक्त थे। अतरौली घराने के प्रवर्तक अल्लादिया खाँ भी यहीं के थे।

बिहार (दरभंगा) की ध्रुवपद गायन परम्परा

बिहार घराना या दरभंगा घराना वास्तव में एक ही बात है, क्योंकि दरभंगा बिहार राज्य में ही स्थित है। दरभंगा घराना पूर्णतः मल्लिक गायकों से संबंधित है। दरभंगा घराने को ही मल्लिक घराना भी कहा जाता है। दरभंगा के मल्लिक घराने के पूर्वज मूल रूप से ब्रज तथा राजस्थान के निकटवर्ती प्रदेश के निवासी थे। ऐसा माना जाता है कि इस वंश में सात पीढ़ियां पहले सीताराम, रामनिवास, राधाकृष्ण तथा कर्ताराम नामक चार भाई थे जिनमें सीताराम तथा रामनिवास गला ठीक न होने के कारण गायन के क्षेत्र में प्रगति न कर सके जबकि राधाकृष्ण तथा कर्ताराम ने लगभग 10 वर्ष की उम्र में सङ्गीत की शिक्षा भूपत खाँ 'महारङ्ग' के पास प्राप्त करने गये जो अवध के नवाब शुजाउद्दौला के दरबार में थे।[१६] दरभंगा के गायक स्वयं को सेनिया परम्परा से सम्बन्धित मानते हैं। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि तानसेन के पुत्र विलास खाँ की पुत्री का विवाह लाल खाँ कलावन्त से हुआ था, जिनके चार पुत्र हुए। जिनमें से एक पुत्र बिसराम खाँ के पुत्र भूपत खाँ थे।[१७] इन्हीं भूपत खाँ से राधाकृष्ण तथा कर्ताराम ने सङ्गीत की शिक्षा प्राप्त की थी। राधाकृष्ण तथा कर्ताराम ने लगभग 35 वर्ष की आयु तक भूपत खाँ से शिक्षा ग्रहण की ।[१८] साङ्गीतिक शिक्षा देने के पश्चात् भूपत खाँ ने नवाब शुजाउद्दौला से आग्रह किया कि उन्होंने दो हिन्दू शिष्यों को शिक्षा प्रदान की है तथा उनका गायन दरबार में कराया जाये, जब इन दोनों भाईयों का गायन दरबार में हुआ तो इन्होंने अप्रत्याशित रूप से सभी विद्वानों तथा रसिकों को अपनी ओर आकर्षित किया। इसी बीच दरभंगा नरेश माधवसिंह ने इन्हें अपने दरबार में गाने के लिए आमंत्रित किया, तब ये दोनों भाई लखनऊ से दरभंगा अपना गायन प्रस्तुत करने गये, इनके गायन से प्रभावित होकर दरभंगा नरेश ने इन्हें जागीर प्रदान कर दी तथा इन्हें अपना दरबारी गायक नियुक्त करना चाहा, तब लखनऊ नरेश शुजाउद्दौला से आज्ञा प्राप्त कर इन दोनों भाइयों ने छः महीने लखनऊ दरबार में तथा छः महीने दरभंगा दरबार में रहना आरम्भ कर दिया। कालान्तर में यह दोनों भाई दरभंगा दरबार में ही नियुक्त कर दिये गए। वहीं पर इनकी मृत्यु हुई। कहा जाता है कि भूपत खाँ पुत्र निर्मलशाह अपने गुरु भाइयों से भेंट करने दरभंगा गये, परन्तु वहाँ पहुँचकर उन्हें ज्ञात हुआ कि इन दोनों भाइयों

Scanned with OKEN Scanner

का स्वर्गवास हो चुका है। बहुत ही दुःखी मन से वह लगभग छः महीने वहाँ रहे।

बिहार (बेतिया) की ध्रुवपद परम्परा

बिहार में ही स्थित बेतिया अपनी समृद्ध सङ्गीत परमपरा के कारण प्रसिद्ध रहा है। बिहार में बेतिया ध्रुवपद परम्परा काफी प्राचीन है। बेतिया प्राकृतिक दृष्टि से भी काफी समृद्ध रहा है। वास्तव में इसके नामकरण का आधार भी प्रकृति ही रही है। हिमालय के पद में स्थित बेतिया चम्पारन जिले का मुख्य शहर है। 'किसी समय में यहाँ जंगल ही जंगल था तथा चम्पक के फूल प्रचुर मात्रा में थे। फूलों की सुषमा तथा सुगंध से चारों ओर का वातावरण सुगंधित रहता था, इसलिये इस स्थान का नाम चम्पा-अरण्य था। आगे चलकर यह चंपारण हो गया। इसी चम्पारण जिले का प्रमुख नगर था- बेतिया। बेतिया नगर के प्रान्त में चन्द्रावती नदी बहती थी। चन्द्रावती के किनारे पहले बेत-वन था, इसलिए इसका आदि नाम 'बेत्रवन' था,' बाद में क्रमानुसार 'बेतवनर', 'बेंतव, 'बेतवा' आदि होते-होते बेतिया हो गया।[१९]

कहा जाता है कि 'कुरुक्षेत्र के निकटवर्ती गाँव अमलोक के दो सङ्गीतकारों 'चम्मारी मलिक' (गायक) तथा कंगाली मलिक (बीनकार) को बेतिया नरेश गजसिंह अथवा गजेन्द्र सिंह (1659 ई० -1694 ई०) ने बेतिया दरबार में लाकर नियुक्त किया था। महाराजा गजसिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र दिलीप सिंह तथा दिलीप सिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र ध्रुवनारायण सिंह अथवा द्रुपसिंह बेतिया के उत्तराधिकारी बने। राजा ध्रुवनारायण सिंह ने अपनी बहन के पुत्र जुगलकिशोर को सिंहासन पर विराजमान किया। यह बहुत ही साहसी व्यक्ति थे तथा सङ्गीत प्रेमी भी थे। इन्होंने स्वयं भी पखावज की शिक्षा प्राप्त की थी। इनके समय से ही सङ्गीत वास्तविक रूप में बेतिया में प्रतिष्ठित हो सका। इनके राज्यकाल में तथा दरबार में जुमराज मलिक (बीनकार) तथा मुकुन्द मलिक (गायक) जैसे विद्वान थे। यह प्रमाण नहीं मिल पाया है कि यह दोनों चमारी तथा कंगाली मलिक के वंशज थे। परन्तु इन दोनों (जयराज व मुकुन्द) की वंश परम्परा में दुःखी मलिक तथा भरथी मलिक का नाम मिलता है। इस घराने की वंश परम्परा बहुत लम्बी है, जिनमें कुंजबिहारी, गोपाल मलिक, बुधू मलिक, कुंजबिहारी मलिक, जुगलकिशोर

Scanned with OKEN Scanner

के पुत्र महाराज वीर किशोर सिंह, पंडित शिवदयाल मिश्र, महाराज वीर किशोर सिंह के पुत्र आनन्द किशोर सिंह, प्यार खाँ, बख्तियार खाँ, हैदर खाँ, सादिक अली खाँ, जाफर खाँ, बासत खाँ, फकीर चन्द मलिक, हैदर खाँ, जीवन खाँ, फज़ल हुसैन खाँ, काले खाँ, उमाशंकर प्रसाद, शिवदयाल, राजेन्द्र किशोर , बख्तावर जी, शिवनारायण मिश्र, जयकरण मिश्र, गुरु प्रसाद मिश्र, विश्वनाथ राव, वेणी माधव, सदाशिव भट्ट, राधिका प्रसाद गोस्वामी, विनोद गोस्वामी, गोपेश्वर बनर्जी, रामप्रसन्न बनर्जी, आशुतोष चटर्जी, पं० भोलानाथ पाठक, शशि भूषण डे, महंथ मलिक, राजकिशोर मलि मलिक, इन्द्रकिशोर मलिक, फाल्गुनी मित्रा इत्यादि के नाम प्रमुख हैं।

मथुरा घराना

मथुरा, वृन्दावन, बरसाना इत्यादि भारतवर्ष के ऐसे नगर हैं कि जिनका नाम सुनते ही राधा कृष्ण की लीलाओं का ध्यान बरबस ही हृदय को आध्यात्मिक ऊँचाइयों की ओर ले जाता है । वहाँ का धार्मिक वातावरण देश की संस्कृति की ओर विदेशियों तक का ध्यान आकृष्ट कर लेता है। जो भी एक बार इन धार्मिक नगरों में प्रवेश कर लेता है, यहीं रम जाना चाहता है। शास्त्रीय सङ्गीत के क्षेत्र में ध्रुवपद, धमार तथा ब्रजभाषा का काफी घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। इस शैली का अंकुर ही ब्रजभाषा से फूटा तथा फूला-फला हैं। ब्रज की ध्रुवपद परम्परा प्रमुखतः मन्दिरों में ही निभायी गयी है। भगवान श्री कृष्ण का जन्म्स्थान होने के कारण अनेक धर्माचार्य्यों ने यहाँ की स्थली को अपनी-अपनी साधना द्वारा पवित्र किया है। इसी कारण ब्रजभूमि अनेक धर्म-सम्प्रदायों की संस्थापना का केन्द्र रही है। राधाकृष्ण के विभिन्न स्वरूपों के उपासक इन सम्प्रदायों के साथ यहां अनेक अन्यान्य सम्प्रदायों के भी मंदिर विद्यमान हैं। यहां अनेकानेक सम्प्रदाय फले-फूले हैं, जैसे- चैतन्य सम्प्रदाय, बल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, राधाबल्लभ सम्प्रदाय, हरिदास सम्प्रदाय, अथवा सखी सम्प्रदाय आदि। दर्शन तथा विचारधारा में भिन्न होते हुए भी यह सम्प्रदाय साङ्गीतिक धरातल पर साथ-साथ चले हैं, क्योंकि इन सभी सम्प्रदायों के धर्माचार्य्यों ने अपने-अपने सम्प्रदाय का प्रचार करने हेतु तथा उसे प्रभावशाली बनाने हेतु सङ्गीत को भक्ति का सफल माध्यम माना तथा ब्रज की ध्रुवपद, धमार गायन शैली को भग्वत्संकीर्तन द्वारा प्रतिष्ठित किया। ईसा की १०वीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमण भारत पर प्रारम्भ हो गए थे, इसलिए मुस्लिम आक्रमणों से निराश एवं संत्रस्त जनमानस को सम्बल प्रदान करने के लिए रामानुजाचार्य्य, बल्लभाचार्य्य,

Scanned with OKEN Scanner

निम्बकाचार्य्य, मध्वाचार्य्य आदि मनीषियों ने किया। इसका परिणाम यह हुआ कि १४वीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन के सूत्रपात के साथ वैदिक उपासना सङ्गीत की परम्परा का नवीन रूप धारण करके समाज में 'संकीर्तन' के रूप में उभरी। यह संकीर्तन नवधा भक्ति की ही एक परम्परा थी। इसमें सभी स्थानों के प्रमुख आचार्य्यों तथा साधु-सन्तों ने ब्रज में अपनी साधना को क्रियात्मक रूप दिया। महाप्रभु चैतन्य तथा उनके अनुयायी रूपसनातन, जीवगोस्वामी, हितहरिवंश, आदि महान विभूतियों ने ब्रज में अनेक धार्मिक लुप्त स्थानों का उद्घाटन किया तथा वहाँ हरिनाम उच्चारण द्वारा 'सामूहिक संकीर्तन' की परम्परा को प्रतिस्थातिप किया। संकीर्तन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सङ्गीत-परम्परा गोस्वामी बल्लाभाचार्य तथा उनके पुत्र विट्ठलनाथ द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्गीय 'रागसेवा' पद्धति है। यह पद्धति उस समय स्थापित हुई, जब भक्ति आंदोलन की लहर सर्वत्र फैली हुई थी। बल्लाभाचार्य्य जी के ब्रज आगमन के पश्चात् ब्रज भक्ति आन्दोलन का केन्द्र बन गया। महाप्रभु बल्लाभाचार्य्य तथा उनके पुत्र विट्ठलनाथ द्वारा पुष्टिमागीर्य देवालयों की स्थापना की गयी तथा संकीर्तन को इन मंदिरों में अष्टयाम पूजा का एक प्रमुख अङ्ग बनाया गया। गो० बल्लाभाचार्य्य जी के पुत्र गो० विट्ठलनाथ जी द्वारा संकीर्तन में व्यवस्थित क्रम, अनुशासन तथा सुनिश्चित रूपरेखा तैयार की गई, उन्होंने इस सेवा के तीन अङ्गों- राग, भोग तथा शृंगार का विस्तार करने हेतु आठों यामों की आठ झांकियों इत्यादि को सुनिश्चित किया तथा अष्टसखाओं 'अष्टछाप' की एक मण्डली बनाकर उन्हें इस कार्य्य के लिए नियुक्त किया। इस मण्डली में गो० बल्लाभाचार्य्य के चार शिष्य कुम्भनदास, सूरदास, कृष्णदास तथा परमानन्ददास तथा शेष चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, एवं नन्द दास थे। पुष्टिमार्गीय सङ्गीत (संकीर्तन) की रूपरेखा इस प्रकार व्यवस्थित की गई कि प्रभु के प्रातः जागरण से लेकर रात्रिशयन तक प्रत्येक क्षण भगवत् भक्ति तथा संकीर्तन में संलग्न रहे। दैनिक क्रम की ये आठ झाकियाँ इस प्रकार थीं—

१. मङ्गलाचरण
२. शृंगार
३. ग्वाल
४. राजभोग
५. उत्थापन
६. भोग
७. संध्या आरती
८. शयन

Scanned with OKEN Scanner

श्री बल्लभाचार्य्य जी के पश्चात् इनके वंशजों ने ही इस परम्परा को आगे बढ़ाया। इसी परम्परा के स्व० पं० चंदन चौबे जी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है जिन्होंने इस परम्परा तथा ध्रुवपद परम्परा को मिश्रित कर एक भिन्न ध्रुवपद शैली को जन्म् दिया। जो मथुरा घराने के नाम से प्रतिष्ठित हो गई। मथुरा के सङ्गीतमर्मज्ञ श्री सतीशचन्द्र मिश्र के अनुसार 'पुष्टिमार्गीय संकीर्तन की यह प्रणाली ही भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं के पद गायन तथा कीर्तन का समन्वय है, जिसे सङ्गीत की आधुनिक भाषा में 'मथुरा घराना' नाम दिया जा सकता है। इस सङ्गीत को निम्न पद्धतियों द्वारा गया जाता है- (१) देवालय सङ्गीत (२) उत्सव सङ्गीत अथवा दरबारी सङ्गीत परम्परा। कालान्तर में यह प्रभाव मन्दिर परम्परा से सम्बद्ध इस घराने के गायक पं० चंदन जी चौबे पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई दिया जिन्होंने मंदिर-परम्परा की पदशैली को ध्रुवपद के शास्त्रीय तत्त्वों से सम्बद्ध कर अपने निजी विलक्षण गायन को विभिन्न दरबारों तथा मंचों पर प्रस्तुत कर 'मथुरा घराने' को पूरे देश में प्रतिष्ठित कर दिया। यहां पर यह बता देना उचित है कि मंदिर परम्परा में गायन पूर्णतः विशुद्ध पारम्परिक शैली से होता है, जिसमें नोमतोम का आलाप, पखावज के साथ लडन्त-भिड़न्त इत्यादि पूर्णतः वर्जित है तथा पद को विभिन्न दैनिक तथा वार्षिक झाकियों में ऋतुओं के अनुसार प्रस्तुत किया जाता है। इसमें चौताल, धमार तथा सूलताल के अतिरिक्त कहरवा, तीनताल, दीपचन्दी इत्यादि तालों में भी प्रस्तुत किया जा सकता है तथा ताल का शास्त्रीय बन्धन नहीं है। जबकि उत्सव परम्परा में शास्त्रीय नियमों के साथ ध्रुवपद, धमार के अन्य तत्वों, जिसमें नोमतोम की आलाप, पद तथा लयकारी आदि को सम्मिलित किया जाता है। इस परम्परा में ध्रुवपद, धमार, चौताल, धमाल ताल, सूलताल, तीव्राताल, झपताल, गणेश ताल, लक्ष्मीताल, बसंतताल इत्यादि तालों में गाया जाता है। मथुरा घराने के गायक चंदन जी चौबे ने इसी उत्सव परम्परा की गायकी को विलक्षणता प्रदान कर उसे मथुरा घराना नाम दिया। ' चौबे गायकों की परम्परा में चौबे चुक्खा तथा चौबे गणेशी का नाम भी प्रसिद्ध है। गणेशीलाल जी के पिता का नाम गोविन्द चौबे था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा बंशीधर जी तथा गोपालराव बोआ जी से प्राप्त की थी। पं० चंदन जी चौबे के पितामह श्री बोली बाबा, पिता श्री अम्बाराम जी, चाचा श्री छिनोजी तथा कुलकी राम जी अग्रज श्री रतनलाल जी, चचेरे भाई श्री गणपति जी सभी मान्य ध्रुवपद गायक हुए हैं।[२०] चंदन जी ने साङ्गीतिक शिक्षा अपने पिता अम्बाराम जी, वृंदावन के नारायण स्वामी ग्वालियर के श्री गोपाल राव जी, आगरा के गुलाम अब्बास से प्राप्त की।[२१] स्व० डा० प्रेमलता शर्मा के अनुसार-

Scanned with OKEN Scanner

राज्याश्रय में विकसित ध्रुवपद और पुष्टिमार्गीय मंदिरों में प्रयुक्त कीर्तन में बन्धगत साम्य बहुत कुछ है। श्री चंदन जी चतुर्वेदी ऐसे समर्थ गायक थे, जो न केवल कीर्तन की समृद्ध परम्परा के धनी थे, अपितु ध्रुवपद के स्वर तालगत वैशिष्ट्य को भी आत्मसात् किए हुए थे।[२२] श्री चन्दन चौबे जी की शिष्य व वंश परम्परा में श्री गणपतजी, गोपीनाथ जी, शिवकुमार जी, बासुदेव जी, लक्ष्मण प्रसाद जी, श्री बालकृष्ण जी, श्री दिलीप कुमार राय, श्री लड़कवा जी, श्री भगवान जी, श्री रणछोड़ जी पाण्डेय, गिरजा बाबू लाल बाबू खत्री इत्यादि हैं। परन्तु उल्लेखनीय चंदन जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री बाल जी चतुर्वेदी तथा कुटुम्बीय श्री लक्ष्मण प्रसाद जी चतुर्वेदी हैं। आधुनिक समय डा० सत्यभान शर्मा जी, पं० लक्ष्मण प्रसाद चौबे जी के प्रमुख शिष्यों में से एक हैं। इसी वंश परम्परा में बाल जी के पौत्र श्री रमेश राजा चौबे तथा श्री लक्ष्मण जी के पुत्र श्रीकांत चतुर्वेदी इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। इनके अतिरिक्त श्री दाउ जी, मदनमोहन जी, गोपाल लाल जी, बालकृष्ण महाराज, गोस्वामी पुरुषोत्तम जी, रमन लाल जी, गोपाल लाल जी, कन्हैया लाल जी, घनश्याम जी, ब्रजरमण लाल जी, श्री भोलानाथ जी इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त रामचन्द्र मूँगा, आनन्द बिहारी तैलंग व बच्चू महाराज एवं लवकुश चतुर्वेदी (चतुर्वेदी बंधु) भी ध्रुवपद, धमार के मथुरा घराने से प्रभावित होकर हवेली सङ्गीत का गायन करते हैं।

विष्णुपुर घराना

ध्रवुपद के घरानों में विष्णुपर घराने का अपना एक अलग स्थान रहा है तथा कालान्तर में यह ख़याल के घराने में बदल गया, परन्तु ध्रुपद, धमार गायकी में विष्णुपर घराने को वर्तमान में भी भुलाया नहीं जा सकता। विष्णुपुर मल्लाभुम की राजधानी थी तथा सड़क के किनारे बसी हुई थी। बाद में यह पुरी तक विस्तृत हो गयी। दिल्ली के समान ही विष्णुपुर में भी सङ्गीत के विद्वानों का जमघट लगा रहा, क्योंकि यहां भी दिल्ली के समान साङ्गीतिक विद्वानों को आदर की दृष्टि से देखा गया तथा विष्णुपुर को छोटा दिल्ली कहा जाने लगा। विष्णुपुर (बंगाल) में ध्रुवपद का विकास १५वीं शताब्दी के मध्य से प्रारम्भ हो चुका था। महमूद जैसे मुसलमान तथा लोहंग जैसे दक्षिणात्य कलाकार की सहायता से मानसिंह तोमर की सभा में लोकभाषा (ब्रजभाषा) प्रतिष्ठित हुई। विष्णुपद विषय की दृष्टि से कव्वाली का जवाब थे, तो विषय की दृष्टि से 'ध्रुवपद' शृंगार-प्रधान गजलों का प्रत्युत्तर

थे। 'विष्णुपद' धार्मिक क्षेत्रों, मंदिरों इत्यादि में प्रचलित व विकसित हुए, तथा शृंगार-प्रधान ध्रुवदों ने अपने विषय व लोकभाषा के कारण जनता के साथ-साथ बादशाहों का मन भी मोहा।[२३] भारतीय वैष्णवों की दृष्टि में गोपियाँ 'जीवात्मा' हैं व कृष्ण परमात्मा। गोपीरूप जीवात्मा कृष्णरूपी परमात्मा में मिलन के लिए आकुल हैं। यह दृष्टिकोण खुसरो ने सर्वथा अपनाया था। हरदेव को निजामुद्दीन चिश्ती के आँसुओं में नृत्य करते हुए कृष्ण की छवि दिखाई दी थी।[२४] ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर के राज्यकाल (१४८६-१५१६ ई०) में बैजू ने मानसिंह तोमर के उस कार्य्य में सहायता दी, जिसने उत्तर भारत में सङ्गीत की धारा ही बदल दी। ब्रजभाषा ध्रुवपदों की शैली का निर्माण और प्रशिक्षण बैजू के पौरोहित्य में हुआ । इस शैली ने एक ओर गुजराती सुल्तानों और दूसरी ओर अकबर से लेकर मुहम्मद शाह रंगीले तक सभी मुगल सम्राटों को प्रभावित किया तथा इन्हीं के प्रयत्नों से निर्मित विष्णुपद शैली ने ब्रज में सूरदास जैसे महाकवि उत्पन्न किए, जिन्होनें तुलसीदास तक को प्रभावित किया ।[२५]श्री चैतन्य देव द्वारा श्रीकृष्ण कीर्तन का प्रचार प्रचुर मात्रा में हो गया था, तदुपरान्त इनके शिष्यों ने इसे आगे बढ़ाया। इनके शिष्य स्वरूप दामोदर जी तथा रायरामानन्द जी गायक तथा शास्त्रज्ञ थे। खेतड़ी में जन्मे नरोत्तमदास जी ने वृन्दावन जाकर ध्रुवपद की शिक्षा प्राप्त की थी। इसी कारण बंगाल की कीर्तन परम्परा ब्रज के ध्रुवपद गायन से प्रभावित हुई तथ बंगाल की कीर्तन गायन परम्परा द्वारा ही वहाँ पर ध्रुवपद गायन की आधार शिला रखी गयी । परन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक वहाँ पर ध्रुवपद गायन के प्रचलित होने के प्रमाण नहीं मिलते। स्वामी प्रज्ञानन्द के ग्रंथ " ए हिस्टोरिकल स्टडी ऑफ इण्डियन म्यूजिक" में लिखा गया है कि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में चुंचुडा (हुगली), कृष्णनगर (नदिया) तथा मुर्शिदानगर शास्त्रीय सङ्गीत विशेषतः ध्रुवपद के प्रधान केन्द्र बने। 'उस्ताद मान खाँ चुंचुड़ा में बस गये। उस्ताद बड़े मियाँ, हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, हीरा एवं बलबुल मुर्शिदा नगर' में बस गये। उ० रसूल बख़्श श्री रामपुर में बस गए। हैदर खाँ बेतिया में बसे। चुंचुड़ा के रामचन्द्रशील उ० मान खाँ बेतिया में बसे, चुंचुड़ा के रामचन्द्रशील उ० मान खाँ के प्रथम पट्ट शिष्य बने तथा उनके अन्य शिष्य- गोपालचन्द्र पाठक, रामकनाई मुखर्जी थे। उ० रसूल बख्श के शिष्य- रामदास गोस्वामी (श्री रामपुर) तथा रामदास गोस्वामी से वाराणसी के हरिनारायण मुखर्जी तथा श्री रामपुर के निभाई चांद घोषल ने ध्रुवपद की शिक्षा ग्रहण की।[२६] अठारहवीं शताब्दी में महाराजा द्वितीय रघुनाथ सिंह तानसेन के पुत्र विलास खाँ के वंशज बहादर खाँ को विष्णुपुर ले आगे जिनके साथ पीरबक्श पखावजी भी

आये। रघुनाथ सिंह सङ्गीत के प्रति शैकीन थे एवं विष्णुपुर दरबार को दिल्ली दरबार जैसा बनाना चाहते थे। बहादुर खाँ द्वारा सेनिया घराने की परम्परा से परिचित कराने के कारण विष्णुपुर दूसरी दिल्ली कहलाया तथा विष्णुपुर दरबार ने दिल्ली दरबार जैसी गरिमा प्राप्त की। रघुनाथ सिंह ने स्थानीय प्रतिभाओं को इस ओर प्रोत्साहित किया ताकि वे लोग भी सेनिया घराने की साङ्गीतिक परम्परा की शिक्षा ग्रहण कर सकें। यहीं से वास्तविक रूप से विष्णुपुर घराने की नींव रखी गई। प्रयोगात्मक दृष्टि से सेनिया घराने के सङ्गीतज्ञ गायन तथा वादन दोनों पक्षों में ही पारंगत थे। बहादुर खाँ गायक होने के साथ-साथ रबाब भी बहुत ही मधुर बजाया करते थे। ऐसा माना जाता है बहादुर खाँ सेनिये ही इस घराने के जन्म्दाता हैं।[२७] कुछ विद्वानों द्वारा यह मत भी व्यक्त किया जाता है कि ध्रुवपद गायक अपनी यात्रा क्रम में वाराणसी, वृन्दावन तथा मथुरा से फकीरों की तरह पुरी की यात्रा करते हुए विष्णुपुर पहुंच गये, वहां ठहरे तथा रामसंकर भट्टाचार्य्य (१७६१-१८५३ ई) को सङ्गीतकला में निपुण किया। ध्रुवपद के विष्णुपुर घराने को इन्हीं द्वारा स्थापित किया भी माना जाता है।[२८] वैसे बहादुर खाँ के पश्चात् उनके प्रमुख शिष्य गदाधर चक्रवर्ती ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। चक्रवर्ती परिवार के ही चांद कनाई का नाम भी प्रसिद्ध हुआ। नीलमाधव चक्रवर्ती ने भी प्रसिद्धि पाई । गदाधर चक्रवर्ती के शिष्यों में कृष्ण मोहन गोस्वामी, इनकी मृत्यु के उपरान्त इनके शिष्य रामसंकर भट्टाचार्य्य, इनके उत्तराधिकारी बने। रामसंकर भट्टाचार्य्य प्रमुख शिष्य क्षेत्रमोहन गोस्वामी, दीनबन्धु गोस्वामी, यदुभट्ट तथा अनन्तलाल वन्धोपाध्याय रहे। क्षेत्रमोहन गोस्वामी के शिष्यों में काली प्रसन्न वन्धोपाध्याय तथा कृष्णधन वन्धोपाध्याय रहे। यदुभट्ट ने काफी प्रसिद्धि अर्जित की- इनके शिष्यों में रवीन्द्र नाथ टैगोर थे। अनन्तलाल वन्धोपाध्याय के प्रमुख शिष्यों में उनके पुत्र रामप्रसन्न वन्द्योपाध्याय, तथा गोपेश्वर वन्द्योपाध्याय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रामकृष्ण एवं महाराजा के पुत्र थे । इसी घराने के सत्यकिंकर बनर्जी (जो गोपेश्वर जी के भान्जे हैं) व श्री गोकुल नाग का नाम उल्लेखनीय है। श्री आषीश बनर्जी, रामप्रसन्न बनर्जी के पुत्र हैं। वर्तमान में श्री नीहार रंजन बनर्जी एवं श्री शंभुनाथ बनर्जी आदि भी इस घराने के गुणी गायकों में से हैं।[२९] बंगाल में ध्रुवपद लोकप्रिय करने वालों में कृष्णधन वन्धोपाध्याय, गुरु प्रसाद मित्र, लक्ष्मीप्रसाद मिश्र, विश्वनाथ धमारी, सतीशचन्द्रदत्त, महिमचन्द्र मुखोपाध्याय एवं ललित मोहन मुखोपाध्याय हुए हैं।[३०]

Scanned with OKEN Scanner

आगरा घराना

ध्रुवद गायकी के प्रतिष्ठित घरानों में आगरा का अपना एक अलग ही स्थान है तथा इसका जन्म् अकबर का राज्यकाल माना गया है। इसका श्रेय अकबरी दरबार के हाजी सुजान खाँ को माना गया है जो कि ध्रुवपद व धमार शैली के विशेषज्ञ थे। ऐसा कहा जाता है कि हाजी सुजान खाँ मूल रूप से राजपूत थे तथा नौहारी बानी गाते थे। आगे चलकर यह किसी कारणवश मुसलमान हो गये तथा इस प्रकार सुजानदास या सुजान सिंह नौहार से सुजान खाँ बन गए तथा बाद में हज यात्रा करने के बाद इनके नाम के आगे हाजी शब्द जुड़ गया।[३१] परन्तु आचार्य्य बृहस्पति द्वारा अकबर के दरबार में जिन सङ्गीत विद्वानों की सूची दी गई है वह निम्न है– तानसेन, रामदास, सुबहान खाँ, सुरज्ञान खाँ, मियाँ चांद, विचित्र खाँ, वीरमण्डल खाँ, सरोद खाँ, मियाँ लाल, चांद खाँ तथा वीणा वादक शहाब खाँ। इस सूची में कहीं भी सुजान खाँ का नाम नहीं है।[३२] आचार्य्य जी ने इसे सुबहान खाँ नौहार का जिक्र किया है।[३३] हो सकता है इन्हीं के कालान्तर में सुजान खाँ मान लिया गया हो। आइने अकबरी में अबुल फज़्ल ने भी अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकरों के नाम निम्नलिखित रूप में गिनाए हैं:—

१. ग्वालियर के मियाँ तानसेन
२. ग्वालियर के बाबा रामदास
३. ग्वालियर के सुबहान खाँ (गायक) नौहारी
४. मियाँ चाँद (ग्वालियर के गायक)
५. मियाँ चाँद (ग्वालियर के गायक)
६. विचित्र खाँ (सुबहान खाँ के भाई)
७. मुहम्मद खाँ, ढारी, (गायक)
८. वीर मण्डल खाँ (ग्वालियर के गायक)
९. बाज बहादुर (मालवा का शासक व अद्वितीय गायक)
१०. शिहाय (शहबा) खाँ, (ग्वालियर के वीणा वादक)
११. दाऊद ढारी (गायक)
१२. सरोद खाँ (ग्वालियर के गायक)
१३. मियाँ लाल (ग्वालियर के गायक)
१४. तानतरङ्ग खाँ (मियाँ तानसेन के गायक पुत्र)

Scanned with OKEN Scanner

१५. मुल्ला इसहाक ढारी
१६. उस्ता दोस्त मशहद निवासी (नै नामक वाद्य के वादक)
१७. नायक चरजू (ग्वालियरवासी गायक)
१८. पुरबीन (प्रवीण) खाँ, (वीणा वादक)
१९. सूरदास गायक (रामदास के पुत्र)
२०. चाँद खाँ (ग्वालियर के गायक)
२१. रङ्गसेन (आगरा के गायक)
२२. शेख दावन ढारी ('करना' नामक वाद्य के वादक)
२३. रहमतुल्लाह गायक (मुल्ला इसहाक का भाई)
२४. मीर सैपिद अली, मशहदनिवासी ('धिचक' नामक वाद्य के वादक)
२५. उस्ता यूसुफ, हिरातनिवासी (तम्बूरा वादक)
२६. कासिम उपनाम कोहबर (एकतंत्री वाद्य के आविष्कारक)
२७. ताशबेग़ (कुबुज वादक)
२८. सुलतान हाफ़िज हुसेन, (मुहम्मदनिवासी, पाठ करने वाला)
२९. बहराम कुली(चिचक वादक)
३०. सुलतान हारिशम (मशहदनिवासी, पाठ करने वाला)
३१. उस्ता शाह मुहम्मद (सुरना वादक)
३२. उस्ता मुहम्मद अमीन (तम्बूरा वादक)
३३. हाफ़िज ख्वाज़ा अली (मशहदनिवासी, पाठ करने वाला)
३४. मीर अब्दुल्ला (कानून वादक)
३५. पीरजादा (गायक व पाठ करने वाला)
३६. उस्ता मुहम्मद हुसेन (तम्बूरा वादक)[३४]

स्व० विलायत हुसैन खाँ के द्वारा 'हाजी सुजान खाँ हमारे कुटुम्ब की जड़ है, उस जड़ से जो वंश पैदा हुआ, उनमें से हमारे दादा, परदादा वगैरह चले आ रहे हैं, हाजी सुजान खाँ ध्रुवपद गायक थे, उनके द्वारा बनाए ध्रुवपद आज भी गाये जाते हैं। वे गायक भी थे और नायक भी।'[३५] अत: अकबरी दरबार के आश्रित कलाकारों में सुजान खाँ के स्थान पर सुबहान खाँ (ग्वालियर के गायक) का नाम भी दिया गया है, जो आगरा घराने के सुजान खाँ व उनके भाई नहीं हो स़कते।[३६]

Scanned with OKEN Scanner

सन्दर्भ

१. श्री चंदन जी चतुर्वेदी स्मृति ग्रंथ- ठा० जयदेव सिंह, पृ० ८९
२. नाट्यशास्त्र, पृ० ३२-२४ एवं १३
३. भरत कोष, पृ० २९९
४. ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० बृ०, पृ० २४४
५. ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० बृ०, (परि०), पृ० ५१
६. ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० बृ०, (परि०), पृ० ५१
७. उत्तर भारतीय सङ्गीत का संक्षिप्त इतिहास- भ० श० शर्मा, पृ० २३
८. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० १५९ और १६१
९. क्रमिक पुस्तक मलिका- चतुर्थ भाग- ले० पं० वि० द० भातखण्डे, पृ० ४६,४७
१०. ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० बृ०, पृ० ३८, ९, २५०
११. भारतीय सङ्गीत कोष- विमल कान्त राय चौधरी, पृ० ६५
१२. ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० बृ०, पृ० २४७
१३. ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० बृ०, पृ० २४८
१४. मअदन्-उल-मूसिकी-मु० करम इमाम, पृ० २४/ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० बृ०, पृ० २४९
१५. ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० बृ०, पृ० २१८
१६. खुसरो, तानसेन और अन्य कलाकार- आ० बृ० सु० बृ०, पृ० २००
१७. खुसरो, तानसेन और अन्य कलाकार-सु०बृ० पृ० १३२
१८. ध्रुवपद वार्षिकी-१९८६, पृ० ३७
१९. बेतिया घराना-सङ्गीत-जनवरी-फरवरी-१९८२, पृ० ८५
२०. अखिल भारतीय ध्रुवपद समारोह की स्मारिका-बिहार की ध्रुवपद परम्परा, निबन्ध
२१. श्री चन्दन जी चतुर्वेदी- स्मृति ग्रन्थ, पृ० ३७
२२. श्री चन्दन जी चतुर्वेदी- स्मृति ग्रन्थ, पृ० ३७-३८
२३. श्री चन्दन जी चतुर्वेदी- स्मृति ग्रन्थ, पृ० १२
२४ खुसरो, तानसेन और अन्य कलाकार- आ० बृ० सु० बृ०, पृ० १०२
२५. खुसरो, तानसेन और अन्य कलाकार- आ० बृ० सु० बृ०, पृ० १००
२६. खुसरो, तानसेन और अन्य कलाकार- आ० बृ० सु० बृ०, पृ० १०१
२७. ध्रुवपद गायन परम्परा- डा० मधु तैलंग -पृ० ८४

Scanned with OKEN Scanner

२८. ध्रुवपद गायन परम्परा- डा० मधु तैलंग-पृ० ८५
२९. ध्रुवपद गायन परम्परा- डा० मधु तैलंग-पृ० ८५
३०. ध्रुवपद गायन परम्परा- डा० मधु तैलंग-पृ० ८५
३१. ध्रुवपद गायन परम्परा- डा० मधु तैलंग-पृ० ८५
३२. ध्रुवपद गायन परम्परा- डा० मधु तैलंग-पृ० ९२
३३. मुसलमान और भारतीय सङ्गीत- ले० आ० सु० बृ० ७२, ७३
३४. ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० सु० बृ०, पृ० ११६
३५. ध्रुवपद और उसका विकास- ले० आ० सु० बृ०, पृ० ११७
३६.आगरा घराना-परम्परा, गायकी और चीजें- रमणलाल मेहता, पृ० ९
३७. खुसरो, तानसेन और अन्य कलाकार- आ० बृ० सु० बृ०, पृ०३८२

भारतीय संगीत और ख़याल गायन के घराने

भारतीय सङ्गीत में घराना शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जहाँ भी भारतीय सङ्गीत की चर्चा होती है, वहाँ घराना शब्द का प्रयोग न हो, ऐसा सम्भव नहीं है। यदि कोई गायक, वादक अथवा नर्तक, किसी विशेष घराने से सम्बन्ध रखता है, तो वह साङ्गीतिक समाज में आदरणीय हो जाता है। उत्तर भारतीय सङ्गीत में घरानों का क्या योगदान रहा, इस विषय पर चर्चा करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि घराना शब्द का अर्थ क्या है तथा इसका जन्म् किन परिस्थितियों में हुआ। वास्तव में देखा जाय तो सामाजिक दृष्टिकोण से इसका अर्थ काफी संकुचित प्रतीत होता है । कदाचित् साहित्य ज्ञान का प्रभाव इस शब्द के प्रचलन का कारण हो अथवा तत्सम्बन्धित समाज को 'वंश', 'खानदान' अथवा 'परम्परा' शब्दों के प्रयोग करने की स्वतंत्रता न हो यह भी सम्भव है। भारत में समय-समय पर ऐसे सङ्गीतज्ञ होते रहे हैं जिन्होंने अपनी कला-साधना से सङ्गीत की उपासना की। समय पाकर इनकी कलागत शैली ने पारिवारिक परम्परा का रूप धारण कर लिया तथा इनके उत्तराधिकारियों ने अपने पूर्वजों के नाम से 'घराना' चला दिया ।

घराने की प्रथा सङ्गीत के सभी विधाओं में पायी जाती है। जिस प्रकार गायन के घराने होते हैं, उसी प्रकार वादन तथा नृत्य के भी घराने मिलते हैं। 'घरानों' का अस्तित्व उत्तर भारतीय सङ्गीत तथा दक्षिण भारतीय सङ्गीत दोनों में पाया जाता है। उत्तर भारतीय सङ्गीत में जिसे घराना कहा जाता है, दक्षिण भारतीय सङ्गीत में वही 'सम्प्रदाय' कहलाता है। स्वर्गीय आचार्य्य बृहस्पति ने 'सम्प्रदाय' का अर्थ इस प्रकार बताया है — सम् अर्थात् सम्यक अर्थात् भली-भाँति, प्र-अर्थात् प्रकर्षपूर्ण दाय अर्थात् पूर्वजों से मिलने वाली सम्पत्ति, अर्थात् अपने पूर्वजों द्वारा भली-भाँति समझा गया, प्रकर्षपूर्ण सम्पत्ति का ज्ञान अजिर्त करना ही 'सम्प्रदाय' कहलाता है। हमारे यहां इन्हीं को 'मत' अथवा 'वाद' के नाम से भी जाना जाता है। आज घराना शब्द का जो अर्थ हम समझते हैं, उसकी प्राचीनता को एक शताब्दी से अधिक नहीं हुआ हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, प्राचीनकाल में सङ्गीत में हमें शिवमत, ब्रह्मत तथा भरतमत जैसे विभिन्न सम्प्रदाय थे। इन सम्प्रदायों की सङ्गीत तथा नाट्य

Scanned with OKEN Scanner

के सम्बन्ध में स्वतंत्र एवं विशिष्ट मान्यताएँ थीं। दत्तिल, कोहल, मतङ्ग तथा अभिनवगुप्त भरत सम्प्रदाय के अनुयायी थे। भरत, नन्दिकेश्वर, नारद तथा शार्ङ्गदेव, ये सभी प्रातः स्मरणीय सङ्गीत शास्त्रकार थे तथा उनकी सङ्गीत कला अपनी विशेषताओं के कारण अलग-अलग प्रकट होती थी। वर्तमान युग की परिभाषा के अनुसार ये भी अलग-अलग सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। नाट्यशास्त्र में बताया गया है कि भरत ने अपने एक सौ शिष्यों को नाट्य की शिक्षा दी। अतः यह कहा जा सकता है कि यह घराना अथवा सम्प्रदाय-प्रथा प्राचीनकाल से ही प्रचलित थी। सामवेद में भी दो प्रकार की शैलियों का वर्णन मिलता है -मार्गी सङ्गीत तथा देशी सङ्गीत। यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो यह पद्धति वैदिक काल में भी प्रचलित थी ।

'घराना' अथवा 'सम्प्रदाय' गुरु तथा शिष्य के संयोग से बनता है। गुरु अपनी एक विशेष शैली विकसित करता है तथा उस शैली के सूक्ष्म अङ्गों का परिचय अपने शिष्य को योग्यतानुसार कराता है। उस शैली के सूक्ष्म तत्त्वों को ग्रहण करने की जितनी योग्यता शिष्य में होनी चाहिए, उतनी ही योग्यता गुरु में शिष्य को उन सूक्ष्म अङ्गों में पारङ्गत कराने की भी होनी चाहिए। परम्परागत शिक्षण में शिष्य को भी यह अधिकार नहीं होता कि वह गुरु द्वारा दी गयी शिक्षा में कोई परिवर्तन करे। एक गुरु द्वारा जो शिष्यसमाज शिक्षित किया जाता है वह उस घराने के अनुयायी कहलाते हैं। हर घराने की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ होती हैं तथा वही विशेषताएँ उस शिष्य समुदाय में दृष्टिगोचर होती हैं। घराने के किसी शिष्य को सङ्गीत श्रवण करते ही श्रोता को यह आभास हो जाता है कि वह अमुक उस्ताद का सङ्गीत आज पुनः श्रवण कर रहा है। सङ्गीत विद्या सदैव गुरुमुख द्वारा प्राप्त की जाती है। गुरु अपनी सारी शिक्षा शिष्य के हृदय तथा मस्तिष्क में उतार देता है, जिससे शिष्य का चिन्तन भी अपने गुरु के अनुरूप ही हो जाता है ।

उत्तर भारतीय सङ्गीत में घरानों का बहुत बड़ा योगदान है। घरानों के कारण ही उत्तर भारतीय सङ्गीत जगत् में हम विभिन्न गायन, वादन तथा नर्तन शैलियाँ विकसित कर पाये हैं। गायन में ख़याल गायन शैली के, ठुमरी शैली के अलग-अलग घराने हैं। इसी प्रकार वादन शैली के भी, जैसे सितार तथा तबला इत्यादि के अलग-अलग घराने हैं तथा नृत्य के भी अलग-अलग घराने हैं। चूँकि हर घराने की अपनी भिन्न-भिन्न शैलियां तथा विशेषताएँ होती हैं इसलिए हमें विभिन्न प्रकार के विशिष्ट सङ्गीत के रसास्वादन का सौभाग्य प्राप्त होता है । ध्रुपद, धमार, ठुमरी, दादरा, ख़याल

Scanned with OKEN Scanner

इत्यादि अलग-अलग शैलियाँ हैं । जिस प्रकार ध्रुपद गायन में अलग-अलग बानियों का स्थान रहा, उसी प्रकार ख़याल गायन में घराने रहे हैं । खयाल गायन के जन्म् के बारे में मुहम्मद हुसैन शर्की (१५वीं शताब्दी) का नाम लिया जाता है, परन्तु इसका प्रचार व प्रसार मुहम्मदशाह रंगीले के युग के (१८वीं शती) दो महान् सङ्गीतज्ञों सदारङ्ग व अदारङ्ग द्वारा हुआ।

खयाल गायकी में आजकल ग्वालियर घराना, अतरौली घराना, आगरा घराना, किराना घराना, भिंडी बाजार घराना, दिल्ली घराना, पटियाला घराना, रामपुर घराना इत्यादि प्रचलित हैं। इन सब घरानों में दिल्ली, लखनऊ तथा ग्वालियर तथा रामपुर घराने प्राचीन हैं तथा शेष घराने किसी न किसी रूप में इन घरानों की ही शाखाएँ हैं।

ग्वालियर घराना

ग्वालियर घराना सबसे प्राचीन घराना माना गया है। लखनऊ दरबार के एक ध्रुवपद गायक गुलाम रसूल लखनऊ से दिल्ली आकर बस गए थे तथा उन्होंने ख़याल गाना आरम्भ कर दिया था। इन्होंने अपने दो भान्डों शक्कर खाँ तथा मक्खन खाँ को ख़याल गायन की तालीम दी। शक्कर खाँ द्वारा अपने पुत्र मुहम्मद खाँ को इस गायकी की शिक्षा दी गयी। बाद में मुहम्मद खाँ ग्वालियर में बस गए थे; वहीं से इस घराने की नींव डली। परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि ग्वालियर में ख़याल गायकी का आरम्भ हद्दू-हस्सू खाँ द्वारा किया गया। ये दोनों पीर वख़्श के पोते थे। कुछ समय पश्चात् ये लोग दौलत राव सिंधिया, (जो उस समय वहाँ के राजा थे) के राज दरबार के राज गायक बन गए। ग्वालियर में यह ख़याल गायकी का स्वर्ण युग था। ग्वालियर घराने में सिर्फ ख़याल ही नहीं, बल्कि ध्रुवपद, धमार, टप्पा तथा तराना इत्यादि भी उल्लेखनीय रूप में गाये जाते हैं। ग्वालियर घराने की विशेषता यह है कि इसमें आकार में आलाप से ही गायन आरम्भ किया जाता है तथा राग का थोड़ा सा स्वरूप दिखाकर बंदिश आरम्भ कर दी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि इस घराने के कुछ पुराने गायक आलाप नहीं लेते थे, बल्कि बंदिश से ही गायन आरम्भ किया करते थे । बहलावे का अधिक प्रयोग किया जाता था तथा किसी स्वर पर अधिक ठहराव नहीं होता, स्वरों के विभिन्न टुकड़ों को लयबद्ध गाया जाता है। बोल उपज के बाद छोटी-छोटी बोल तानों का प्रयोग

Scanned with OKEN Scanner

किया जाता है। ग्वालियर घराने में विभिन्न प्रकार की तानों का समावेश रहता है। फिरत की तान लेना तथा गले की तीव्रता से तीनों सप्तकों में घुमाना इस घराने की विशेषता है। आलापचारी समाप्त होते ही तानों की बौछार कर देना इस घराने का चलन है, ये तानें बहुत तेज तथा स्पष्ट होती हैं। इस घराने के गाये जाने वाले कुछ अप्रचलित राग इस प्रकार हैं मालकौंस बहार, सूहा बहार, भैरव बहार, मालीगौरा बहार, ललित बहार, दरबारी बहार, गौड़ मल्हार इत्यादि।

अतरौली घराना

यह घराना जयपुर घराना, उनियारा घराना तथा अल्लादिया खाँ का घराना भी कहा जाता है। अल्लादिया खाँ भारत के सङ्गीत जगत् पर १६०० ई० से १६४२ ई० तक राज्य करते रहे। इनके पूर्वज अतरौली, जिला अलीगढ़ (उ० प्र०) के निवासी थे, बाद में यह उनियारा गांव में जाकर बस गए थे। जयपुर के नवाब कल्लन खाँ सङ्गीत के प्रेमी थे, उन्होंने इनके पिता को जयपुर में राज्याश्रय दिया। कुछ लोग इस घराने के जन्मदाता जयपुर के करामत अली तथा मुबारक अली (लखनऊ वाले) को मानते हैं। अल्लादिया खाँ वास्तव में ध्रुवपद की डागुरबानी के वंशज थे। जयपुर घराने के प्रसिद्ध कलाकार तथा लखनऊ घराने के वंशज मुबारक अली का इन पर विशिष्ट प्रभाव था। इस घराने के गायक सर्वप्रथम विलंबित लय में ख़याल की पूरी बंदिश प्रस्तुत करते हैं। ख़्याल की बंदिश लयकारी में पूर्णतः बंधी होती है। लय तथा बोलों का सुन्दर मिश्रण होता है, एक ही सांस में एक से अधिक आवर्तनों तक आलापचारी, वक्र तानें, लय के बोल बनाव भी इनकी विशेषता है। ख़याल गायन में बिलम्बित तीनताल अधिक प्रयुक्त किया जाता है। इसमें सपाट तथा लम्बी व छूट की तानों का अभाव रहता है। इस घराने के प्रसिद्ध अप्रचलित राग इस प्रकार हैं- काफी कान्हडा, नायकी कान्हड़ा, बिहागड़ा, त्रिवेणी, पटबिहाग, जैतश्री, पटमञ्जरी इत्यादि।

आगरा घराना

यह घराना हाजी सुजान खाँ से (अकबर काल) आरम्भ हुआ। अन्य प्राचीन घरानों की तरह यह भी ध्रुपद तथा धमार गायकों का घराना रहा है। इसीलिए इनके घरानों में नोम तोम की आलाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इनकी लयकारी भी

Scanned with OKEN Scanner

ध्रुवपद अङ्ग से होती है। सुजान खाँ के पोते घग्गे खुदा बख़्श द्वारा इस घराने में ख़याल गायकी का पदार्पण हुआ। इन्होंने ख़याल गायन की शिक्षा ग्वालियर के नत्थन पीर बख्श से प्राप्त की। इसके बाद इनके दो पुत्र कल्लन खाँ व ग़ुलाम अब्बास खाँ ने गायन में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की । गुलाम अब्बास की पुत्री जयपुर के 'रंगीले' परिवार में ब्याही गयी थीं। इनके पुत्र उस्ताद फैयाज़ खाँ द्वारा आगरा घराना काफी प्रतिष्ठित हुआ। इनके पिता का नाम सफदर हुसैन था । आगरा घराने की विशेषता लयबद्ध बोलतान तथा बंदिश के बोल बनाव हैं। ठाकुर जयदेव सिंह कहते हैं कि आगरा घराने के संस्थापक फैयाज खाँ थे । चीज़ के बोल बनाव में स्वर पर जम कर गाना, भाव प्रदर्शन के लिए हाँ, हाँ, हेरी इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी दिखाई पड़ता है। इनकी गायकी में तानें बिलकुल खड़ी व सरल होती हैं। विलंबित तीन ताल में गाना भी इस घराने की एक विशेषता है। बोल-बाँट भी इनकी गायकी का एक विशेष अङ्ग है। ख़्याल गायन में सरगम का प्रचार भी इस घराने द्वारा ही प्रचार में लाया गया है। अपनी निजी विशेषताओं के कारण आगरा घराने ने एक विशिष्ट स्थान भारतीय सङ्गीत जगत् में प्राप्त कर लिया है। इस घराने के सुप्रसिद्ध उस्ताद फैयाज खाँ ध्रुवपद, धमार, ठुमरी, क़व्वाली, ख़याल सभी शैलियों के गायन में पारङ्गत थे ।

किराना घराना

किराना घराने के प्रवर्तक एक प्रसिद्ध बीनकार व ध्रुवपदिये गुलाम तक़ी के पोते बन्दे अली खाँ को माना जाता है । गुलाम तक़ी व उनका परिवार मेरठ जिले के दोताही ग्राम में रहते थे। बाद में किसी कारणवश वह किराना नामक गाँव में आकर बस गए थे, तब से ही इस गायकी का नाम किराना घराने की गायकी पड़ गया। ख़्याल गायकी में यह घराना, रहमान बख़्श, तथा नन्ने खाँ द्वारा प्रारम्भ किया गया। वहीद खाँ तथा अब्दुल करीम खाँ ने इसे सङ्गीत जगत् की बुलन्दियों तक पहुँचा दिया। उन्होंने इस गायकी को इतना प्रभावशाली बना दिया कि इसकी सुगन्ध पूरे देश में फैल गयी, जिससे इस घराने के शिष्य भी बढ़ते चले गए। स्वरों का सुरीलापन व चैनदारी इस घराने की विशेषता है। इस घराने की गायकी में स्वर गोल, ठहरे हुए व एक दूसरे के साथ चलने वाले होते हैं। मींड़ तथा सूत का काम बहुत बारीकी से किया जाता है। इस गायकी में गायक अथवा गायिका एक स्वर को विभिन्न प्रकार से घण्टों तक लगाता रहता है । इस

Scanned with OKEN Scanner

घराने की गायकी भाव तथा रस प्रधान होती है । ताने दानदेर व ज़ोरदार होती है। विलम्बित लय में ख़याल आराम से प्रस्तुत किया जाता है। मूलतः बीनकारों का घराना होने के कारण इनकी गायकी में लगाव लोच तथा मींड़ का काम अधिक होता है । एक स्वर से दूसरे स्वर पर कूदकर या खड़ा-खड़ा नहीं जाते, बल्कि मींड़ द्वारा जाते हैं जिस कारण स्वरों का एक दूसरे से सामञ्जस्य रहता है। इस घराने का प्रचार व प्रसार महाराष्ट्र में अधिक हुआ है।

दिल्ली घराना

ख़याल गायकी का प्राचीन घराना रहा है। दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले अत्यधिक सङ्गीत प्रेमी थे, उनके शासनकाल में ही ख़याल गायकी को पूर्णतः प्रचार व प्रसार मिला। इनके दरबार के दो रत्न सदारङ्ग तथा अदारङ्ग (जो महाकवि देव के शिष्य थे) ने सैंकड़ों ख़यालों की रचना की, ये दोनों कुशल वाग्गेयकार थे। ये दोनों मूर्धन्य कलाकार स्वयं ध्रुवपद गाते थे तथा अपने वंशजों को भी इन्होंने ध्रुवपद गायन की ही तालीम दी, परन्तु अपने शिष्यों को इन्होंने ख़याल गायन की तालीम दी।

दिल्ली घराने ने गायन के साथ वादन में भी काफी नाम कमाया है। इस घराने के सारंगीवादक भी काफी प्रसिद्ध हुए हैं, जिस कारण विलंबित लय प्रधान इस गायकी में सूत तथा मींड़ का काम बहुत अधिक मात्रा में दिखाई देता है। इस घराने में तानों का स्वरूप बहुत ही कठिन होता है तथा उनके नाम भी विचित्र हैं जैसे कुल्फीदार तान, दाँव पेंच की तान, सवाल जवाब की तान, खेंच की तान, उखाड़ की तान, फंदे की तान, झूले की तान, उछाल की तान, उड़ान की तान, सुई धागा तान, मछली तान इत्यादि। विलंबित ख़याल गाने के लिए प्रायः गायक झूमरा तथा तिलवाड़ा आदि तालों का प्रयोग करते हैं।

पटियाला घराना

पटियाला घराना को पंजाब घराना भी कहा जाता है । उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ साहब द्वारा यह घराना चर्चा का विषय बना। पंजाब में भी अलग-अलग रियासतें थीं जैसे- पटियाला, कपूरथला इत्यादि। इन घरानों में भी खयाल गायकी

Scanned with OKEN Scanner

खूब फली फूल। इस घराने को अलैया (जिन्हें अलीबख्श भी कहते हैं) तथा फत्तू (जिन्हें फतेह अली भी कहते हैं) ने चलाया। ये दोनों भाई थे। कुछ लोगों का यह विचार है कि इन भाइयों के पिता बड़े मियाँ कालू खाँ ने इस घराने की नींव रखी। अलीबख्श तथा फतेह अली की गायकी में दिल्ली, जयपुर तथा ग्वालियर, इन तीनों घरानों का सुन्दर सम्मिश्रण रहा। नबी बख़्श व उनके दो पुत्रों मियाँ जान तथा अहमद जान ने ग्वालियर जाकर हद्दू खाँ से ग्वालियर घराने की तालीम हासिल की। अली बख़्श तथा फतेह अली ने जयपुर की गोरखी बाई, बराम खाँ तथा तान रस खाँ से सङ्गीत की शिक्षा प्राप्त की थी। तानरस खाँ (जो दिल्ली घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक थे) ग्वालियर जाकर बस गए थे तथा बाद में ग्वालियर के राजगायक बन गए थे। कुछ समय पश्चात् ये वहाँ से हैदराबाद चले गए तथा अंत तक वहीं रहे। तत्पश्चात इस घराने का प्रतिनिधित्व बड़े गुलाम अली खाँ साहब करते रहे, अपने चाचा काले खाँ से इन्होंने सङ्गीत की शिक्षा प्राप्त की थी। बड़े गुलाम अली खाँ के पिता अली बख़्श तथा चाचा काले खाँ को बड़े मियाँ कालू खाँ से शिक्षा प्राप्त हुई। काले खाँ को फतेह अली द्वारा भी शिक्षा प्राप्त हुई। बड़े गुलाम अली खाँ साहब के उनके पुत्र मुनव्वर अली खाँ द्वारा भी इस घराने ने प्रतिनिधित्व प्राप्त किया। नज़ाकत अली तथा अमानत अली भी इस घराने के मूर्धन्य कलाकार रहे हैं। भारत तथा पाकिस्तान के विभाजन के पश्चात् ये गायक पाकिस्तान चले गए। ये दोनों गायक स्वयं को शाम चौरासी घराने का मानते हैं जो कि पटियाला घराने की ही एक उपशाखा है । पटियाला घराने की गायकी की विशेषताएँ यह है कि इनके द्वारा गाये जाने वाले ख़यालों की बंदिशें कलापूर्ण होती हैं, गले की तैयारी पर ये लोग ध्यान देते हैं। इनके खयालों की बंदिशें छोटी-छोटी होती हैं। वक्र, फिरत तथा अलंकारिक तानों का प्रयोग करते हैं।

रामपुर घराना

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विद्वानों तथा कलाकरों को दिल्ली का परित्याग करना पड़ा, क्योंकि वहाँ वे स्वयं को असुरक्षित अनुभव करने लगे थे। अतः निराश्रय होकर कलाकर वर्ग भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बसनेलगे। उत्तर प्रदेश की स्थिति सबसे विकट थी। यहाँ की कुछ देशी रियासतों के शासक सङ्गीत प्रेमी थे। उनमें रामपुर तथा अवध की रियासतें काफी प्रसिद्ध थीं। यहां के नवाबों ने अपना सम्पूर्ण जीवन सङ्गीत के उत्थान के लिए

Scanned with OKEN Scanner

खूब फली फूल। इस घराने को अलैया (जिन्हें अलीबख़्श भी कहते हैं) तथा फत्तू (जिन्हें फतेह अली भी कहते हैं) ने चलाया। ये दोनों भाई थे। कुछ लोगों का यह विचार है कि इन भाइयों के पिता बड़े मियाँ कालू खाँ ने इस घराने की नींव रखी। अलीबख़्श तथा फतेह अली की गायकी में दिल्ली, जयपुर तथा ग्वालियर, इन तीनों घरानों का सुन्दर सम्मिश्रण रहा। नबी बख़्श व उनके दो पुत्रों मियाँ जान तथा अहमद जान ने ग्वालियर जाकर हद्‌दू खाँ से ग्वालियर घराने की तालीम हासिल की। अली बख़्श तथा फतेह अली ने जयपुर की गोरखी बाई, बराम खाँ तथा तान रस खाँ से सङ्गीत की शिक्षा प्राप्त की थी। तानरस खाँ (जो दिल्ली घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक थे) ग्वालियर जाकर बस गए थे तथा बाद में ग्वालियर के राजगायक बन गए थे। कुछ समय पश्चात् ये वहाँ से हैदराबाद चले गए तथा अंत तक वहीं रहे। तत्पश्चात इस घराने का प्रतिनिधित्व बड़े गुलाम अली खाँ साहब करते रहे, अपने चाचा काले खाँ से इन्होंने सङ्गीत की शिक्षा प्राप्त की थी। बड़े गुलाम अली खाँ के पिता अली बख़्श तथा चाचा काले खाँ को बड़े मियाँ कालू खाँ से शिक्षा प्राप्त हुई। काले खाँ को फतेह अली द्वारा भी शिक्षा प्राप्त हुई। बड़े गुलाम अली खाँ साहब के उनके पुत्र मुनव्वर अली खाँ द्वारा भी इस घराने ने प्रतिनिधित्व प्राप्त किया। नज़ाकत अली तथा अमानत अली भी इस घराने के मूर्धन्य कलाकार रहे हैं। भारत तथा पाकिस्तान के विभाजन के पश्चात् ये गायक पाकिस्तान चले गए। ये दोनों गायक स्वयं को शाम चौरासी घराने का मानते हैं जो कि पटियाला घराने की ही एक उपशाखा है । पटियाला घराने की गायकी की विशेषताएँ यह है कि इनके द्वारा गाये जाने वाले ख़यालों की बंदिशें कलापूर्ण होती हैं, गले की तैयारी पर ये लोग ध्यान देते हैं। इनके खयालों की बंदिशें छोटी-छोटी होती हैं। वक्र, फिरत तथा अलंकारिक तानों का प्रयोग करते हैं।

रामपुर घराना

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विद्वानों तथा कलाकरों को दिल्ली का परित्याग करना पड़ा, क्योंकि वहाँ वे स्वयं को असुरक्षित अनुभव करने लगे थे। अतः निराश्रय होकर कलाकर वर्ग भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बसनेलगे। उत्तर प्रदेश की स्थिति सबसे विकट थी। यहाँ की कुछ देशी रियासतों के शासक सङ्गीत प्रेमी थे। उनमें रामपुर तथा अवध की रियासतें काफी प्रसिद्ध थीं। यहां के नवाबों ने अपना सम्पूर्ण जीवन सङ्गीत के उत्थान के लिए

Scanned with OKEN Scanner

लगा दिया था। इन्हीं दोनों रियासतों में दिल्ली के कलाकारों को शरण मिली। उत्तर प्रदेश की रामपुर रियासत का सम्बन्ध दिल्ली दरबार से अधिकाधिक रहा है। इसलिए रामपुर भी दिल्ली के समान कला का केन्द्र बन गया था। रामपुर रियासत की स्थापना सदारङ्ग युग में ही हो चुक़ी थी। इस कारण रामपुर दरबार के कलाकारों का सम्पर्क दिल्ली दरबार के कलाकारों से होता रहा । रामपुर के उमराव खाँ खण्डारे और उनके सुपुत्र रहमी खाँ तथा अमीर खाँ तानसेन घराने में बहुत प्रसिद्ध कलाकार हुए हैं। वर्तमान पीढ़ी के अग्रगण्य कलाकारों को शिक्षा का रहस्य रामपुर परम्परा से ही प्राप्त हुआ है । यह तथ्य आचार्य्य बृहस्पति ने अपने ग्रन्थ 'सङ्गीत चिंतामणि' के प्रथम खण्ड में पृष्ठ ३५५ पर लिखी है—'यह तथ्य सुविदित है कि रविशंकर जी और निखिल बनर्जी के सितार और अली अकबर खाँ की विश्वव्यापित झंकार का मूल उत्तर प्रदेश की भूतपूर्व रियासत रामपुर के गुण ग्राहक नरेशों और सङ्गीत गुरुओं की उदारता में है। इन कलाकारों के सम्मान्य गुरु उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने वर्षों तक रामपुरीय गुणियों के चरणों में बैठकर सङ्गीत साधना की और रामपुर से उपलब्ध ज्ञान का उदार वितरण अपने योग्य शिष्यों में किया। बहादुर हुसैन खाँ (वाजिद अली शाह के परम प्रिय), अमीर खाँ बीनकार और ध्रुवपद गायक, बाकर अली खाँ (कव्वाल बच्चे, दिल्ली वाले, मौधू खाँ (तदला वादक),कानपुर निवासी अमानी जान (ठुमरी तथा ख़याल गायिका,झूमन तथा मम्मी गायिका हैदर खाँ, मुश्ताक हुसनै खाँ, ये सभी रामपुर दरबार के आश्रित रहे हैं। नगमातुल हिन्द-पृष्ठ ३१ के अनुसार "सदारङ्ग की सन्तानों में प्यार खाँ के पौत्र एवं जाफर खाँ के पुत्र सादिक अली खाँ ने ठुमरी को 'षड़ज-चलन' द्वारा एक उत्तम कला बना दिया । रामपुर के साहज़ादा हैदर अली खाँ इनके भी शिष्य थे। " इस प्रकार हम देखते हैं कि रामपुर रियासत में बसे गुणीजनों ने मुक्त हृदय से सम्पूर्ण भारत के गुणियों में अपनी कला का वितरण किया। रामपुर की परम्परा जिसे सेनिया घराना भी कहते हैं- सदारङ्ग से संबंधित है। इस शैली में स्वर तथा ताल की शिक्षा का विशेष महत्त्व है। गायकी के विभिन्न कायदे, स्वरों की लाग-डॉट, पलटे आदि किस प्रकार गले में उतारे जाएँ, इस पर विशेष विचार हुआ है। आवाज किस विधि से तैयार कराई जाय, तथा लय व ताल की शिक्षा के साथ-साथ भाषा, भाव तथा साहित्य के ज्ञान की आवश्यकता भी समझी गई ।

Scanned with OKEN Scanner

सङ्गीत का आधार वाद्य-तबला

ऐसा लगता है कि सितार की संगति के लिए तबले का आविष्कार दिल्ली में हुआ । शाह आलम ने अपने ग्रन्थ 'नादिरातिशाही' (रचनाकाल १७९७ ई०) में बीन, रबाब, तम्बूरा, सितार, कानून, दमामा, सारंगी, मुहचंग, झाँझ, मंजीरा, ढोलक, दाइरा, बाँसुरी, करह, हीचंग, खटजरी, कटतार, सुरनाई, अबपंग, करनाई, नफीरी, मृदंग, दफ की चर्चा तो की है, परन्तु तबले की नहीं।[१] 'इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक तबले का आविष्कार या प्रचलन नहीं हुआ था। इस युग से पूर्व, अबुल फ़ज्ल, फकीरुल्लाह तथा दरगाह कुली खाँ ने भी किसी तबला वादक का उल्लेख नहीं किया।'[२]

'मुहम्मद करम इमाम ने मियाँ बख़्शू ढारी की चर्चा अत्यन्त सम्मानपूर्वक करते हुए इन्हें एक विशिष्ट शैली का मर्मज्ञ तथा अपने युग के तबला-वादकों में प्रसिद्ध कहा है।' 'मियां बख़्शू ढारी के पुत्र सलारी तथा मम्मू ढारी को मुहम्मद करम इमाम ने गत परन में अच्छा कहा है। नज्जू डेरेदार उस युग के अच्छे तबला वादक थे। अघावन ढारी नक्कारा व तबला अच्छा बजाते थे। आबिद अली ढारी भी उच्च कोटि के तबला वादक थे। एक बार उन्होंने वाज़िद अली शाह को बेताला कह दिया था, तब कुदऊसिंह पखावजी ने कहा कि ये सब तबलानृबाज तो हमारे ग़ुलाम तथा 'सिख्याकार' हैं। इस घटना से सिद्ध होता है कि तबला पखावज का ही छोटा रूप है तथा तबला वादकों का निर्माण पखावज़ वादकों ने ही किया ।'[३]

'तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली के हज़रत अमीर खुसरो ने तबला वाद्य का आविष्कार किया। आचार्य्य बृहस्पति के अनुसार इस मत का सर्वप्रथम उल्लेख अवध के वाज़िद अली शाह के समय लखनऊ में हकीम मुहम्मद करम इमाम ने अपने ग्रंथ "मअदन् उल मूसि़की" में किया है।[४] एक पाकिस्तानी विचार श्री रशीद मलिक साहब की दृष्टि में हजरत अमीर ख़ुसरो केवल ईरानी सङ्गीत के मर्मज्ञ थे। हिन्दुस्तानी सङ्गीत में न तो उन्होंने कोई उल्लेखनीय कार्य्य किया है और न ही कोई आविष्कार।[५] "मअदन्

उल मूसिकी" (रचनाकाल १८५४ ई०) के लेखक मुहम्मद करम इमाम वह पहले व्यक्ति हैं, जिसने हज़रत अमीर खुसरो को सितार, ढोलक और सत्रह तालों का अविष्कारक बताया है तथा यह ग्रन्थ हज़रत अमीर खुसरो की मृत्यु के ५३० वर्ष बाद लिखा गया है।'

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि हज़रत अमीर खुसरो जिनका समय तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक है, उन्होंने स्वयं अपने ग्रंथों में तबले का कोई ज़िक्र नहीं किया है। यद्यपि उनके समकालीन तथा परवर्ती कुछ ग्रन्थों में 'तब्ल' या 'तबल' नामक वाद्य का उल्लेख मिलता है, परन्तु उस समय इन नामों से जिन अवनद्ध वाद्य का उल्लेख मिलता है, वह युद्ध के समय बजाया जाने वाला 'धौंसा' या 'बड़ा नगाड़ा' था। उससे पूर्व अरब, फ़ारस, तुर्की इत्यादि मुस्लिम देशों में भी अनेक अवनद्य वाद्यों के लिए साधारणतः 'तब्ल' शब्द का प्रयोग किया जाता था। परन्तु इनमें से कोई भी अवनद्ध वाद्य भारतीय तबले जैसा नहीं था।

तेरहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक लिखे गए निम्नलिखित ग्रंथों से तत्कालीन सङ्गीत सम्बन्धी जानकारी मिलती है —

१. किरानुस्सादैन- ले० अमीर खुसरो (१३ वीं शताब्दी)
२. नूह -सिपहर- ले० अमीर खुसरो (१४ वीं शताब्दी)
३. हुमायूँ नामा- ले० गुलबदन बेग़म (१६ वीं शताब्दी)
४. अकबरनामा- ले० अबुल फज्ल (१६ वीं शताब्दी)
५. आईनेअकबरी - ले० अबुल फज्ल (१६ वीं शताब्दी)
६. रागामाला- ले० तानसेन (१६ वीं शताब्दी)
७. मुंतवत्तुवारीख - ले० बरनी (१६ वीं शताब्दी)
८. जहाँगीर नामा- ले० मोतमद खान (१७ वीं शताब्दी)
९. शाहजहाँनामा- ले० मु० सालेह कम्बोद (१७ वीं शताब्दी)
१०. सहस रस- बख्शू की रचनाओं का गेय संग्रह (१७ वीं शताब्दी)
११. रागदर्पण- ले० फकीरुल्लाह सैफ खान (१७ वीं शताब्दी)
१२. तोहफतुलहिन्द- ले० मिर्जा खान (१७ वीं शताब्दी)
१३. मुरक्कए देहली- ले० दरगाह कुली खाँ (१८ वीं शताब्दी)

Scanned with OKEN Scanner

इन ग्रन्थों में कलात्मक सङ्गीत संदर्भ में मृदंग, पखावज, ढोलक, इत्यादि अवनद्ध वाद्यों का तथा उनके वादकों का तो उल्लेख मिलता है, परन्तु तबला व उसके वादकों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। मध्य युग में पखावज (मृदंग) वादकों के बाद ढोलक वादकों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। 'इतिहासकार बरनी ने जलालुद्दीन ख़िलजी के दरबारी ढोलक वादक मुहम्मद मना चंगी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, जो उस युग की प्रसिद्ध दरबारी गायिकाओं फ़ुतूहा तथा नुसरत ख़ातून के साथ सङ्गति करता था।'[६]

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मुस्लिम शासन काल में अलग-अलग समय में दिल्ली में खुसरो नाम के तीन विभिन्न व्यक्तियों का सङ्गीत से विशेष सम्बन्ध रहा है, इनमें से एक तो १३वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध सूफी कवि हजरत अमीर खुसरो थे, जिनका जन्म् १२५३ में तथा मृत्यु सन् १३२५ में हुई।[७] दूसरे खुसरो खाँ तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए, जो कि मूलतः गुजरात की 'परिवार' नामक सङ्गीतजीवी निम्न जाति के एक नवयुवक थे तथा जिन्हें खिलज़ी राज्यकाल में सन् १२९७ में गुजरात से बंदी बनाकर दिल्ली लाया गया। बाद में वे मुसलमान हो गए तथा खुसरो खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुए।[८] खुसरो खाँ नामक तीसरे व्यक्ति, अठारहवीं शताब्दी के मध्य मुहम्मद शाह रंगीले के युग में हुए, ये खुसरो खाँ तत्कालीन सुप्रसिद्ध वीणावादक तथा खयाल रचयिता नेमत खाँ 'सदारङ्ग' के भाई व शिष्य थे।[९] आचार्य्य बृहस्पति ने कुछ सूत्रों के आधार पर नेमत खाँ 'सदारङ्ग' के इस भाई का नाम खुसरो खाँ तथा भतीजे का नाम फीरोज़ खाँ 'अदारङ्ग' बताते हुए ख़ुसरो खाँ को सितार का आविष्कर्ता लिखा है।[१०] 'मुगल बादशाह द्वितीय मुहम्मदशाह के समय सन् १७३८ ई० में रहमान खाँ नामक विख्यात पखावजी के पुत्र द्वितीय अमीर खुसरो साहब ने कुछ दिन सदारङ्ग के पास ख़याल गायन सीखा था तथा इसी खयाल गायन के साथ वर्तमान तबला नामक वाद्य का आविष्कार किया।'[११] स्व० आचार्य्य बृहस्पति लिखते हैं- कहा जाता है कि उन्नसवीं शती के आरम्भ में सितार की संगति के लिए तबले का आविष्कार दिल्लीवासी सुधार खाँ ने किया, जिनका वास्तविक नाम सत्तार खां था, उनका समय उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ था ।

Scanned with OKEN Scanner

तबला वादकों के घराने

वर्तमान समय में तबला वादकों के प्रमुख छह घराने माने जाते हैं। जो कि दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फर्रुखाबाद, बनारस तथा पंजाब है। इन सभी घरानों में दिल्ली घराना सबसे प्राचीन घराना माना जाता है । अजराड़ा तथा लखनऊ घरानों के विकास में दिल्ली घराने की प्रमुख भूमिका मानी जाती है। ऐसी मान्यता है कि दिल्ली घराने के वंशजों ने ही आगे चलकर लखनऊ घराने की स्थापना में योगदान दिया ।

दिल्ली घराना

सुधार खाँ (जिन्हें तबले का आविष्कारक भी माना जाता है) दिल्ली घराने के मूल-पुरुष माना जाता है। उन्हीं से दिल्ली घराने का प्रारम्भ माना जाता है। सुधार खाँ के बुगरा खाँ, घसीट खाँ तथा एक (अज्ञात नाम) और पुत्र हुए थे। इन्हीं तीनों के पुत्रों तथा शिष्य परम्परा द्वारा यह घराना आगे बढ़ा तथा इसका नाम दिल्ली बाज रखा गया । तबले के इतिहास के साथ-साथ दिल्ली बाज सर्वप्रथम अपना स्थान रखता है। इस बाज में चाँटी की विशेषता रहती है तथा डुग्गी का भी सौन्दर्य मार्मिक होता है। यह बाज सीधे हाथ की पहली तथा दूसरी अंगुलियों द्वारा ही अक्सर बजाया जाता है, साथ में बाएं का भी काम होता है। दिल्ली बाज में कायदे, पेशकार, गतें व रेले इत्यादि का ही प्रयोग होता है। यह बाज अन्य बाजों की अपेक्षा अधिक मीठा है।

अजराड़ा घराना

दिल्ली घराने के तबला वादक कल्लू खाँ तथा मीरू खाँ (जो भाई थे) ने अजराड़ा घराने की नीवं डाली। ये दोनों भाई मेरठ जिले के अजराड़ा नामक गाँव के निवासी थे। आगे चलकर इसी गांव के नाम से अजराड़ा घराना प्रसिद्ध हो गया। कल्लू खाँ के ही वंशज मुहम्मदी बख़्श उत्तम तबला वादक हुए, इनके पुत्र काले खाँ हुए। काले खाँ के पुत्र हस्सू खाँ तथा हस्सू खाँ के पुत्र शम्भू खाँ ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। इन्हीं शम्भू खाँ के पुत्र हबीबुद्दीन खाँ हुए, जो उच्च कोटि के तबला वादक थे। उस्ताद हबीबुद्दीन अजराड़ा घराने के आधुनिक युग के महान

Scanned with OKEN Scanner

तबला वादक हुए। इन्होंने सङ्गति करने की अपनी निजी शैली निकाली तथा बहुत ही ख्याति अर्जित की। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि अजराड़ा घराने की आत्मा तो दिल्ली घराने की ही है, परन्तु उसका बाहरी रूप थोड़ा अलग है। परन्तु दिल्ली बाज के समान ही यह भी बहुत ही मधुर बाज है। दिल्ली तथा अजराड़ा घराने में अधिकांशतः यही अंतर है कि अजराड़ा घराने के कायदे अधिकतर आड़लय में तथा डगमगाते हुए चलते हैं। इसमें बांए हाथ के बोलों का अधिक प्रयोग किया जाता है ।

लखनऊ घराना

दिल्ली निवासी सुधार खाँ (सिद्धार खाँ) तीसरे पुत्र (जिनका नाम अज्ञात है) के तीन पुत्र थे। मक्कू खाँ (मक्खू खाँ), मोंदू खाँ तथा बख्शू खाँ। इनमें से मोंदू खाँ तथा बख्शू खाँ लखनऊ के नवाब के बुलावे पर दिल्ली से लखनऊ चले गए तथा इन्हीं के द्वारा लखनऊ घराने की नींव पड़ी। मोंदू खाँ के वंशज मम्मू खाँ हुए तथा मम्मू खाँ के पुत्र मुहम्मद खाँ हुए। मुहम्मद खाँ के दो पुत्र बड़े मुन्ने खाँ तथा आबिद हुसैन खाँ हुए। इनमें से बड़े मुन्ने खाँ के पुत्र वाजिद हुसैन खाँ थे, जो आबिद हुसैन खाँ के दामाद भी थे। वाजिद हुसैन खाँ के पुत्र अफाक हुसैन खाँ तथा अफाक हुसैन खाँ के पुत्र इल्मास खाँ हुए। इस घराने के सुप्रसिद्ध शिष्यों में आबिद हुसैन खाँ के शिष्य बीरु मिश्र (बनारस) तथा जहाँगीर खाँ (इन्दौर) हुए। कलकत्ते के हीरु मिश्र भी इनके प्रसिद्ध शिष्यों में हैं।

फर्रुखाबाद घराना

लखनऊ के प्रसिद्ध तबला वादक बख़्शू खाँ का कोई पुत्र नहीं था। इसलिए इन्होंने अपने तबला-वादन कला की सम्पूर्ण शिक्षा अपनी पुत्री को दी। उस पुत्री का विवाह फर्रुखाबाद के विलायत अली खाँ से हो गया।[१२] कहा जाता है कि विलायत अली खाँ को विवाह के समय लखनऊ घराने की बारह गतें दहेज में दी गईं थीं। 'एक अन्य मत के अनुसार इन्हें छः सौ गतें तथा गत परनें मिलीं थीं।'[१३] इन्हीं गतों से विलायत अली खँ ने तबला वादन की एक अलग शैली का विकास किया, जो फर्रुखाबाद घराने के बाज़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार विलायत अली खाँ द्वारा फर्रुखाबाद घराने का जन्म् हुआ। विलायत अली

Scanned with OKEN Scanner

खाँ के पुत्र हुसैन अली खाँ हुए। विलायत अली खाँ के वंशज नन्हें खाँ भी बहुत प्रसिद्ध तबला वादक हुए हैं। नन्हें खाँ के पुत्र मसीत खाँ तथा इनके पुत्र करामत हुसैन खाँ ने भी तबला वादन में प्रसिद्धि अर्जित की। करामत हुसैन खाँ के पुत्र साबिर खाँ हुए। अजीम खाँ मसीत खाँ के सुप्रसिद्ध शिष्य हुए। मसीत खाँ के प्रसिद्ध शिष्यों में लखनऊ के मुन्ने खाँ तथा कलकत्ता के ज्ञान प्रकाश घोष प्रसिद्ध हैं।

इस घराने के अनेक शिष्य प्रसिद्ध तबला वादक हुए हैं। जिनमें हुसैन अली खाँ शिष्यों में निसार अली खाँ (मोदू), मुनीर खाँ, इनके भान्जे अमीर हुसैन खाँ तथा पोते गुलाम हुसैन खाँ हुए हैं। अमीर हुसैन खाँ के पुत्र फकीर हुसैन खाँ हुए हैं। फर्रुखाबाद और लखनऊ घरानों की वादन शैली में बहुत ही सूक्ष्म अंतर है। लखनऊ में सदैव नृत्य का विशेष प्रचार रहा है। अतः वहां के तबला वादकों की शैली पर नृत्य का विशेष प्रभाव रहा है। इनमें कायदे, पेशकार, रेले आदि तो बजाए ही जाते हैं, परन्तु बड़े तथा ज़ोरदार टुकड़े तथा परन का विशेष प्रचलन है। फर्रुखाबाद वादन शैली में चाले तथा रौ का काम विशेष रूप से उल्लेखनीय है तथा गतें भी बहुत प्रसिद्ध हैं। धागे, तेटे, गदि, गन घिड़नग आदि बोल समूहों का अधिक प्रयोग होता है।

बनारस घराना

लखनऊ के प्रसिद्ध तबला वादक मोंदू खाँ के शिष्य बनारस के पं० राम सहास से बनारस घराने का जन्म् माना जाता है। पं० राम सहाय के भाई जानकी सहाय उनके पहले शिष्य थे। तदुपरांत भैरों सहाय प्रताप महाराज भगत जी तथा रामशरण भी उनके शिष्य हो गए।

पं० जानकी सहाय के कोई संतान नहीं हुई। परन्तु उनके दो शिष्य विश्वनाथ तथा गोकुल हुए। विश्वनाथ के शिष्य भगवान प्रसाद तथा भगवान प्रसाद के पुत्र बीरु मिश्र हुए। पं० राम सहाय के दूसरे शिष्य रामशरण के पुत्र दुर्गा जी हुए । दुर्गा जी के पुत्र बिक्कू जी हुए। बिक्कू जी के पुत्र गामा महाराज ऊर्फ गुम्मो जी हुए तथा गामा महाराज के पुत्र पं० रंगनाथ मिश्र हुए। जैसा कि बताया जा चुका है कि बनारस घराने के अठिष्ठाता पं० रामसहाय जी लखनऊ के उ० मोंदू खाँ के

Scanned with OKEN Scanner

शिष्य थे। पं० रामसाहय जी के ही एक शिष्य परतप्पू जी के पुत्र पं० जगन्नाथ हुए। पं० जगन्नाथ के दो पुत्र पं० शिवसुंदर तथा पं० बाचा मिश्र हुए, जिनमें से शिवसुंदर जी के पुत्र बनमोहन महाराज तथा बाचा मिश्र के पुत्र श्री सामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराज हुए कंठे महाराज के शिष्य पं० शारदा सहाय हैं, जो कि मूलतः पं० रामसहाय के वंशज होने के कारण बनारस घराने के उत्तराधिकारी भी माने जाते हैं। बनारस घराने क अधिष्ठाता पं० राम सहाय जी लखनऊ के उस्ताद मोंदू खाँ के शिष्य थे। अतः लखनऊ की वादन शैली की सभी विशेषताएं तो बनारस में आईं ही तथा साथ-साथ वहां की सामाजिक स्थिति तथा सङ्गीत के प्रभाव से वादन शैली में अंतर आ गया। बनारस सदा से ही हिन्दू धर्म तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति का केन्द्र रहा है। अतः उसके प्रभाव से तबला भी प्रभावित हुआ। यहाँ पखावज का अधिक प्रचार होने के कारण बाज खुला तथा ज़ोरदार हो गया। बनारस पूरब अङ्ग की ठुमरी के लिए बहुत प्रसिद्ध है, अतः तबले में लग्गी लड़ी का काम अधिक होने लगा। छन्द, जोरदार परन, लग्गी लड़ी बजाना बनारस घराने की विशेषता बन गयी। थाप, लौ और स्याही का काम अधिक तथा धिरधिर धेटे धेटे, कड़ान गदिगन, आदि बोलों का अधिक प्रयोग होने लगा। दुर्गा सहाय नन्नू जी (सूरदास) अंधे थे। इसके उपरांत भी बनारस घराने के प्रसिद्ध तबला वादकों में इनका नाम है।

बनारस के तबलाचार्य्यों में पं० प्रतापू महाराज भी एक विद्वान तबला वादक हुए हैं। कहा जाता है कि इनको महाकाली का वरदान प्राप्त था।

पंजाब घराना

तबला वादकों के अन्य घरानों के वादक जहाँ किसी न किसी रूप में मूलतः दिल्ली से सम्बन्धित रहे हैं, वहाँ पंजाब घराने के तबला वादकों द्वारा पंजाब घराने का विकास स्वतंत्र रूप से माना गया है। पंजाब के सबसे पुराने तबला-वादक फ़कीर बख़्श खाँ को इस घराने का जन्मदाता माना गया है। ऐसे माना जाता है कि पंजाब के फ़कीरबख़्श खाँ, कादिर बख़्श खाँ और हद्दू खँ ने मध्ययुग के सुप्रसिद्ध पखावजी लाला भवानी दास से पखावज की शिक्षा पायी थी। बाद में फकीर बख़्श खाँ ने पखावज के खुले बोलों को बन्द बोलों में परिवर्तित करके एक नवीन शैली को

Scanned with OKEN Scanner

जन्म दिया, आगे चलकर यही पंजाब घराने के नाम से प्रसिद्ध हुई। पखावज का सर्वाधिक प्रभाव पंजाब की वादन शैली पर दिखाई पड़ता है। पंजाब में कहीं-कहीं आज भी बायें पर स्याही के स्थान पर आटा लगाने की प्रथा है। पंजाब में बड़े-बड़े कायदे, लम्बी गतें, परनों तथ लयकारियों के काम का अधिक प्रचार है।

संदर्भ

१. खुसरो, तानसेन व अन्य कलाकार, ले० सु० बृ०, पृ० २१७
२. खुसरो, तानसेन व अन्य कलाकार, ले० सु० बृ०, पृ०२१७
३. खुसरो, तानसेन व अन्य कलाकार, ले० सु० बृ०, पृ०२१८
४. मुसलमान और भारतीय सङ्गीत, ले० सु० बृ०, पृ० ९४
५. हजरत अमीर खुसरो का इल्मे मूसिकी और दूसरे मक़ालात- ले० रशीद अहमद, पृ० ३०५
६. हजरत अमीर खुसरो का इल्मे मूसिकी और दूसरे मक़ालात- ले० रशीद अहमद, पृ० २९८
७. मुसलमान और भारतीय सङ्गीत, ले० आ० बृ०, पृ० ५८
८. खुसरो, तानसेन व अन्य कलाकार- ले० सु० बृ०, पृ० ९०
९. खुसरो, तानसेन व अन्य कलाकार- ले० सु० बृ०, पृ० २९ तथा ३२
१०. खुसरो, तानसेन व अन्य कलाकार- ले० सु० बृ०, पृ० ८७ तथा १३९
११. तबलार कथा-ले० सुबोध नंदी-पृ० ४
१२. तबला, पृ० २९६
१३. तबला, पृ० २९७

Scanned with OKEN Scanner

ठुमरी : एक अध्ययन

ठुमरी गायन के प्रचार को अभी ज़्यादा समय नहीं हुआ है तक़रीबन दो शताब्दियों से इसका प्रचलन हुआ है । यह उत्तर भारत में सर्वत्र लोकप्रिय हो गयी है। इस गायकी के अधिक घराने नहीं बन सके हैं, परन्तु दो घरानों की नींव पड़े काफी समय हो चुका है । ये घराने हैं पूरब अंग की ठुमरी तथा पंजाब अंग की ठुमरी के । आगरा घराने के प्रसिद्ध गायक फैयाज खाँ साहब भी ठुमरियाँ गाया करते थे, परन्तु उनको अधिक प्रसिद्धि ख़याल गायन में ही मिली। भैया गनपत राव, जो कि ग्वालियर राज घराने के थे, इनका जन्म् प्रसिद्ध गायिका चन्द्रभागा के गर्भ से हुआ था। रामपुर के छम्मन साहब इनके मौसेरे भाई थे। आवाज़ की खराबी के कारण इन्होंने हारमोनियम का अभ्यास अधिक किया था । जिस प्रकार सदारंग की प्रतिभा ने ख़याल गायन को प्रभावित किया, उसी प्रकार भैया गनपत राव के चिन्तन ने ठुमरी को लोकप्रिय किया । ऐसा कहा जाता है कि ठुमरी का प्रचार अवध के अन्तिम नवाब वाजिद अली शाह के समय में हुआ । इन्होंने स्वयं ही "अख़्तरपिया" के उपनाम से अनेकों ठुमरियाँ बनाई। इनके अतिरिक्त ललनपिया, चाँदपिया, कदरपिया, तथा फज़ल हुसैन आदि संगीतजीवियों ने भी अनेक ठुमरियों की रचना की तथा इनका प्रचार किया। ठुमरी का प्रचार राजदरबारों में कथक नृत्य के साथ हुआ। दरबारी गायक दरबार में ठुमरी गायन प्रस्तुत करके भिन्न-भिन्न भावों की अभिव्यक्ति करता था तथा राजनर्तक या नृत्यांगना उन भावों को अपनी अंग की भाव-भंगिमाओं द्वारा अभिव्यक्त करते थे। कुछ समय बाद ठुमरी ने अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित कर लिया । अवध नवा़ब वाज़िद अली शाह के प्रसिद्ध राजनर्तक (कथक) बिन्दादीन महाराज ने भी अनेक ठुमरियों का निर्माण किया । "सनदपिया" भी ठुमरियों के प्रसिद्ध रचयिता हुए हैं, इनका वास्तविक नाम तवक्कुल हुसैन खाँ था तथा ये बरेली के निवासी थे। सनदपिया रामपुर में रहकर उन बहादुर हुसैन खां सुर सिंगार वादक से शिक्षा प्राप्त करते थे जो स्व० भातखण्डे जी के रामपुर निवासी गुरु स्व० वज़ीर खाँ के नाना थे ।[१]

मौज़ुद्दीन खाँ, जयपुर की गोरखीबाई, जौहरजान (कलकत्ता), पीरबाई

(लखनऊ) इत्यादि गायक गायिकाओं ने भी ठुमरी गायन के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की ।

''चिश्तिया परम्परा के सूफी कव्वालों की दृष्टि में पूज्य थे। दिल्ली सूफियों का केन्द्र थी। अवध के नवा़ब लोग शिया थे, सूफियों की ओर इन नवा़बों की विशिष्ट आस्था न थी। ये नवाब ईरानी शिया मुसलमानों के वंशधर थे, अतः शुजाउद्दौला आसफुद्दौला और वाज़िद अली शाह का रुझान कव्वाली की ओर न था । ये लोग अवध के लोकगीतों की ओर उन्मुख हुए और इन्होंने ठुमरी, चैती और कजरी को दरबार में प्रतिष्ठित किया।''[२]

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार बादशाह नसीरूद्दीन हैदर के पोते व़जीर मिर्जा (कदर पिया) ठुमरी के प्रवर्तक हैं।[३] मुहम्मद करम इमाम ने 'कदरपिया' की एक ठुमरी के बोल इस प्रकार लिखे हैं-

सैयां करवटियाँ लेने दे, तरप तरप बीती रैन।
सांवरी सूरत मदभरी मूरत, रस टपकत बाकी छतियन
अरे करवटियां लेने दे ।

इस ठुमरी की तकरार अरे लेने दे, भला लेने दे, सैयां लेने दे, बलमा लेने दे, गुँइया लेने दे, अच्छी लेने दे, को मुहम्मद करम इमाम ने बेहूदा कहा है ।[४]

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार ठुमरी अंग पर ही आसफुद्दौला (मृत्युकाल 1797 ई०) के आश्रित कलाकार और 'नग़मातेआसफी' के लेखक मुहम्मद रज़ा ने रज़ाखानी 'गतों' की रचना की ।

'कदरपिया' की कई ठुमरियाँ 'क्रमिक पुस्तक मलिका' के विभिन्न भागों में संग्रहीत हैं तथा भ्रमवश छोटा ख़याल समझी जाती हैं। ये ठुमरियाँ निम्न पृष्ठों पर हैं। 'क्रमिक पुस्तक मलिका' भाग-२ में पृ० १३५,१३७, १३८,१५६, १५७, ३२८, ३३०, ३३१, ३३३, ३३४, ३३५, तथा क्रमिक पुस्तक मलिका भाग ३ में- ३०५, ३०७, ३११, ६२५, ६२९ और ६३० पर।

'सदारंग' की सन्तानों में प्यार खाँ के पौत्र एवं जाफर खाँ के पुत्र सादिक

Scanned with OKEN Scanner

अली खाँ 'राहतुद्दौला' ने ठुमरी को 'षड्जचालन' के द्वारा एक उत्तम कला बना दिया।[५] भैया गनपत राव ने भी ठुमरी की शिक्षा सादिक अली खाँ से ली थी। कहा जाता है कि मौजुद्दीन ने पहले कुछ दिनों तक इन सादिक अली खाँ से सीखा, तथा बाद में वे भैया गनपतराव के शिष्य हुए । ये सादिक अली खाँ बनारस में भी रहे थे । सादिक अली खाँ अपनी परम्परा की रक्षा करते थे तथा वेश्याओं को शिक्षा देना ढारियों का काम समझते थे ।[६]

मुहम्मद करम इमाम ने ठुमरी और ग़जल गाने में निपुण धूगन बाई और हुसैनी बाई की चर्चा की है। संभवत:: ये लखनऊ की थी।[७] फर्रुखाबाद की लज़्ज़त बख़्श भी ठुमरी तथा ग़ज़ल की अच्छी गायिका थी, ये रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के दरबार में थी।[८]

अब एक प्रश्न यह उठता है कि आख़िर ठुमरी क्या है?

कहते हैं सौन्दर्य वही है, जहाँ प्रति क्षण नवीनता हो। नदी वही होती है, परन्तु उसमें प्रति क्षण मचलती हुई लहरियाँ नव-नव होती हैं, इसलिये सहृदयों का मन उसमें सदा रमा रहता है। सौन्दर्य अतन्तता में है, प्रकृति चिरसुंदरी है, क्योंकि उसके सौन्दर्य में प्रतिक्षण नवीनता है। संगीत का प्रयोजन ही सांसारिक चिन्ताओं से दबे हुए या थके हुए मानव को उन चिंताओं से मुक्त कराकर आलौकिक सुख की प्राप्ति कराना है। जिसमें यह गुण हो, उसे ही भली-भांति गाया हुआ संगीत (सम्यक-गीत) कहना चाहिये अन्यथा वह कोलाहल मात्र है, भले ही वह कोई भी शैली या प्रकार का हो।

"ठुमरी शब्द के 'ठुम' और 'री' दो अंश हैं। 'ठुम' ठुमकने का द्योतक है और 'री' अन्तरंग सखी से अपने मन की बात कहने का। ठुमरी का विषय नायिका के हृदय की असंख्य का चित्रण है ।"[९]

स्वरों का भावानुकूल, वैचित्र्यमय प्रयोग ठुमरी का स्वर पक्ष है। जिसके प्रयोग के लिए कल्पना भी ऊंची उड़ान चाहिये। इसी उड़ान को लेकर भैया गनपतराव पैदा हुए थे।

ठुमरी का साहित्य अधिकतर प्रेयसी के वियोग को, करुण भाव को तथा

Scanned with OKEN Scanner

अली खाँ 'राहतुद्दौला' ने ठुमरी को 'षड्जचालन' के द्वारा एक उत्तम कला बना दिया।[५] भैया गनपत राव ने भी ठुमरी की शिक्षा सादिक अली खाँ से ली थी। कहा जाता है कि मौजुद्दीन ने पहले कुछ दिनों तक इन सादिक अली खाँ से सीखा, तथा बाद में वे भैया गनपतराव के शिष्य हुए । ये सादिक अली खाँ बनारस में भी रहे थे । सादिक अली खाँ अपनी परम्परा की रक्षा करते थे तथा वेश्याओं को शिक्षा देना ढारियों का काम समझते थे ।[६]

मुहम्मद करम इमाम ने ठुमरी और ग़जल गाने में निपुण धूगन बाई और हुसैनी बाई की चर्चा की है। संभवत:: ये लखनऊ की थी।[७] फर्रुखाबाद की लज़्ज़त बख़्श भी ठुमरी तथा ग़ज़ल की अच्छी गायिका थी, ये रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के दरबार में थी।[८]

अब एक प्रश्न यह उठता है कि आख़िर ठुमरी क्या है?

कहते हैं सौन्दर्य वही है, जहाँ प्रति क्षण नवीनता हो। नदी वही होती है, परन्तु उसमें प्रति क्षण मचलती हुई लहरियाँ नव-नव होती हैं, इसलिये सहृदयों का मन उसमें सदा रमा रहता है। सौन्दर्य अतन्तता में है, प्रकृति चिरसुंदरी है, क्योंकि उसके सौन्दर्य में प्रतिक्षण नवीनता है। संगीत का प्रयोजन ही सांसारिक चिन्ताओं से दबे हुए या थके हुए मानव को उन चिंताओं से मुक्त कराकर आलौकिक सुख की प्राप्ति कराना है। जिसमें यह गुण हो, उसे ही भली-भांति गाया हुआ संगीत (सम्यक-गीत) कहना चाहिये अन्यथा वह कोलाहल मात्र है, भले ही वह कोई भी शैली या प्रकार का हो।

''ठुमरी शब्द के 'ठुम' और 'री' दो अंश हैं। 'ठुम' ठुमकने का द्योतक है और 'री' अन्तरंग सखी से अपने मन की बात कहने का। ठुमरी का विषय नायिका के हृदय की असंख्य का चित्रण है ।''[९]

स्वरों का भावानुकूल, वैचित्र्यमय प्रयोग ठुमरी का स्वर पक्ष है। जिसके प्रयोग के लिए कल्पना भी ऊंची उड़ान चाहिये। इसी उड़ान को लेकर भैया गनपतराव पैदा हुए थे।

ठुमरी का साहित्य अधिकतर प्रेयसी के वियोग को, करुण भाव को तथा

उसकी चंचलता को दर्शाता है। इसके साहित्य में भगवान श्री कृष्ण के वियोग में तड़पती गोपियों का वर्णन मिलता है।

ठुमरी, जतताल, पंजाबी तीन ताल 'दादरा' कहरवा इत्यादि ठेकों में गायी जाती है । ख़याल की ही भांति इसके दो भाग होते हैं स्थायी व अंतरा। ठुमरी में गायक या गायिका अपने मन के भावों का प्रदर्शन ठुमरी के साहित्य के द्वारा तथा स्वर के लगाव के द्वारा करता है। यह गायन शैली भाव प्रधान है। नर्तक व नर्तकियाँ इस गायन शैली पर नृत्य भी करते हैं तथा गायक जो भावनाएँ स्वरों के लगाव से प्रकट करता है वही भावनाएं नर्तक या नर्तकी अपने हाव-भावों से प्रकट करते है। ठुमरी भैरवी, खमाज, पीलू, झिझोंटी, मांड, तिलंग इत्यादि रागों में गायी जाती है। राग की शुद्धता का ध्यान इसमें नहीं रखा जाता। हर क्षण नवीनता लाने के लिये गायक इसमें मिलते-जुलते रागों का मिश्रण करता रहता है। शायद इसीलिये भातखण्डे जी ने इसकी जाति ध्रुवपद तथा ख़याल की तुलना में नीची अर्थात् शूद्र मानी है। शब्दों की कोमलता तथा स्वरों का लगाव इस शैली की खास विशेषता है ।

इस गायन शैली के भी दो अङ्ग प्रचलित हैं। १. पूरब अंग की ठुमरी तथा २. पंजाब अंग की ठुमरी। पूरब अंग की ठुमरी लखनऊ तथा वाराणसी में प्रसिद्ध है, तानों का प्रयोग इसमें बिलकुल नहीं किया जाता छोटी मुर्कियाँ, विचित्र स्वरावलियाँ इस अंग की विशेषता है। पंजाब अंग की ठुमरी भी टप्पा अंग से गायी जाती है अर्थात छोटी-छोटी तानों का प्रयोग इसमें स्वतंत्र रूप से होता है एक ही स्वर के अनेक रूप भी सुंदरता बढ़ाने के लिए इसमें लगाये जाते हैं। पंजाब अङ्ग की ठुमरियों का साहित्य पंजाबी में होता है, परन्तु पंजाब में खड़ी बोली और ब्रजभाषा की ठुमरियाँ भी गायी जाती हैं। परन्तु पूरब अङ्ग की ठुमरियों का साहित्य ब्रजभाषा या खड़ी बोली में होता है ।

ठुमरी की एक प्रकृति है वह 'बिरहिन' भी है तथा 'मदभरी सुहागिन' भी। उसे संयोग से वियोग की आशंका है। वियोग में उसे स्मृतियाँ बेचैन बनाती हैं। इसलिये हूक या टेर से वह शून्यः कभी भी नहीं है । टीस न होने पर भी वह टीस का अभिनय करती है और जब उसमें टीस होती है, तब सुनने वालों की आँखों में गंगा जमुना बह उठती है ।[१०]

ठाकुर जयदेव के विचार ठुमरी के विषय में निम्न हैं जो उन्होंने ठुमरी संग्रह (जिसके संकलन कर्त्ता गंगाधर राव तैलंग हैं) के आमुख पृ० ४ पर दिये हैं-

"ठुमरी की गायकी का अपना वैशिष्ट्य है। यह रूपक संगीत का ही एक प्रारूप है। सभी कलाओं की अभिव्यक्ति में मानव की दो मुख्य प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं, जो भरत के शब्दों में सात्वती और कैशिकी वृत्ति कही जा सकती है और आधुनिक शब्दों में classical (क्लासिकल) romantic (रोमान्टिक)। ठुमरी कैशिकी वृत्ति या रूमानी शैली की गायकी है। इसका सबसे प्राचीन रूप मिलता है छलिक संगीत में। यह अभिनयात्मक संगीत था। श्रीकृष्ण जी के सुपुत्र साम्ब और प्रद्युम्न ने ब्रजभानपुर में असुरों के रंगमंच पर इसका प्रदर्शन किया था। कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक में मालविका इसका प्रदर्शन करती हुई दिखलाई गयी है । इसमें स्वराश्रित वाचिक और आंगिक दोनों प्रकार के अभिनय होते थे।"[११]

"ठुमरी में छलिक की ही प्रवृत्ति विद्यमान है। यह उसी का एक देशी प्रारूप है। इसमें स्वराश्रित वाचिक और आंगिक अभिनय होते रहे हैं जैसे छलिक का प्रयोग नृत्य के साथ होता रहा, वैसे ही ठुमरी का भी प्रयोग नृत्य के साथ होता रहा है। इसका गान बाई लोग, कथक और भाण्ड नृत्य के साथ किया करते रहे हैं, जिसमें अभिनय का पर्याप्त रूप भी प्रयोग होता रहा है। कर्णाटक संगीत में इसकी समकक्षी शैली "पदम्" है, जो अब भी नृत्य और अभिनय के साथ गयी जाती है । हिन्दुस्तानी संगीत में ठुमरी-गायकी से धीरे-धीरे अभिनय का अंश लुप्त होता जा रहा है। अब केवल कथक लोग भाव-नृत्य के लिए ठुमरी गाते हैं, जिसमें नृत्य के साथ ठुमरी के बोलों के भाव वाचिक और आंगिक अभिनय के द्वारा व्यक्त करते हैं। उस्ताद लोग जब ठुमरी गाते हैं, तब वे अभिनय का प्रयोग नहीं करते। भाव की अभिव्यक्ति वे केवल स्वरों के द्वारा करते हैं, अङ्ग के द्वारा नहीं।[१२]

ठाकुर जयदेव सिंह जी लिखते हैं—जिन लोगों ने ठुमरी को चपल और क्षुद्र गायकी बतलाया है लगता है उन्होंने मध्यलय की ठुमरी के आधार पर यह धारणा बना ली है । विलम्बित लय में गायी जाने वाली ठुमरी में चपलता नहीं है और कुशल गायक उसमें जिस प्रकार का बोल-बनाव या बोल-आलाप करता है, वह अत्यन्त मनमोहक होता है। मध्यलय की ठुमरियों में लय की चपलता की

Scanned with OKEN Scanner

ही विशेषता है। ये ठुमरियाँ अधिकतर वाद्य की "गत" के आधार पर बनायी गयी हैं और नृत्य के साथ गाने के लिए अधिक उपयोगी हैं। विशेषकर सनद पिया और ललन पिया की ठुमरियाँ सितार और सरोद की गतों से होड़ लेती हैं। बन्दिश की ठुमरी का एक प्रकार और है, जो न तो बहुत विलम्बित है, न द्रुत। इस प्रकार की ठुमरी अधिकतर सावकाश अभिनय के लिए रची गयी होती है।[१३]

कुछ लोगों ने ठुमरी को काव्य के श्रृंगार रस की ही एक शैली समझ रखा है। ठुमरी काव्य का अंग नहीं है, वह संगीत की ही एक भाव-प्रधान शैली है। ११वीं शती में प्रकाशित कृष्णानन्द व्यास के संगीत-राग-कल्पद्रुम में ठुमरी शीर्षक के अन्तर्गत कुछ भजन दिए हुए हैं। ठुमरी यदि केवल श्रृंगार रस की शैली होती, तो उसमें भजन का समावेश कैसे हो जाता ? कुछ भजनों को ठुमरी शीर्षक में रखने का अर्थ यही है कि वे ठुमरी-अङ्ग से गाये जाते रहे। कई वादक कुछ गतों को विशेषकर ललित, मर्मस्पर्शी, लोकप्रिय रागों तथा भैरवी, पीलू, खमाज, काफ़ी इत्यादि में ठुमरी-अंग से बजाते हैं। "ठुमरी-अङ्ग" शब्द ही यह सिद्ध करता है कि ठुमरी संगीत की ही एक शैली है, काव्य की नहीं।[१४]

"ठुमरी-अङ्ग अथवा ठुमरी-शैली का क्या तात्पर्य है? इस पर भावपक्ष अथवा गुण और कलापक्ष— इन दो दृष्टियों से विचार करना होगा। कला विशेषकर काव्य और संगीत के तीन मुख्य गुण हैं— ओज, प्रसाद और द्रुति। प्रसाद गुण तो एक प्रकार से सभी शैलियों में होना चाहिए। किन्तु ओज और द्रुति ऐसे गुण हैं, जो विशेष-विशेष शैलियों में ही होते हैं। जितने रस हैं उन सभी का अन्तर्भाव उक्त तीन गुणों में हो जाता है । ठुमरी द्रुति गुण की शैली है। इस द्रुति गुण में शान्त, श्रृंगार, करुण और भक्ति का समावेश है। अतएव ठुमरी अंग से ये सभी व्यक्त किए जा सकते हैं। यह भ्रान्त धारणा है कि ठुमरी द्वारा केवल श्रृंगार व्यक्त होता है या हो सकता है। हाँ, यह सच है कि ठुमरी के अधिक निबन्धन (बन्दिशें) श्रृंगार के ही मिलते हैं। उसका कारण यह है कि ठुमरी प्रायः नवाबों, सामन्तों, राजाओं के दरबार में गायी जाती रही और उनको श्रृंगार ही सबसे अधिक प्रिय था। इसलिए उसके निबन्धन प्रायः श्रृंगार के ही मिलते हैं। मुहम्मद करम इमाम ने (जो वाजिद अली शाह के काल में हुए थे) ऐसी ठुमरियाँ, जो सर्वथा भ्रष्ट और अश्लील थीं और उन्होंने इस प्रकार की बन्दिशों की जी खोल कर निन्दा की है। किन्तु बन्दिशों की दृष्टि से ख़याल की दशा भी कुछ अच्छी नहीं रही।

Scanned with OKEN Scanner

लगभग ७५ प्रतिशत ख़याल लंगर की ढिठाई, कर मरोड़ने और चूड़ियाँ फोड़ने, सास-ननद का झगड़ा, 'सास-ननद मोरी जनम की बैरिन' इत्यादि भावों से भरा पड़ा है। इसलिए केवल ठुमरी को ही क्षुद्र नहीं कह सकते । बोल की बन्दिश की दृष्टि से ख्याल कुछ कम क्षुद्र नहीं है। अख्तर पिया (वाजिद अली शाह) की मुद्रा की एक ठुमरी मिलती है, जिसमें उक्त प्रकार के भाव की गन्ध भी नहीं है— 'सुध विसर गई आज अपने गुगन की'। यह सच है कि ऐसी ठुमरियों की संख्या अत्यन्त अल्प है।[१५]

कला-पक्ष की दृष्टि से ठुमरी की निराली विशेषता है। रूपकालप्ति की भूरि मनोहर भाव, काकु का मर्मस्पर्शी प्रयोग, मुर्की, झटका, खटका, मींड, दर्द, पुकार, भाव के अनुकूल स्वरों का लगाव-इत्यादि इसकी कलापक्ष की विशेषताएँ हैं। अतएव ठुमरी-अङ्ग संगीत की एक विशेष शैली है, जो सर्वथा romantic music या कैशिकी कही जा सकती है।[१६]

कुछ लोगों ने यह प्रचार कर रखा है कि ठुमरी के जन्मदाता वाज़िद अली शाह थे। यह सर्वथा कपोलकल्पित प्रचार है, एक भ्रान्त धारणा है। कैप्टेन विलर्ड बाँदा के नवाब की सेना के एक विशेष अधिकारी थे। वह एक बड़े संगीतज्ञ थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Music of Hindustan' में ठुमरी गायकी की बड़ी प्रशंसा की है। कैप्टेन विलर्ड की उक्त पुस्तक का प्रथम प्रकाशन ईसवी शती १८३८ में हुआ था। पुस्तक के प्रकाशन के कई वर्ष पूर्व लगभग १८१८-२० में विलर्ड ने ठुमरी सुनी थी। उस समय भी उसे ठुमरी ही कहते थे। उसका कोई अन्य नाम नहीं था। वाजिद अली शाह सन् १८२२ की ३० जुलाई को पैदा हुए थे। जब कैप्टेन विलर्ड ने ठुमरी सुनी थी, उस समय वाजिद अली शाह दो-चार वर्ष के रहे होंगे। क्या कोई जन्म लेते ही वह ठुमरी का जन्मदाता भी हो सकता है? इससे बढ़ कर और कपोल कल्पना क्या हो सकती है? वाज़िद अली शाह ने ठुमरी को प्रोत्साहन अवश्य दिया। वह उसके जन्मदाता नहीं थे ।

पूरब अंग की ठुमरियाँ

पूरब अंग की ठुमरियों के अन्तर्गत बनारस (वाराणसी) तथा लखनऊ की ठुमरियाँ आती हैं । पूरब अंग की ठुमरियों में लोक गीतों की धुनों का तथा शास्त्रीय

Scanned with OKEN Scanner

रागों का बहुत ही सुन्दर मिश्रण होता है। इन शैलियों में धीमी लय, बोल आलाप, छोटी- छोटी बोल तानें, छोटी-छोटी मुर्कियां इत्यादि ली जाती हैं। इनमें स्थाई तथा अन्तरा गाया जाता है तथा स्वरों की कोमलता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। गायन के समय हर क्षण एक नवीनता की अनुभूति गायक द्वारा करायी जाती है, जिससे श्रोता पूर्णतय: उसमें खो जाता है । बनारस की रसूलन बाई, गिरजा देवी, सिद्धेश्वरी देवी तथा लखनऊ की बेग़म अख्तर तथा अख्तरी बाई प्रसिद्ध गायिकाएँ हैं। आधुनिक समय में निर्मला देवी, हीरा देवी मिसरा, परवीन सुल्ताना, लक्ष्मी शंकर, शोभा गुर्टू, सविता महाराज, श्रीमती अनीता सेन इत्यादि के नाम ठुमरी गायन में प्रसिद्ध हैं।

पंजाब अंग की ठुमरियाँ

ठुमरियों के ससाथ-साथ टप्पा भी पंजाब घराने की देन संगीत जगत को है। टप्पा पहले पंजाब में ऊँट हाँकने वालों द्वारा गाया जाता था, परन्तु बाद में गुलाम नबी शोरी द्वारा यह शास्त्रीय संगीत में प्रवेश पा गया, टप्पे का प्रभाव पंजाब अंग की ठुमरियों पर भी पड़ा है। पंजाब में जो ठुमरियाँ गायी जाती हैं उनमें कई रागों का मिश्रण हो जाता है तथा वह एक नयेपन तथा विचित्रता का आभास निरन्तर देती रहती हैं। 'सनदपिया' की कुछ ठुमरियाँ ऐसी भी हैं जिनमें राग पूर्णतय: शुद्ध रहा है जैसे सोहनी तथा परज इत्यादि रागों में ठुमरियाँ । स्व० भातखण्डे जी कहते हैं 'ठुमरी भी एक क्षुद्र गीत ही माना जाता है। उच्च कोटि के गायक ठुमरी गायन को निम्नकोटि का गायन कहते हैं।'[१७]

"ठुमरी के दो मोटे-मोटे भेद किए जा सकते हैं। 'बोलबाँट' की ठुमरी तथा 'बोल बनाव' की ठुमरी। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, रामपुर, बरेली, इत्यादि स्थानों में रचित बन्दिश की ठुमरियों में बोलों का बाँट लय में गुँथा होता है। स्वर पक्ष में बनाव भी लय की बाँट के अधीन होता है। लखनऊ के कथक कलाकार इसी अंग की ठुमरियों में बाँट बताते थे।"[१८]

स्व० भातखण्डे जी ने क्रमिक पुस्तक मलिका के विभिन्न भागों में 'सनदपिया' की ठुमरियाँ दी हैं, जिन्हें साधारणतय: छोटा ख़याल समझा गया है ।

अस्तु, चर्चा पंजाब अंग की ठुमरियों की चल रही है। पंजाब अंग की

Scanned with OKEN Scanner

ठुमरियों की एक विशेषता यह है कि इसमें खटके, मुर्की इत्यादि की भरमार होती है। "कतिपय विद्वानों ने ठुमरी गायन की उत्पत्ति लोकगीतों से मानी है, उनके अनुसार लोकगीतों ने ही विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत शैनेः शनैः ठुमरी का रूप धारण कर लिया और कुशल शास्त्रीय गायकों के हाथों में आकर इसने शास्त्रीय मुखौटा धारण कर लिया"[१९]

पंजाब के संगीत के संदर्भ में ठुमरी के सम्बन्ध में यह कहना उचित होगा कि पंजाब के कलाकारों ने अपनी अनोखी सूझबूझ, भावुकता, और गले की सूक्ष्म हरकतों से इसे ऐसा चमत्कारपूर्ण रूप प्रदान कर दिया कि पंजाब का ठुमरी गायन समस्त भारत के ठुमरी गायन से अलग हो गया तथा इसी कारण पंजाब अंग की ठुमरी समस्त विश्व में अपना अलग स्थान बना गयी। पंजाब अंग की ठुमरियों में पंजाब के आंचलिक लोकगीतों, जैसे पहाड़ी धुनों तथा माहिया आदि की धुनों की स्पष्ट झलक मिलती है। पंजाब के सुप्रसिद्ध ठुमरी गायक उस्ताद बरकत अली खां द्वारा गायी गयी ठुमरी 'बागों में पड़े झूले' बहुत प्रसिद्ध हुई, जो माहिया की धुन पर आधारित है ।

पूरब अंग की ठुमरी में जहां शब्दों के बोलबनाव द्वारा भाव की अभिव्यक्ति की जाती है, वहाँ पंजाब अंग की ठुमरी में बोलबनाव के अतिरिक्त गायन को छोटी-छोटी तानों, बोलतानों, मुर्की, खटके, जमजमे आदि से भी सजाया जाता है। यही अंग पंजाब की लोक धुनों में भी दिखाई पड़ता है। पंजाब अंग की ठुमरियों में टप्पा अंग की तानों की झड़ी सी लगी रहती है। पूरब अंग की ठुमरियों में जहाँ मध्य व तार सप्तक दोनों में स्वर विस्तार होता है, वहीं पंजाब अंग की ठुमरियों में तार सप्तक में अधिक विस्तार किया जाता है। "पंजाब अंग की शैली ने लगभग पचास वर्ष पहले, हिन्दुस्तान में प्रसिद्धि प्राप्त की है।"[२०] इससे पहले यह पंजाब की सीमा में ही अवरुद्ध होकर रह गयी थी। किराना घराना के अब्दुल करीम खाँ, आगरा घराने के उ० फैयाज खाँ आदि कलाकारों द्वारा अपनाए जाने के पश्चात् ही ठुमरी को नया जीवन मिला तथा साथ ही साथ पंजाब अंग की ठुमरी भी समस्त भारत में प्रचलित हो गयी। पंजाब अंग की ठुमरी को जगतव्यापी बनाने में उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली खाँ साहब तथा उनके बड़े भाई बरकत अली खाँ साहब का काफी योगदान रहा। इन दोनों भाइयों ने ठुमरी गायन की शिक्षा अपने पिता उ० अली बख्श से प्राप्त की थी। उस्ताद बड़े गुलाम अली खां साहब ने पंजाब

Scanned with OKEN Scanner

की ठुमरी को विशेष प्रतिष्ठा अर्जित कराई। उनकी ठुमरियाँ 'आए न बालम का करुँ सजनी' तथा 'प्रेम जोगन बन जाऊँ' अथवा 'प्रेम की मारी कटार' 'याद पिया की आए' ने संगीत जगत् में पंजाब की ठुमरियों को अमर कर दिया । पंजाब की एक और प्रसिद्ध गायिका 'इलाही जान' भी अपने समय की अप्रतिम ठुमरी गायिका रही हैं। उस्ताद सलामत अली खाँ की भी ठुमरियों पर अच्छी पकड़ थी।

संदर्भ

१. संगीत चिन्तामणि भाग-२, आचार्य्य बृहस्पति, पृ०२०८
२. क्रमिक पुस्तक मलिका-भाग-४ ,भातखण्डे, पृ० ५०
३. संगीत चिन्तामणि भाग-२, आचार्य्य बृहस्पति, पृ० २०७
४. संगीत ठुमरी अंक-१९५४, डॉ० विशम्भरनाथ भट्ट, पृ० २
५. नगमातुलहिन्द, पृ० ३
६. ठुमरी की उत्पत्ति, विकास व शैलियाँ, डा० श० शुक्ला, पृ० २९४
७. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ८६
८. ख़ुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, सु० बृहस्पति, पृ० २०५
९. मउदुन उल मूसिकी, मु० करम इमाम, पृ० १६२-१६३
१०. संगीत चिन्तामणि भाग-२, आचार्य्य बृहस्पति, पृ०२१७
११. ठुमरी संग्रह, द्वितीय भाग- गंगाधरराव तैलंग, पृ० ४
१२. वही, पृ० ४
१३. वही, पृ० ४
१४. वही, पृ० ५
१५. वही, पृ० ५
१६. वही, पृ० ५
१७. मुसलमान और भारतीय संगीत, आचार्य बृहस्पति, पृ० ८६
१८. खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, सु० बृहस्पति, पृ० २०५
१९. वही, पृ० २०५
२०. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ८६

Scanned with OKEN Scanner

आलाप एवं भारतीय सङ्गीत

आलाप (आसमन्तात्- चारों ओर से अथवा हर ओर से, लाप-अभिव्यक्ति) का अर्थ राग का आरंभ करके अपने और श्रोताओं के मन को एक विशिष्ट रंग में रंग देना अथवा विशिष्ट आनन्द में निमग्न कर देना है। यदि हम कलाकार और श्रोताओं के मन को किसी श्वेत वस्त्र की उपमा दें तो विभिन्न राग उस वस्त्र को तरह-तरह के रंग में रंग देने वाले रंग कहलाएंगे। वस्त्र जितना अच्छा धुला हो, उस पर रंग उतना ही अच्छा चढ़ता है इसीलिए राग प्रस्तुत करते समय गायक और श्रोता के मन को शान्त, स्थिर और रागद्वेष हीन होना चाहिए।

आलाप का प्रयोजन राग की स्थापना है । जब मन किसी विशिष्ट राग के रंग में रंगा होता है तब उस पर यदि अन्य किसी रंग के धब्बे पड़ जाएं तो रंगे हुए वस्त्र की शोभा नष्ट हो जाती है ठीक उसी प्रकार यदि किसी राग की अवतारणा करने में अवांछनीय स्वर लग जाऐं तो राग दूषित हो जाता है। हाँ, यदि कोई गायक यदि कुशलता पूर्वक किसी राग की स्थापना के समय विभिन्न रंगों के बेलबूटे योजना पूर्वक बनाता चले तो दूसरी बात है ।

आलाप को हम किसी राग में गायी जाने वाली बंदिश की भूमिका भी कह सकते हैं। ध्रुवपद गायक पहले किसी राग का आलाप करते हैं तत्पश्चात् इसकी बंदिश प्रस्तुत करते हैं। उत्तर भारत की संगीत परम्परा के अनुसार आलाप के समय स्वरों के नाम नहीं दिए जाते, क्योंकि आलाप में लाग-डाट, सूत-मींड, लहक-हुतक इत्यादि गमकों का प्रयोग होता है जिनकी सरगम असंभव है इसलिए आलाप में वे एक आलाप मंत्र का आधार लेते हैं जिसके शब्द "ओउम् अन्तरे त्वम्" हैं। इनको आलाप में 'ओडम न तरे तोम्' बोला जाता है। इन अक्षरों की बढ़त 'ओऽमन नन, न त रेऽ तरे तोम्' जैसी होती है।

'नत' इन अक्षरों में ओंकार शामिल करके नोम तोम भी कहा जाता है लेकिन म और र में ओंकार शामिल करके मो और रो नहीं बोला जाता है। 'रे' को 'री' भी कहा जाता है। इन अक्षरों के विभिन्न संयोगों से अन न न, न न न

त, न त रे ऽ जैसे अक्षर समूह बनाये जाते हैं। कुछ लोग रै न न न भी बोलते हैं। ओम् अन्तरे त्वम् आलाप मंत्र के इस आधार का विस्तार वेद-पाठ की विभिन्न शैलियों में है।

इस पद्धति के रहस्य से अपरिचित लोग इसे **नोम-तोम** का आलाप कहते हैं। **'ओम् अन्तरे त्वम्'** का अर्थ है कि **'हे ईश्वर तू हृदय में है।'**

किसी भी राग में आलाप की चार अवधियाँ होती हैं, यही चारों अवधियाँ राग के चार स्वस्थान या बढ़त के चार मकाम कहलाते हैं।

कुछ आधुनिक ग्रन्थों के अनुसार-

आधुनिक आलाप-गान

आलाप गान करने वाले बहुधा ध्रुवपदिए होते थे, जिनका स्वर-ज्ञान तथा राग-ज्ञान उच्चकोटि का होता था। आजकल ध्रुवपद तथा ख़याल गायक भी सुन्दर व आकर्षक आलाप-गान करते देखे जाते हैं।

आलाप करने के वर्तमान ढंग दो हैं:—

(१) नोम तोम द्वारा (२) 'आकार' द्वारा

(१) नोम तोम

नोम-तोम के आलाप में अनेक स्वर वैचित्र्य दिखाने में सरलता होती है। द्रुतलय का काम भी नोमतोम से दिखाया जा सकता है । यह आलाप बराबर स्फूर्ति और चेतना प्रदान करता रहता है। यह आलाप वास्तव में प्राचीनकाल की ईश्वरोपासना का बिगड़ा हुआ रूप है। बाद में मुसलमान गायक इन शब्दों के उच्चारण करने में असमर्थ थे अत: उन लोगों ने नोम तोम की युक्ति निकाली और शब्दों को छोड़ दिया।

Scanned with OKEN Scanner

स्थाई, अन्तरा, संचारी, आभोग

स्थायी : मन्द्र और मध्य सप्तकों में आलाप करते हैं।

अन्तरा : मध्यम सप्तक के ग या प से शुरू करते हैं और तार सां पर जाकर ठहरते हैं। इसमें मींड व कंपन का काम खूब दिखाते हैं।

संचारी : यह स्थायी की ही पुनरावृत्ति का संशोधित रूप है। इसमें गमकों का प्रयोग अधिक होता है ।

आभोग : अन्तरे के समान ही विस्तार होता है । अतः यह अंतरे की पुनरावृत्ति का संशोधित रूप है । तीन सप्तकों का प्रयोग हो तो अतिद्रुत लय में हो जाती है।

आलाप में लय की गति

(१) स्थायी में विलम्बित लय

(२) अंतरा में मध्यलय कर दी जाती है और तानों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया जाता है। बीच-बीच में छोटी-छोटी तानें सुन्दरता पैदा करती हैं।

(३) संचारी में लय द्रुत हो जाती है । तीनों सप्तकों में गमक और लयकारी दिखाते हैं।

(४) आभोग में लय का और भी द्रुत करते हैं गमक का प्रयोग निरन्तर होता रहता है। गमक पूर्ण कौशल दिखाता है ।

आचार्य्य बृहस्पति के अनुसार चार स्वस्थानों में आलाप करने का सिद्धान्त यह है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रथम स्वस्थान- मन्द्र षड्ज से लेकर मध्य सप्तक के गांधार तक राग का प्रथम स्वस्थान होता है, यदि गांधार वर्जित हो तो यह स्थान मध्य ऋषभ तक रह जाता है ।

द्वितीय स्वस्थान- मन्द्र षड्ज से लेकर मध्य सप्तक के मध्यम या पंचम तक द्वितीय स्वस्थान कहलाता है। यदि षड्ज के आधार पर बनने वाले राग वाचक स्वर गुच्छों का आधार मध्य सप्तक का मध्यम हो, तो मध्यम द्वितीय स्थान का अंतिम स्वर होगा, यदि राग वाचक स्वर गुच्छ पंचम के आधार पर बनते हों तो द्वितीय स्थान का अंतिम स्वर पंचम होगा। यदि राग में पंचम वर्जित हो तो भी द्वितीय स्वस्थान का अंतिम स्वर मध्यम होगा और यदि मध्यम वर्जित हो तो द्वितीय स्वस्थान का अंतिम स्वर पंचम होगा।

तृतीय स्वस्थान- मन्द्र सप्तक के षड्ज से लेकर मध्य सप्तक के निषाद तक राग के तृतीय स्वस्थान की अवधि है ।

चतुर्थ स्वस्थान- मंद्र सप्तक के षड्ज से और तार सप्तक के निषाद् तक राग का चतुर्थ स्वस्थान होता है।

दूसरे शब्दों में यदि प्रथम स्वस्थान में मध्य सप्तक के मध्यम पंचम जोड़ दें तो द्वितीय स्थान, मध्य सप्तक के धैवत और निषाद जोड़ दें तो तृतीय स्वस्थान और तार सप्तक का षड्ज और अन्य स्वर जोड़ दें तो चतुर्थ स्वस्थान बन जाता है। यदि तात्विक दृष्टि से विचार किया जाए तो प्रत्येक राग में मध्यम षड्ज ही चरम लक्ष्य होता है। इसी को स्थायी स्वर कहा जाता है। यही वह गंभीर समुद्र है जिसमें राग की विभिन्न धाराएं आकर लीन होती हैं। विभिन्न स्थाय (राग वाचक स्वर गुच्छ) मध्य-षड्ज में ही आकर मिलते हैं इसलिए मध्य षड्ज को स्थायी स्वर कहा जाता है । षड्ज के संवादी स्वर दो हैं। शुद्ध मध्यम और पंचम। पूरिया या मारवा जैसे रागों में षड्ज अपना संवादी स्वयं होता है ।

षड्ज, मध्यम और पंचम के अतिरिक्त पूर्वांग में ऋषभ या गांधार और उत्तरांग में धैवत या निषाद पर भी राग की आवश्यकता के अनुसार विश्रान्ति होती है। इन्हें अपन्यास स्वर कहा जाता है। बंदिशों की विदारी या गीत खंड की समाप्ति

Scanned with OKEN Scanner

अपन्यास स्वरों पर भी होती है और इनका राग की स्थापना में विशिष्ट स्थान होता है। राग की स्थापना के लिए आलाप में आजकल अपन्यास स्वरों पर रुकना आवश्यक समझा जाता है। आलाप के इस प्रकार को प्राचीन ग्रंथों में रूपकालाप कहा जाता था। ऐमन में पूर्वांग में गांधार और उत्तरांग में निषाद अपन्यास स्वर हैं।

भातखंडे जी ने एक स्थान पर कहा है कि प्रत्येक राग में 'सा' वादी होता है, यही मत उचित है, क्योंकि तानपूरे पर तीन तार षड्ज में मिले होते हैं, राग के प्रत्येक स्वर के साथ षड्ज की संगति होती है तंत्री वाद्यों में झाला इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। षड्ज ही आज गाने बजाने का आधार है और प्रत्येक स्वर के सुरीलेपन की जाँच इसी षड्ज के साथ होती है। राग को स्पष्ट करने वाले वे स्वर समूह आपस में सवाल-जवाब कहलाते हैं जिन समूहों के स्वरों में क्रम से देखने पर 'स-म' या 'स-प' का संबंध हो। जैसे:-

राग	सवाल	जवाब
पूरियाकल्याण	स ऽ ऩि ध़ ऩि ऽ	प ऽ म॑ ग म॑ ऽ
श्यामकल्याण (1)	प़ ऩि सा	रे म॑ प
(2)	म़॑ प़ ऩि स	ऩि स ग म
	रेरे ऩिस	धध म॑प
	रेस ऩिस	धप म॑प
	रे म॑ प ध म॑ प	प नि सं रें नि सं
	रेंरें सरें निसं	धध पध म॑प
	म॑ध पम॑ पध	निरें संनि सरें
बिलासखानी	रे॒ नि॒ ध॒ स	ध॒ म ग॒ प
	प म ध॒ ऽ	सा नि॒ रे॒ ऽ
	प ध॒ नि॒ ऽ ध॒ सं	स रे॒ ग॒ ऽ रे॒ म
	ध॒ स नि॒ रे॒ ऽ	ग॒ प म ध॒
	रें ऽ नि॒ ध॒	ध॒ ऽ म ग॒

Scanned with OKEN Scanner

सवाल-जवाब अथवा राग-संवाद

वादी स्वर को राजा और संवादी स्वर को मंत्री से उपमा दी गयी है। वादी स्वर के आगे पीछे अनुचरों की भांति रहकर जो स्वर राग की स्थापना में सहायक होते हैं वे अनुवादी कहलाते हैं। इसी प्रकार राजा के महामंत्री संवादी स्वर के आगे पीछे रहकर राग की स्थापना करने वाले स्वर भी अनुचरों के समान होते हैं और अनुवादी कहलाते हैं। वादी और संवादी स्वर में परस्पर संवाद अनिवार्य है। परन्तु मारवा में धैवत को वादी और ऋषभ को संवादी कहने वाले सज्जन धन्य हैं क्योंकि 'रे - ध' में परस्पर संवाद का अभाव है ।

राग का आविर्भाव करने का तरीका

अच्छे गुणी जब किसी राग का आलाप आरम्भ करते हैं तो थोड़ी देर तक श्रोताओं में उत्सुकता रखने के लिए इस प्रकार आरंभ करते हैं कि राग का निश्चय नहीं किया जा सकता है जैसे- ध़ सा, नि़ ध़, नि़, म़ ध़ नी़, म़ ध़ म़ नी़ ध़ ध़ नी़ जैसे स्वर गुच्छ यमन, पूरिया और पूरिया कल्याण तीनों के ही वाचक हो सकते हैं। गुणी लोग अनेक प्रकार से इन स्वर-गुच्छों का प्रयोग करके इच्छानुसार पूरिया, पूरिया कल्याण और एमन किसी को भी खोल सकते हैं परन्तु ये विधि कुछ ही लोगों के लिए हो सकती है। इन लोगों का कहना है कि दूर से आने वाले आगन्तुक को देखकर हमें याद होता है कि कोई व्यक्ति आ रहा है, थोड़ा और निकट आने पर हम निश्चय करते हैं कि आगन्तुक नर अथवा नारी है और थोड़ा निकट आने पर आगन्तुक की चाल से हम उसे किसी विशिष्ट नर या नारी के सदृश्य समझते हैं परन्तु निकट आने पर हम यह निश्चय कर लेते हैं कि आगन्तुक अमुक व्यक्ति है। राग के आविर्भाव का क्रम भी यही है।

अन्य लोग 'पकड़' के द्वारा राग को तत्काल सम्मुख उपस्थित कर देते हैं। यहां उत्सुकता का अभाव रहता है। इस पद्धति को विद्यालयों की पद्धति कहा जा सकता है। कुछ लोगों का कथन है कि 'तांत बाजी राग बूझा' अर्थात् तार छेड़ते ही राग स्पष्ट हो गया। उदाहरण के लिए 'एमन' का विस्तार निम्नलिखित है-

Scanned with OKEN Scanner

प्रथम स्वस्थान- वादी षड्ज, सवांदी पंचम, अपन्यास स्वर पूर्वावार्ध मंद्र षड्ज और परावधि मध्य सप्तक का गांधार

सा, नि़ध़ नि, रे ग, स नि़ ध़ नि़, मं ध़ नि़ रे ग, रे नि़ रें, ध़ नि़ रे स। म़ ध़ नि़ रे ग, ध़ ध़ ग ग ग़ म़ ध़ नि़ म़ ध़ म़ नी़ ध़ स नी़, रे ग रे नि़ रे ध़ नि़ रे स।

द्वितीय स्वस्थान- नि़ रे ग, रे मं मं ग रे ग, मं मं ग रे ग, नि़ रे ग, ध़ ध़ ग, ग रे रे ग, रे मं मं मं रे ग, नि़ रे ध़ नि़ रे स।

नि़ रे ग मं प, मं ग, रे मं मं ग, रे रे ग, मं मे ग प, मं रे रे ग, नि़ ध़ नि़ रे ग मं प मं ग, रे रे ग, नि़ रे ध़ नि़ रे स।

तृतीय स्वस्थान- नि़ रे ग मं ध नि, मं ध मं नि, नि ध प, नि रे ग मं ध नि, ध सं नि, मं ध नी ध स नी मं ध नी नी ध प, मं गरे मं ग, रे ग रे नि़ रे स।

चतुर्थ स्वस्थान- नि़ रे ग मं ग प प, मं ध नी ध, मं ध ग ग प, मं ध नी ध सं, नि़ रे

Scanned with OKEN Scanner

स्व० आचार्य्य बृहस्पति एवं भारतीय सङ्गीत

सङ्गीत के इतिहास को देखते हुए यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि रियासत रामपुर ने सङ्गीत जगत को अनेकों सङ्गीतज्ञ, गायक, नर्तक इत्यादि कलाकार दिये हैं। रियासत रामपुर के नवाबों की पीढ़ियाँ भी सङ्गीतानुरागी रही हैं तथा सङ्गीतज्ञों को यहाँ राज्याश्रय भी मिलता रहा है। रामपुर के नव़ाब हामिद अली खाँ के दरबार में स्थाई रूप से आश्रय लेने वाले प्रमुख कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं:-

१. वज़ीर खाँ (वीणावादक)(सदारङ्ग के बाद सातवीं पीढ़ी में) २. करीम खाँ सेनिये (सितार वादक) ३. वहीद खाँ सेनिये (सितारवादक) ४. फिदा हुसैन खाँ, (सरोदवादक) बहादुर हुसैन खाँ के शिष्य, ५. बुन्दा खाँ खारी कुएं वाले (सारंगी वादक), ६. इनायत हुसैन खाँ (बहादुर खाँ के शिष्य, उ० मुश्ताक हुसैन खाँ के ससुर, गुलाम मुस्तफा खाँ के नाना तथा हद्दू खाँ के दामाद)(गायक), ७. हैदर खाँ (गायक)(निसार खाँ के दादा), ८. राजा हुसैन खाँ (गायक) (लखनऊ वाले), ९. नज़ीर खाँ (मुरादाबाद वाले गायक)(काले मज़ीर), १०. गफूर खाँ (नज़ीर के भाई), ११. मुहम्मद अली खाँ, (बसन्त खाँ के पुत्र)(सदारङ्ग के परपोते), १२. भैया गनपत राव (महाराज ग्वालियर के पुत्र, अतिथि के रूप में), १३. साहबज़ादा छम्मन साहब, १४. साहबज़ादा जानी साहब (छम्मन साहब के छोटे भाई), १५. गया प्रसाद मृदंग वादक (कुदऊ सिंह जी के वंशज), १६. नासिर खाँ (मृदंग वादक), १७. पं० अयोध्या प्रशाद जी (मृदंग वादक, गया प्रशाद जी के पुत्र), १८. नत्थू खाँ, दिल्ली वाले (तबला वादक), १९. वाज़िम खाँ (तबला-वादक), २० मोटू खाँ (तबला वादक)(करामत हुसेन खाँ के दादा, मसीत खाँ के पिता), २१. मुहम्मद हुसैन खाँ (दतिया वाले नर्तक और गायक), २२. अच्छन महाराज (नर्तक)(हामिद अली खाँ ने ही इनका नाम 'अच्छन' रखा , जबकि इनका वास्तविक नाम जगन्नाथ प्रशाद था), २३. लच्छू महाराज (नर्तक)(अच्छन खां के छोटे भाई, इनका वास्तविक नाम बैजनाथ प्रसाद था।), २४. मुश्ताक हुसैन खाँ तथा उनके पुत्र इश्तियाक हुसैन खाँ, २५. नवाब़ मिर्जा (सोज पढ़ने वाले)। इनके अतिरिक्त कुछ और भी कलाकार थे, जो नव़ाब

Scanned with OKEN Scanner

हामिद अली खाँ की सेवा में थे। नवाब हामिद अली खाँ का स्वर्गवास सन् १९३० ई० में हुआ। रामपुर के नवा़ब रज़ा अली खाँ सन् १९३० ई० में गद्दी पर बैठे। नवा़ब हामिद अली खाँ के दरबार के गुणियों में मुश्ताक हुसैन खाँ, इश्तियाक हुसैन खाँ, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, पं० अयोध्या प्रसाद, वहीद खाँ इत्यादि कलाकार थे। सन् १९३२ ई० के आसपास सादिक अली खाँ बीनकार तथा उस्ताद अहमद जान खाँ थिरकवा ने भी इनका आश्रय लिया। सलामत हुसैन खाँ, शबान खाँ, वज़ीर खाँ इत्यादि भी इनकी सेवा में रहे। निसार हुसैन खाँ के पिता फिदा हुसैन खाँ ने भी बड़ौदा छोड़ने के बाद इनका आश्रय लिया। नवा़ब रज़ा अली खाँ ने अनेक बार दिल्ली में गोष्ठियों की अध्यक्षता की। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब रामपुर राज्य भारत में विलीन हो गया, तब भी उनके कलाकार उनके आश्रित रहे। आचार्य्य बृहस्पति की चार पीढ़ियां इस राज्य में बीती। इन नवाब साहब के काल में आचार्य्य महोदय ने रामपुर में सङ्गीत की शिक्षा प्राप्त की तथा सङ्गीत के शोधकार्य्य का श्रीगणेश किया। ७ मार्च १९६६ को होली के दिन नवा़ब रज़ा अली खाँ का देहान्त हो गया ।

आचार्य्य बृहस्पति का जीवन वृत्त

रामपुर दरबार ने अनेक महान कलाकारों, सङ्गीतज्ञों तथा शास्त्रियों को जन्म् दिया। इस दरबार से सम्बन्ध रखने वाले इन विद्वानों में आचार्य्य बृहस्पति अंतिम सङ्गीत-शास्त्री थे। वर्तमान युग के किसी भी सङ्गीत प्रेमी के लिए आचार्य्य बृहस्पति का नाम नया नहीं है । इस महान व्यक्ति ने अपना सारा जीवन भारतीय सङ्गीत को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए उत्सर्ग किया। बाल्यकाल से ही इस त्यागमूर्ति ने अपना जीवन सङ्गीत की सेवा और अध्ययन में लगा दिया ।

आचार्य्य बृहस्पति का जन्म् रामपुर में २० जनवरी १९१८ ई० में हुआ था, इनकी चार पीढ़ियाँ रामपुर में ही रह चुकी हैं। इनके परदादा पं० दत्तराम जी रामपुर रियासत के राजपंडित थे । वे प्रकाण्ड विद्वान, ज्योतिषशास्त्री तथ सङ्गीतज्ञ भी थे। वे रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के राजदरबार के रत्न थे। आचार्य्य बृहस्पति स्वयं भी शिव भक्त थे तथा बगला देवी के भी उपासक थे। योग तंत्र की शिक्षा आपको रामपुर के पंडित शिवनारायण दीक्षित से प्राप्त हुई थी। इस प्रकार के प्रतिष्ठित राजपंडित कुल से आचार्य्य जी का सम्बन्ध था। इसी कारण रामपुर के सभी नवा़बों ने आचार्य्य जी को वही राजसम्मान प्रदान किया, जो इनके पूर्वजों को मिलता रहा। इनके पिता पं०

Scanned with OKEN Scanner

गोविन्दराम जी भी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित तथा शिक्षक थे। माता की प्रेरणा के परिणामस्वरूप आचार्य्य जी ने सङ्गीत का ज्ञान भी बाल्यावस्था से प्राप्त करना आरम्भ कर दिया था। छह वर्ष तक स्वर साधना के पश्चात् १९३७ ई० से 'महर्षि भरत' एवं 'आचार्य्य शार्ङ्गदेव' आचार्य्य जी के अध्ययन के विषय बने, संस्कृत के शास्त्रों से प्रगाढ़ परिचय, सूत्रशैली की मर्मज्ञता, शब्दों के प्रकृति प्रत्यय ज्ञान, रस सिद्धांत पर असामान्य अधिकार एवं आधुनिक सङ्गीत के व्यवहारिक ज्ञान ने समन्वित होकर आचार्य्य बृहस्पति के व्यक्तित्व का निर्माण किया था।

आचार्य्य जी को १० वर्ष की आयु में ही अपने पिता के स्नेह से वंचित होना पड़ा था। परन्तु इनकी विदुषी जननी स्व० नर्मदा देवी ने इनका साहसपूर्वक पालन-पोषण करने के साथ-साथ वे संस्कार भी इनके हृदय में बद्धमूल कर दिये, जिनके परिणामस्वरूप अपनी वंश परम्पराओं की सुरक्षा के प्रति आचार्य्य जी जागरूक रहे। बाल्यकाल से ही सद्गुरुओं के चरणों में बैठकर विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन तथा काव्यकला व सङ्गीत की साधना आपने की। आचार्य्य जी का शब्दोच्चारण ३ वर्ष की आयु से ही पूर्णतः शुद्ध था। पाँच वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते संस्कृत के अनेक श्लोक भी इन्हें कण्ठस्थ हो गये थे। दस वर्ष की आयु तक इन्होंने संस्कृत श्लोकों की रचना करके समाज को चमत्कृत कर दिया था। १४ वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते आपने काव्य-रचना भी आरम्भ कर दी थी।

आचार्य्य जी की शिक्षा-दीक्षा

इनकी आरम्भिक शिक्षा इनके पिता पं० गोविन्द राम जी द्वारा हुई, तत्पश्चात् इनकी दृढ़ निश्चयी तथा स्नेहमयी माता द्वारा इनकी शिक्षा उन्नति की ओर अग्रसर होती गयी। अलंकारशास्त्र की शिक्षा आचार्य्य जी ने महामहोपाध्याय पं० परमेश्वरानन्द शास्त्री से, न्याय की शिक्षा तथा व्याकरण की शिक्षा पं० हरिशंकर से तथा छेदी झा से तथा प्रारम्भिक शिक्षा पं० कन्हैयालाल शुक्ल से तथा राजपंडित पं० रामचन्द्र शास्त्री से प्राप्त की। रामपुर दरबार के मृदंग वादक स्व० पं० अयोध्या प्रसाद जी के भी शिष्य रहे। मृदंग के साथ-साथ प्रौढ़ स्वर ज्ञान इन पर दुर्लभ गुरु कृपा का परिणाम है। अपने गुरुओं के प्रति विनम्रता, आदर तथा समर्पण की भावना आचार्य्य जी में कूट-कूट कर भरी थी। इसी कारण अपने प्रत्येक गुरु की दुर्लभ कृपा एवं आशीवार्द इन्हें प्राप्त था।

Scanned with OKEN Scanner

उत्तर भारतीय सङ्गीत को देन

सन् १९४९ ई० में दिसम्बर मास में आप कानपुर के विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म विद्यालय में धर्माचार्य्य के पद पर नियुक्त हुए। वस्तुतः आचार्य्य जी के जीवन, का स्वर्णकाल यहीं से आरम्भ होता है । आचार्य्य जी को बाल्यकाल से ही सङ्गीत के संस्कार प्राप्त हुए थे, जिसे वे निरन्तर मनन तथा अभ्यास से उन्नत करते रहे थे। विद्यालय में अपने कुछ सङ्गीत प्रेमी साथियों के साथ घण्टों तक सङ्गीत चर्चा, रागों के स्वरूप, निरूपण तथा उनका प्रस्तुतिकरण करते रहते थे। वह प्रायः अपने मित्रों से कहा करते थे कि अब जीवन यात्रा में मैं निश्चिंत होकर प्रतिष्ठित हो गया हूँ तथा अब यही समय है कि मैं अपने गुरुजनों के आदेशों का पालन करूँ। यह आदेश क्या था, इसको स्वयं आचार्य्य जी इन शब्दों में व्यक्त करते थे। "रामपुर दरबार के गायक स्व० मिर्ज़ा हुसैन सैयद थे। सङ्गीतजीवी जाति में उत्पन्न होने पर भी इनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था। जीवन के अंतिम क्षणों में इन्होंने अपने प्रिय शिष्य आचार्य्य बृहस्पति को कहा- सङ्गीत का अभ्यास करो, शास्त्रों को समझो, उन पर श्रद्धा करो और उन ऋषियों, मुनियों के अभिप्राय को समझो जो निःस्पृह, निःस्वार्थ और सत्यभाषी रहे हैं। हम शास्त्र को नहीं जानते, परन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है कि ऋषियों के ग्रंथों को समझने के लिए जितनी तपस्या की आवश्यकता है, वह बहुत दिनों से नहीं की गयी है। इसी रामपुर दरबार में 'पण्डित' कहलाने वाले ऐसे लोग भी आये हैं, जिन्होंने महर्षि भरत व शार्ङ्गदेव जैसी महाविभूतियों को श्रद्धा की दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं समझी, उनके ग्रन्थों को अस्पष्ट कहा है, उनको उपहासपूर्ण दृष्टि से देखा है, इतना ही नहीं उनके प्रति उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिन्हें सुनकर हमें कष्ट होता है। तुम्हारे पूर्वज विद्वान एवं मर्मज्ञ थे, तुम उनके वंशधर हो, यदि तुम प्राचीन ग्रन्थों को समझने के लिए तपस्या नहीं करोगे तो और कौन करेगा। विश्वास रखो परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। हम न होंगें परन्तु तुम्हारी सफलता पर हमारी आत्मा को शांति मिलेगी तथा वही हमारी गुरु दक्षिणा होगी, यदि नहीं करोगे तो हमारे ऋणी रहोगे तथा हमारी आत्मा अशान्त रहेगी। आचार्य्य जी को अनुसंधान की प्रेरणा देने वाले दूसरे व्यक्ति रामपुर राज्य के अनुपम ग्रंथागार के विद्वान एवं यशस्वी प्रबन्धक मौलाना इम्तियाज़ अली खाँ अर्शी थे, जो आचार्य्य जी को अपना अन्तरंग मित्र समझते थे।

सङ्गीत के क्षेत्र में एक बड़ी विडम्बनापूर्ण स्थिति यह रही है कि सङ्गीत के गायक और प्रत्यक्ष अभ्यासी उसकी शास्त्रीय आधारभूमि के ज्ञान से विमुख हो रहे हैं।

Scanned with OKEN Scanner

सङ्गीत के क्षेत्र में भारतवर्ष के प्राचीन महर्षियों तथा मनीषियों ने जो कुछ भी कार्य्य किया है वह संस्कृत भाषा में लिखा गया है। न तो किसी गायक ने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा की तथा न ही शास्त्रीय विवेचन पद्धति को समझने का प्रयत्न किया। संस्कृत के विद्वान भी गायन-वादन को हेय तथा अप्रतिष्ठकारक समझने के भ्रमजाल में पड़े रहकर सङ्गीत के प्रति आकृष्ट होने से अपने आपको बचाये रहे। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि सङ्गीत के भारतीय शास्त्र प्रबन्ध अज्ञान के अन्धकार में धूमिल होने लगे। पुराने सिद्धान्त कुछ परम्परागत घिसी-पिटी पीढ़ियों के रूप में तथाकथित घरानों में ही रह गये। वर्तमान युग में इस समस्या ने एक और ही रूप धारण कर लिया था, जो वास्तव में ही बहुत चिन्ता का विषय था। भारतवर्ष में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् जिस तथाकथित पुनर्जागरण का आरम्भ हुआ उसके फलस्वरूप अध्ययन की नयी पाश्चात्य दिशाएं सामने आईं। आलोचना व अनुसंधान की नई पद्धति का विकास हुआ। इस पद्धति में बड़ी सुविधा की गुंजाइश लोगों को खूब मिली है। जिसके अन्दर मूल ग्रन्थों को गुरुमुख से अध्ययन किये बिना ही केवल पल्लवग्राही जानकारी के आधार पर समालोचना की जा सकती है। सङ्गीत के क्षेत्र में भी इस प्रकार के आलोचक तथा तथाकथित शास्त्रोद्धारक प्रकट हुए। उन्होंने संस्कृत शास्त्रों को समझने में असमर्थ होकर शास्त्रों को ही अस्पष्ट कहना शुरु कर दिया। ये विभूतियां शास्त्रों की निन्दा करते हुए, मनमाने ढोल पीटने लगी। इस प्रकार स्वयं को सङ्गीत का सर्वज्ञ मानने वाले आधुनिक विद्वान् पुरातन आचार्य्यों की विद्या और बुद्धि के तप-भूत वैभव के प्रति आस्थाहीन होकर उसकी निन्दा ही करते रहे। इस प्रकार के विप्लवमयी स्थितियों में आचार्य्य बृहस्पति का उदय एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

सन् १९५५ ई० के अक्टूबर मास में सङ्गीत जगत के भारत के प्रमुख समाचार पत्रों ने यह महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक समाचार दिया कि विक्रमादित्य सनातन धर्म कालेज, कानपुर में धर्मशास्त्र एवं हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर आचार्य्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति को सङ्गीत के ग्रन्थों में कुछ ऐसे सूत्र मिले हैं, जिनके आधार पर प्राचीन सङ्गीत को पूर्णतया स्पष्ट किया जा सकता है। सङ्गीत के सम्बद्ध क्षेत्रों में यह समाचार अत्यन्त आश्चर्य, हर्ष एवं उत्सुकता के साथ सुना गया। १९५९ ई० में आचार्य्य बृहस्पति का प्रथम महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'भरत का सङ्गीत सिद्धांत' प्रकाशित हुआ। इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की भूमिका में आदरणीय ठाकुर जयदेव सिंह ने कहा है कि मूर्च्छनाओं का इतना विशद तथा पांडित्यपूर्ण वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। ठाकुर साहब ने यह भी कहा

Scanned with OKEN Scanner

कि आचार्य्य बृहस्पति द्वारा निर्मित 'श्रुति दर्पण''' का भरपूर उपयोग सङ्गीत विद्यालयों में होना चाहिए। डा० इन्द्राणी चक्रवर्ती ने कहा कि सङ्गीतरत्नाकर के स्पष्टीकरण में विशेषतः ग्राम, मूर्च्छना और सारणा व्यवस्था पर नवीन आलोकपात आचार्य्य द्वारा ही हुआ है। डा० बृहस्पति ने ही 'तद्धत' शब्द का वास्तविक अर्थ खोज निकाला है, तथा भरत का सङ्गीत सिद्धांत में स्पष्ट किया है। प्राचीन सङ्गीत इससे स्पष्ट हुआ है। 'सङ्गीत-चिन्तामणि ' के कुछ लेखों में इन्होंने शार्ङ्गदेव के विवेचनों को स्पष्ट किया है जो अब तक अंधकार में था । अस्तु, आचार्य्य बृहस्पति के प्रयत्नों का अभिनन्दन नई पीढ़ी ने भी किया तथा पुरानी पीढ़ी ने भी। वास्तव में यह पूर्वजों के प्रति श्रद्धा तथा तपस्या का अभिनन्दन है।

ठाकुर जयदेव सिंह ने ३० अप्रैल १९५७ ई० को बम्बई में कहा था कि महर्षि भरत जैसे आप्त सूत्रकार के विषय में भ्रान्त धारणाओं के प्रचार से आचार्य्य जी के हृदय को कष्ट पहुंचा तथा उन्होंने मौन रहकर अपने जीवन का प्रमुख भाग भारतीय आचार्य्यों को समझने में दिया। भरत के 'नाट्यशास्त्र' की कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथियों को आचार्य्य जी ने विद्वतापूर्ण ढंग से सुलझाया है। महर्षि भरत के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण एक राष्ट्रीय प्रश्न है। आचार्य्य जी सिर्फ एक सङ्गीतशास्त्री ही नहीं, वरन् एक वाग्गेयकार भी थे। सङ्गीत के शास्त्रपक्ष का जितना ज्ञान उन्हें था, उतना ही ज्ञान उन्हें ताल, लय तथा स्वर का भी था। लखनऊ के ठुमरी सम्मेलन तथा मथुरा के सङ्गीत सम्मेलन में उन्होंने अपना गायन भी प्रस्तुत किया।

आचार्य्य जी वाग्गेयकार तथा साहित्यकार होने के साथ-साथ नाटककार भी थे। इनके द्वारा लिखे गये नाटक आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारित हुआ करते थे। आचार्य्य जी की एक कृति 'मेघ का कवि' नाटकों का संकलन है । यह कृति अपनी सनातनता, भाव प्रवणता, बिम्बधर्मिता और प्रतीकात्मकता के कारण सहज ही अमर रचना होने का दावा प्रस्तुत कर सकती है। यह पुस्तक आठ नाटकों का संकलन है जिनमे नाम हैं— (१) सागरमन्थन, (२) विश्वामित्र, (३) मेघ का कवि, (४) चाणक्य, (५) विश्वधर्म, (६) महापंडित, (७) जयापीड़ तथा (८) कला-भारती।

आचार्य्य बृहस्पति की भारतीय सङ्गीत को क्या देन है, इस बारे में कुछ विद्वानों के विचार यहां प्रस्तुत हैं।

Scanned with OKEN Scanner

एकेडमी आफ म्यूज़िक एण्ड फाइन आर्ट्स कानपुर द्वारा आयोजित एक गोष्ठी दिनांक ११-९-१९५८ ई० को श्री विनायक राव पटवर्द्धन ने कहा- आचार्य्य बृहस्पति ने प्राचीन सङ्गीत से संबंधित खोज की तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य्य किया है। उनकी स्थापनाओं को सङ्गीत जगत ध्यान से पढ़ता जा रहा है। आज जातिगान को प्रत्यक्ष सुनकर मुझे अति प्रसन्नता हुई है। मूर्च्छना पद्धति का सप्रयोग स्पष्टीकरण देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि आज के गायक भी इसका उपयोग सीख सकते हैं। पूर्वजों की खोई हुई विधि को प्रकाश में लाना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा कठिन कार्य्य है तथा इस कार्य्य से भारत का मस्तक अवश्य ही और भी ऊँचा उठेगा। समाज तथा शासन का यह कर्त्तव्य है कि आचार्य्य बृहस्पति को प्रतिभाशली विद्यार्थी तथा उन विद्यार्थियों के निर्वाह का प्रबन्ध करे, जिससे वे दत्तचित्त होकर पूर्ण निश्चिन्त हो शिक्षा प्राप्त कर सकें।

दिनांक १-५-१९५७ को प्रो० देवधर ने सुरसिंगार संसद बंबई के परिसंवाद में कहा- आचार्य्य बृहस्पति धर्मशास्त्र एवं साहित्य के प्रोफेसर हैं, परन्तु इनका अधिकांश समय सङ्गीत चिन्तन में व्यतीत होता है। 'बृहस्पति वीणा' एवं 'बृहस्पति किन्नरी' पर जो प्रदर्शन भीष्मदेव बेदी जी कर रहे हैं, यह आचार्य्य जी के विद्यानुराग का परिणाम है। सुर सिंगार संसद में आल इंडिया रेडियो के भूतपूर्व म्यूजिक प्रोड्यूसर ठाकुर जयदेव सिंह जी ने दिनांक ३०-४-१९५७ को अपने परिचयात्मक अध्यक्षीय भाषण में कहा - आचार्य्य बृहस्पति का जन्म् स्थान सङ्गीत का सुप्रसिद्ध केन्द्र रामपुर है, जहाँ उन्होंने प्रमुख गुणियों के चरणों में प्रचलित सङ्गीत की शिक्षा पायी है। वे अनेक शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित हैं तथा संस्कृत भाषा पर उनका पूर्णाधिकार है। अनेक देशी तथा विदेशी विद्वानों ने महर्षि भरत के सिद्धांतों को अस्पष्ट बताया है। महर्षि भरत जैसे आप्त सूत्रकार के सिद्धान्तों पर वर्षों मनन करने के पश्चात् आचार्य्य जी कुछ निश्चित परिणामों पर पहुंचे हैं तथा उनका कथन है कि उन परिणामों को विज्ञान की कसौटी पर प्रमाणिक वैज्ञानिकों द्वारा किसी अच्छी प्रयोगशाला में देखा जा सकता है। भरत कृत- नाट्यशास्त्र की कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथियों को आचार्य्य बृहस्पति ने विद्वतापूर्ण ढंग से सुलझाया है। राजस्थान सङ्गीत नाटक एकेडमी में दिनांक १५-१-१९६० को श्री गोवर्धन लाल काबरा जी ने कहा- आचार्य्य जी के दृढ़ निर्णय कितने ही सङ्गीत के विद्वानों के लिए मार्गदर्शक हैं। जगद्गुरु शंकराचार्य्य शारदापीठ ने बंबई में दिनांक २६-९-१९६२ को आचार्य्य जी के लिए विचार व्यक्त करते हुए कहा- आचार्य्य जी केवल कला व साहित्य में ही नहीं, अपितु अन्यान्य शास्त्रों तथा विषयों

Scanned with OKEN Scanner

में भी उनका रुख गंभीर है। इस प्रकार सर्व विषयों में सब प्रकार से अधिकार रखने वाले विद्वान बिरले ही होते हैं। हम आशीर्वाद स्वरूप उन्हें 'विद्यामार्तण्ड' की पदवी दे रहे हैं। भगवान चन्द्रमौलीश्वर आपका सर्वदा कल्याण करे।

आचार्य्य बृहस्पति ने अनेक सङ्गीत गोष्ठियों में जाति तथा मूर्च्छना पर व्याख्यान दिये तथा अपने शिष्य गुलाम मुस्तफा खाँ द्वारा प्रयोगात्मक रूप में प्रदर्शित किया। प्रो० हरनारायण मिश्र ने आचार्य्य जी के बारे में कहा- आचार्य्य बृहस्पति अपने सङ्गीत सम्बन्धी अनुसंधान से समस्त विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर चुके हैं। प्राचीन भारतीय सङ्गीत को लुप्तप्राय: सिद्धांतों के आधार पर स्पष्ट करना, उनका अनुभव करना, तदनुसार गीतों का निर्माण करना तथा उस सङ्गीत की शिक्षा किसी प्रतिभाशाली शिष्य को देकर गुणियों तथा गुणग्राहकों के समक्ष उनका प्रदर्शन करना एक ऐसा कार्य्य है, जिसे विश्व अब तक असंभव समझता चला आया है, परमपिता के असीम अनुग्रह एवं सतत् साधना के परिणामस्वरूप एक भारतीय विद्वान द्वारा यह कार्य्य संभव हुआ है। यह समस्त देश के लिए गौरव एवं प्रसन्नता का विषय है।

भरत का सङ्गीत सिद्धांत तथा सङ्गीतचिन्तामणि जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अतिरिक्त आचार्य्य बृहस्पति द्वारा कई अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी की। 'मुसलमान और भारतीय सङ्गीत' नामक ग्रंथ १९७४ में प्रकाशित हुआ। अपने इस ग्रंथ में आचार्य्य महोदय ने साङ्गीतिक इतिहास की कुछ भ्रान्त धारणाओं का निराकरण किया है। कुछ लोगों की यह मिथ्या धारणा है कि वर्तमान कर्नाटक सङ्गीत सर्वथा भारतीय तथा विदेशी प्रभाव से अछूता है। इस मिथ्या धारणा का सप्रमाण खण्डन इस ग्रंथ में किया है। औरंगजेब की सङ्गीत के प्रति धारणा के प्रति कुछ अखण्डनीय तथ्य इस ग्रंथ में प्रस्तुत किए गए हैं। 'ख़ुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार' नामक कृति भी आचार्य्य बृहस्पति तथा उनकी पत्नी श्रीमती सुलोचना बृहस्पति के सतत् परिश्रम का परिणाम है। सन् १९७६ ई० में आचार्य्य जी का एक और ग्रन्थ 'ध्रुवपद और उसका विकास' प्रकाशित हुआ। 'सङ्गीत समयसार' आचार्य्य पार्श्वदेव के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भी आचार्य्य जी द्वारा संशोधित तथा सम्पादित किया गया है। 'राग-रहस्य' नामक कृति का प्रकाशन १९८६ ई० में आचार्य्य बृहस्पति की मृत्यु के उपरांत श्रीमती सुलोचना बृहस्पति तथा उनके पुत्र श्री आमोद वर्द्धन के प्रयत्नों से हुआ। इस ग्रंथ में आचार्य्य बृहस्पति द्वारा रचित अनेक रागों की बंदिशें हैं जो अनङ्गरङ्ग की मुद्रा से मुद्रित हैं। आचार्य्य जी का उपनाम 'अनङ्गरङ्ग' था। 'नाट्य शास्त्र का २८ वां अध्याय'

Scanned with OKEN Scanner

नामक ग्रंथ भी १९८६ में प्रकाशित हुआ । इस ग्रंथ में 'स्वराध्याय' पर विचार किया गया है। 'ब्रज-बल्लरी-बिलास' यह पुस्तक भी आचार्य्य बृहस्पति की मृत्यु के उपरांत प्रकाशित हुई। प्रस्तुत ग्रंथ में आचार्य्य बृहस्पहित द्वारा लिखित ब्रजभाषा काव्य का संग्रह है। 'सङ्गीत चिन्तामणि' का द्वितीय खण्ड भी प्रकाशित हो चुका है ।

सङ्गीत जगत् का चमकता हुआ यह सितारा अचनाक ही ३० जुलाई १९७९ ई० को ६१ वर्ष की आयु में लुप्त हो गया ।

Scanned with OKEN Scanner

राग ध्यान चित्र

प्रारम्भिक युग से मानव कंदराओं में निवास करता था। धीरे-धीरे उसका मानसिक विकास हुआ। अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए सर्वप्रथम उसने आलाप लेना प्रारम्भ किया। यही आलाप लोक-गीतों का जन्मदाता हुआ। आदिम सङ्गीत की दशा में जन मानव समाज आगे बढ़ा, तब स्वरों की विवेचना का श्रीगणेश हुआ। आगे चलकर सङ्गीतपूर्ण विकास की ओर अग्रसर हुआ, तभी से चित्रकारों ने उसका भाव-स्वरूप चित्रों में अंकित किया ।

राग-ध्यान-परम्परा

प्राचीन काल में सङ्गीत का सम्बन्ध नाट्य से रहता था । अतः नाट्य सङ्गीत की परिस्थिति रहने से पात्रों और दर्शकों अथवा श्रोताओं के मध्य एक भावात्मक एकता बनी रहती थी। किन्तु सङ्गीत जब नाट्य से अलग हो गया तब से गायक व श्रोता के बीच की कड़ी टूट सी गई और एक रिक्तता सी आ गयी। अतः गायक और श्रोता किसी एक केन्द्र बिन्दु पर चित्त वृत्ति को एकाग्र कर सकें, ऐसा बिन्दु 'ध्यान' ने प्रदान किया। राग-वर्गीकरण की प्राचीन व्यवस्था में ग्राम से स्वर-रूप, गीति से प्रयोग-विधि, स्वरों से रस और अंश-स्वर के आधार पर जातियों में रस विनियोग के द्वारा स्वर-रूप और भाव-रूप में एकता स्थापित हो जाती थी। लेकिन राग-रागिनी-पद्धति में इसकी कमी थी, इसलिए भाव-रूप को ध्यान के रूप में मूर्त्त बनाया गया। स्वरों द्वारा बनने वाली भाव-मूर्ति को समझने के लिए परिस्थिति की कल्पना किसी-किसी रूप में करनी ही पड़ती है। परिस्थिति के साथ पात्र अभिन्न रूप से जुड़े रहते हैं, इसलिए राग-रागिनियों में पुरुष-स्त्री की कल्पना को श्लोकबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा, जो 'राग-ध्यान' कहलाए।

इन राग-ध्यानों का प्रारम्भ कब से हुआ, यह ठीक-ठीक अनुमान एक दुष्कर कार्य्य है। कुछ राग ध्यानों से यह प्रकट होता है कि मतङ्ग और दत्तिल से पूर्व कोहल इनका जन्मदाता है। किन्तु जब तक कोहल के ग्रंथों में इनका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है तब तक इसको महत्त्व नहीं दिया जा सकता। कुछ विद्वानों के मतानुसार

Scanned with OKEN Scanner

मतङ्ग का 'वृहद्देशी' सबसे पहला ग्रंथ कहा जा सकता है, जिसमें राग-ध्यान रहे होंगे। किन्तु इसका भी देशी राग-प्रकरण लुप्त होने के कारण प्रमाण नहीं दिए जा सकते हैं। किन्तु कुंभा ने अपने 'सङ्गीतराज' में देवी-देवता रूपों का राग-ध्यानों में बार-बार मतङ्ग का उल्लेख किया है, अतः इससे यह कहा जा सकता है कि 'बृहद्देशी' में राग-ध्यान अवश्य रहे होंगे और वे देवी-देवता रूप रहे होंगे। 'सङ्गीतरत्नाकर' में ग्राम राग, देशी राग-वर्गीकरण में मतङ्ग का अनुसरण करते हुए भी रागों के ध्यान नहीं दिए हैं, इसका कारण संभवतः यह होगा कि शास्त्र-स्थापना में उनकी आवश्यकता नहीं समझी गई होगी। शार्ङ्गदेव ने अपने राग विवेकाध्याय में विभिन्न गीतियों को देवरूप दिए हैं।

गीतियाँ	**—**	**देवरूप**
शुद्ध-साधारिता	—	रवि-देवता
षड्ज-ग्राम राग	—	बृहस्पति (गुरुदेवता)
शुद्ध-कैशिक	—	पृथ्वी (भौम वल्लभा)
मालवा-कैशिक	—	केशव प्रीत्यये
भिन्न-षड्ज	—	ब्रह्म (चनुरानन देवता)
टक्क	—	रुद्र आनन्द हेतु
हिंडोल	—	मकरध्वज
कुकुभ	—	यम देवता (God of Death)

हमारे प्राचीन सङ्गीतज्ञों ने एक-एक राग-रागिनी को एक-एक देवता माना है। इसका ध्यान करने के लिए किसी मूर्त्ति का ध्यान होना चाहिए—इस प्रकार से इन स्वरूपों की कल्पना उन लोगों द्वारा की गई है।[१] 'सङ्गीतदर्पण' में सभी राग-नियमों के इसी प्रकार के ध्यान दिए हैं। रागिनी का ध्यान यथायोग्य रीति से करने पर उसकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और तभी उसके द्वारा गायक कीर्ति पा सकता है । कुछ ऐसी ही धारणा उन पंडितों की समझी जा सकती है।

स्व० भातखण्डे जी का कहना है कि देवात्मक रूपों के तो अब दिन नहीं रहे, परन्तु उनके नादात्मक रूपों को कोई प्रचार में ला दिखाए तो बहुत उपयोगी होंगे। यह कार्य्य यद्यपि कठिन है, तथापि असंभव नहीं। प्राचीन कल्पना में क्या रहस्य है, इसका निर्णय नहीं हो सकता। अपने प्राचीन शास्त्रकारों की क़ल्पना बेढंगी

Scanned with OKEN Scanner

थी, ऐसा कहने से भी समाज का हित नहीं होगा। यदि कोई विद्वान ऐसे कठिन नियम का स्पष्टीकरण करता है तो अपने प्राचीन ऋषियों का गौरव तो बढ़ेगा ही, साथ ही सङ्गीत जगत के लिए समाधानकारक व उपयोगी होगा।

स्वरों के रङ्ग

S.M. TAGORE

The names and nature of the colours altributed to the notes are very nearly the saneas gi by Mr. George Field in his work.

स्वर नाम	–	संस्कृत रङ्ग		–	फील्ड के रङ्ग	
षड्ज	–	Black	काला	-	Black	काला
ऋषभ	–	Purple	बैंगनी	-	Purple	बैंगनी
गांधार	–	Goldan	सुनहरा	-	Red	लाल
मध्यम	–	White	श्वेत	-	Orange	संतरी
पंचम	–	Yellow	पीला	-	Yellow	पीला
धैवत	–	Grey	भूरा	-	Grey	भूरा
निषाद	–	Green	हरा	-	Green	हरा

सर एस० एम० टैगोर ने यह स्पष्ट नहीं किया कि संस्कृत ग्रंथकार ने अपना रङ्ग-ज्ञान कहाँ और कैसे प्रयुक्त किया, इससे ज्ञान प्राप्त करने वालों को कौन से नादमय स्वरूपों का बोध हुआ। अपने यहाँ बहुत से विद्वानों का ऐसा मत है कि शार्ङ्गदेव और उसके बाद के संस्कृत ग्रंथकार रङ्ग का यह रहस्य वास्तव में समझे ही न थे।[२]

राग-ध्यानों का आधार

बृहद्देशी, सङ्गीतोपनिषत्सारोद्धार, सङ्गीतराज आदि में राग ध्यान देवी-देवता रूप हैं। मतङ्ग 'तंत्र-दर्शन' से बहुत प्रभावित थे, जो बृहद्देशी में जगह-जगह दिखाई देता है। 'तंत्र' में देवी-देवताओं के स्वरूप का वर्णन विशिष्ट वाहन, आयुधादि से युक्त विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न रूप में किया गया है ।

Scanned with OKEN Scanner

आगे चलकर रीतिकाल में जब साहित्य और कला पर नायक-नायिका भेद का प्रभाव आ गया तब सङ्गीत भी इनके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। तब गीतों का आलंबन देवी-देवता न रहकर लौकिक नायक-नायिका बन गए और राग ध्यानों में यह परिवर्तन अनिवार्य रूप से हुआ। रागों का निरूपण नायक और रागिनियों का नायिका के रूप में होने लगा।

राग-ध्यानों के चित्र श्लोकों के रूप में

दृश्य और श्रव्य कलाऐं सदा से एक दूसरे की पूरक रही हैं और एक दूसरे को प्रभावित करती रहीं हैं। उसी प्रकार श्लोकबद्ध राग-ध्यान साहित्य ने चित्रकला को भी प्रभावित किया और राग-ध्यान श्लोकों के आधार पर चित्र बनाए जाने लगे। आरम्भ में ये चित्र पूर्व-रचित राग-ध्यान श्लोकों के अनुसार बने और उनमें चित्रों के साथ आधार श्लोक भी रहते थे, लेकिन बाद में श्लोक छोड़ दिए गए और राग-रागिनियों की व्यक्तिगत कल्पना अथवा अनुभूति के अनुसार चित्र भी बनाये जाने लगे। इसलिए जहाँ प्रारम्भ के चित्रों में एक राग के राग-ध्यान चित्रों में विषय-वस्तु एक-सी है, वहाँ बाद के चित्रों में एक ही राग के विभिन्न प्रकार के चित्र मिलते हैं।

राग-ध्यानों के चित्र मुख्य रूप से चित्रकला की तीन प्रमुख शैलियों में बने हैं— दक्खिनी, राजस्थानी और काँगड़ा। इन चित्रों में जहाँ व्यक्तिगत कल्पना के अनुसार सूक्ष्म अंकन है, वहाँ विविधता भी है ।

राजस्थानी चित्र-कला में रागों का स्वरूप

अब तक की प्राप्त सामग्री के आधार पर प्रतीत होता है कि राग-मालाओं ने १५वीं शती तक व्यवस्थित रूप प्राप्त कर लिया होगा। राजस्थान में उनका प्रचार मेवाड़ के राणा कुंभा (१४३३-१४६८ ई०) के बाद ही होना संभव है। 'आईने अक़बरी' में भी राग-रागिनियों का वर्गीकरण मिलता है । अत: यह स्पष्ट है कि १५वीं -१६वीं शती में राग-रागिनियों के ध्यान निश्चित हुए होंगे। साथ ही साथ १६वीं शती के अंत तक राजस्थानी शैली में नायिका-भेद चित्रण की प्रणाली प्रारम्भ हो गई होगी।

Scanned with OKEN Scanner

१७ वीं शती के अंत और १८वीं शती के आरम्भ में राजस्थानी शैली का पूर्ण विकास मिलता है। जिसका मुख्य केन्द्र मेवाड़ माना जाता है । किन्तु बीकानेर-महाराज के निजी-संग्रह में अहमदनगर की दक्षिणी शैली के 'कामोद' तथा 'धनाश्री' रागिनी चित्र १५६५-६९ ई० सुरक्षित हैं। ये चित्र महाराज रायसिंह को अहमदनगर की लूट में प्राप्त हुए थे। इस संग्रह में बीकानेरी शैली का 'कुकुभ' रागिनी चित्र १७४५-८७ ई० भी है जो प्रमाणित करता है कि 'रागमाला' चित्रों में बीकानेर का भी प्राचीन केंद्र होना संभव है। अत: राजस्थान में १८वीं शती में मेवाड़, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर आदि लगभग सभी प्रमुख राज्यों में राग-रागिनी चित्रों का पूर्ण विकास एवं बाहुल्य पाया जाता है। साथ ही 'रागमाला' चित्रों की प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि दक्कनी शैली, बसोहती शैली, पहाड़ी शैली और मुगल-शैली के भी 'रागमाला' चित्र उपलब्ध हैं।

'बीकानेर राजकीय संग्रहालय' में सुरक्षित अन्य शैलियों के अतिरिक्त जयपुर-शैली के चित्रों में १८वीं शती के ३६ राग-रागिनियों का एक संपूर्ण संग्रह संग्रहालय की चित्रशाला में क्रमानुसार सजा हुआ है। इन सभी चित्रों के ऊपरी भाग में कवित्त व दोहा अंकित है, जिनमें राग-रागिनियों का स्वरूप बड़ा रोचक है। यही नहीं, अमुक रागिनी किस राग से संबंधित है और उसका मूल स्वर क्या है अथवा गाने का निश्चित समय क्या है, आदि काव्य में वर्णित है। 'रागमाला' के प्रत्येक चित्र में काव्य-बद्ध राग-रागिनी का स्वरूप चित्रण अत्यंत भावपूर्ण किया गया है ।

रागों के रूप का सबसे प्राचीन वर्णन 'राग सागर' में प्राप्त होता है, जिसको नारद और दत्तिल का संवाद कहा जाता है। १४४० ई० में नारद ने 'पंचम सार संहिता' में छ: राग छत्तीस रागिनियों का पूर्ण वर्णन दिया है। मुग़ल काल के प्रारम्भ में १५०९ ई० में अकबर से पूर्व मेसकरन का 'रागमाला' लिखा जा चुका था। इसके बाद पुंडरीक-विट्ठल की महत्त्वपूर्ण 'रागमाला' तैयार हो गयी जो १५७६ ई० में अकबर के राज्यकाल में था। विट्ठल की तरह ही सोमनाथ ने भी 'राग विबोध' में ५२ रागों के ध्यान पर पद्य लिखे हैं।

राग-ध्यानों के रूप

सङ्गीत दर्पण में पं० दामोदर मिश्र ने हनुमत मत का अनुसरण करते हुए

Scanned with OKEN Scanner

३६ रागों का ध्यान वर्णन किया है। अधिकतर इन रागों का रूप भी पारम्परिक ही है।

भैरव का ध्यान

भैरव का ध्यान सदैव शिव रूप में अर्थात् भस्म रमाए, जटाधारी, गंगाधारण करने वाले योगी के रूप में दिखाई देता है। जिसके मस्तक में से गंगा बहती है, कपाल पर चन्द्र का तिलक है। तीन नेत्र हैं शरीर पर सर्प शोभायमान है। हाथ में त्रिशूल, गले में मुडंमाल तथा श्वेत-वस्त्र हैं।

गंगाधरः शशिकलातिलकास्त्रिनेत्रः सर्पैर्विभूषिततनुर्गजकृत्तिवासाः ।
भास्वत्रिशूलकर एष नृमुन्डधारी शुभ्राम्बरो जयति भैरव आदि रागः॥

रागिनी भैरवी का ध्यान

स्फटिकरचित पीठे रम्यकैलास सश्टंगे,विकचकमलपत्रैरर्चयंती महेशम्।
करधृतघनवाद्या पीतवर्णायताक्षी,सुकविभिरियमुक्ता भैरवी भैरवस्त्री ॥

यह भैरव की रागिनी है। अतः इसे भैरव (शिव) की पूजा में रत, पार्वती के रूप में वर्णित किया है। रमणीय कैलाश पर्वत के शिखर पर स्फटिक मणि के आसन पर बैठकर खिले हुए कमल के फूलों से जो महादेव जी का पूजन करती है जिसके हाथ में मंजीरे हैं जिसका वर्ण पीला है तथा नेत्र विशाल हैं।

हिन्दी रागमाला

मुग़ल साम्राज्य काल में सङ्गीत का प्रचार बढ़ने के साथ-साथ, संस्कृत भाषा में रचित राग-ध्यानों को समझने वाले गिने-चुने सङ्गीतज्ञ ही थे। अतः इन ध्यानों को समझने के लिए यह आवश्यकता हुई कि इन श्लोकों का अनुवाद हिन्दी भाषा में किया जाये। अतः उस समय के हिन्दी कवियों ने चौपाई व दोहों में 'राग-ध्यान' लिख डाले। तानसेन (१५२०-१५८९ ई०) जो एक महान सङ्गीतज्ञ थे, को हम हिन्दी रागमाला का प्रथम रचयिता कह सकते हैं— क्योंकि उन्होंने ब्रजभाषा में हजारों ध्रुवपद लिखे हैं। कविदेव और कवि हरिबल्लभ हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध

Scanned with OKEN Scanner

कवि माने गए हैं। कवि हरिवल्लभ ने दामोदर मिश्र के सङ्गीतदर्पण के संस्कृत ध्यानों का हिन्दी भाषा में वर्णन किया है। उस समय हनुमत् मत का प्रचलन था। अत: छ: राग छत्तीस रागिनियों का वर्णन किया गया है। कवियों ने रागों के संस्कृत ध्यानों की रूपरेखा को रखते हुए, अपनी कल्पना तथा भावना द्वारा भी रागों के चित्र शब्दों द्वारा रचे हैं।

साङ्गीतिक ग्रंथों की रचना करते समय भी कवियों के समक्ष रागों के स्वर सम्बन्धी लक्षणों की अपेक्षा उनका 'शृंगार' और स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जाता था। उसका प्रमाण सङ्गीत-काव्य में अधिकतर 'रागमालाओं' का लिखा जाना है। दूसरी ओर तत्कालीन शृंगारिक कलाप्रिय और विलासी रुचि के कारण रागों के नवीन काव्यात्मक तथा चित्रोयन वर्णन किए गए हैं। यह शृंगार वर्णन दामोदर पंडित के 'रागदर्पण' से प्रभावित होकर लिख हुआ सा जान पड़ता है। अधिकतर इन रागों का रूप भी पारम्परिक ही है ।

भैरव रूप जटा जूट सिर नील तन भस्म वास तिलक रेष।
मुद्रा शृंग त्रिसूल धर भैरव राग सुदेश ।

(रागमाला-कल्याण मिश्र)

राग भैरव शिवरूप में और भैरवी पार्वती के रूप में वर्णित है —

गिरि कैलास में विलास हास बनि बैठी
फटिक चौकी पर गिरिजा सी जानी हैं।
चंद्रमुखी चपला तै चारु देह दुति दिपै
कौल कुस मनि सिव अरचा उठानी है।
इंद्रीवर दलहू ने दीरघ है देख दृग
करि धरि तालबाल मृदु मुसक्यानी है
जिय करि प्रीति हरिबल्लभ मौ सुख जीति
ऐसी रस रीति करि भैरवी वखानी है।

(सङ्गीतदर्पण-हरिबल्लभ)

उसी प्रकार मालव कौशिक कोमालङ्गी कलाओं में निपुण है और

Scanned with OKEN Scanner

वीरता भी उसका गुण है। राग हिंडोल काम- केलि में प्रवीण है। रमणियों के साथ झूला झूलता हुआ राग रंग करता है और कला-प्रिय है। दीपक राग भी अत्यन्त कामी, केलि-कलाओं में प्रवीण और सुसज्जित है। श्रीराग लाल वस्त्रों से शोभित, किशोरावस्था का एक राजकुमार है। बहुत अधिक सुन्दर है और काम कला में निपुण है। मेघ राग नीलवर्ण का पीत वस्त्र धारण किए मन्द मन्द मुस्कुराता रहता है। अत्यन्त छबिवान, युवा और वर्षा देने वाला है। इसी प्रकार सभी रागिनियों के स्वरूप भी निश्चित है। राग और रागिनि होने के नाते 'राग' अर्थात् 'प्रेम' का अंश सब में मिलता है। शृंगार रस के अलावा अन्य रसों से युक्त केवल कुछ राग अपवाद भी हैं।

जैसे देशाक्ष वीर रस से पूर्ण है, केदारा योगी है, समाधि लगाए बैठा रहता है। आसावरी का भी शृंगार योगिनी के समान है। सर्प शरीर में लपेटे, मलयागिरि में वास करने वाली है । भूपाली प्रिय के वियोग में सखियों के मध्य बैठी है, शान्त रस में डूबी है ।

इन राग-रागनियों का स्वरूप वर्णन अधिकांशतः इनकी विशिष्ट वेशभूषा और उनमें निहित रस को लेकर ही हुआ है ।

इस प्रकार पूर्वकाल में 'रागध्यान' करके गाने की परिपाटी का शिक्षण-क्रम बनाया गया था, जिसे 'रागध्यान' के नाम से वे लोग व्यवहृत करते थे। रागों के सर्वाङ्ग प्रभावों आदि के सदैव स्मरण रखने तथा आत्मा को उनमें तल्लीन करने के हेतु से रागों के ध्यानों का विकास निर्माण सहित किया गया था, जिसे हम आज भी आलेख्य चित्रों एवं ध्यानों के रूप में प्राप्त कर रहे हैं।

भूतकाल में रागों के नामकरण पर देशों के आधार पर भी प्रभाव पाया जाता है जैसे- सौराष्ट्रीय, गुर्जरी, सिन्धु भैरवी, मुलतानी आदि। कहीं-कहीं कलाकारों के नाम पर राग नाम पर रखे गये जैसे- मियां की मल्हार, मियां की तोड़ी, हुसैनी, रामदासी, सूरदासी आदि।

अतः साधक के लिए रागों के प्रभाव, काल, गुण धर्म, रस, हाव-भावों का पूर्ण बोध कराने के लिए प्राचीन आचार्य्यों ने उन रागों के मूर्तिमान आकार का ध्यान बतलाते हुए उनका अभ्यास कराना परमावश्यक समझा गया था और इसी

Scanned with OKEN Scanner

आधार पर पूर्वकाल के भारतीय सङ्गीत आचार्य्यों ने रागों के ध्यानों को सफल अविष्कार किया था तथा रागों को रूप-रूंग सहित वर्णन किया था।

स्वरों के देवता, जाति, रस

ग्राम	ऋषि	जाति	देवता	रस
षड्ज	अग्नि	विप्र	अग्नि	वीर,अद्भुत,रौद्र
ऋषभ	ब्रह्मा	क्षत्रिय	ब्रह्मा	वीर,अद्भुत,रौद्र
गान्धार	चन्द्रदेव	वैश्य	सरस्वती	करुण
मध्यम	विष्णु	विप्र	शिव	श्रृंगार, हास्य
पंचम	नारद	विप्र	विष्णु	श्रृंगार, हास्य
धैवत	तुम्बुरु	क्षत्रिय	गणपति	वीभत्स,भयानक
निषाद	कुबेर	वैश्य	सूर्य	करुण

संदर्भ

१. भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र-भाग प्रथम, पृ. ११५

२. वही, पृ. ११

Scanned with OKEN Scanner

गान में छन्द और ताल : एक अध्ययन

भारतीय ऋषियों का कहना है कि ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसमें कोई छन्द न हो और ऐसा कोई छन्द नहीं है जो शब्द-हीन हो इसलिए समस्त ब्रह्माण्ड छन्द से व्याप्त है ।

छन्द का अर्थ वाणी की रक्षा करने वाला है। इसीलिए ऋग्वेद छन्दोबद्ध है। गद्य कंठाग्र करने में कठिनता होती है परन्तु छन्दोबद्ध होने के कारण पद्य सरलता पूर्वक कंठाग्र हो जाता है।

भारतीय सङ्गीत के कुछ प्रबन्ध छन्दों के अनुसार होते थे और उनका नाम छन्द के नाम पर ही होता था जैसे 'तोटक' और 'दोधक' छन्द भी हैं और प्रबन्ध भी।

जब छन्द और ताल की मात्रा का परिमाण समान होता है तब ताल का वह रूप 'यथाक्षर' या 'एककल' कहलाता है। जब छन्द की एक मात्रा ताल की दो मात्राओं के बराबर होती है तब ताल का वह रूप 'द्विकल' कहलाता है और जब छन्द की एक मात्रा ताल की चार मात्राओं के बराबर होती है तब ताल का वह रूप 'चतुष्कल' कहलाता है ।

बात केवल सिद्धान्त की नहीं है, लोग व्यवहार में ऐसा करते हैं, परन्तु जानते नहीं ।

छन्द और ताल दोनों समय के एक परिमाण और उसके अन्तर्गत विभागों के बोधक हैं। ये विभाग भी ताल या छन्द का स्पष्टीकरण करने के लिए हैं। लोक-गायक अनेक छन्दों और तालों का व्यवहार करते हैं परन्तु उन छन्दों और तालों का नाम नहीं जानते। विचारक उन छन्दों या तालों का विश्लेषण कर देता है। वो विश्लेषण ही 'छन्द:शास्त्र' और 'तालशास्त्र' कहलाता है ।

छन्द दो प्रकार के होते हैं— **'वर्णिक'** और **'मात्रिक'**। वर्णिक छन्दों में

Scanned with OKEN Scanner

ह्रस्व या दीर्घ अक्षर '**वर्ण**' कहलाता है। यद्यपि दीर्घ वर्ण की मात्राएं दो और लघु वर्ण की मात्रा एक होती है तथापि वर्णिक छन्द में एक दीर्घ के स्थान पर दो लघुओं और दो लघुओं के स्थान पर एक दीर्घ का प्रयोग नहीं हो सकता। '**मात्रिक छन्दों**' में मात्राएँ गिनी जाती हैं वर्ण नहीं ।

समस्त भारत में छन्दों का शास्त्र एक है इसलिए प्रस्तुत पंक्तियों में जो कुछ कहा जा रहा है वह सङ्गीत के विद्यार्थियों के लिए नवीन भला ही हो परन्तु साहित्य के विद्यार्थियों के लिए एक सामान्य बात है।

'वर्णिक' छन्दों को समझने के लिए एक सामान्य सा सूत्र है, 'यमात्ताराजभानसलगा'। इस सूत्र में पहले आठ अक्षर गणों के नाम के आद्याक्षर हैं। एक-एक गण में तीन-तीन वर्ण होते हैं। 'वर्ण' आठ हैं– यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, सगण। सूत्र में 'ल' लघु का वाचक है और 'गा' गुरु का। गण का रुप जानने के लिए गण के आद्यक्षर से आरम्भ करके उसमें दो अग्रिम अक्षर सम्मिलित कर लेना चाहिए। जैसे- 'यमाता,' 'मातारा,' 'ताराज', 'राजभा', 'जभान', 'भानस', 'नसल', 'सलगा'। इसका अर्थ यह है कि 'मगण' में तीनों अक्षर दीर्घ, 'तगण' में दो दीर्घ और एक लघु, 'रगण' में दीर्घ, लघु, दीर्घ, 'जगण' में लघु, दीर्घ, लघु, 'भगण' में दीर्घ, लघु, लघु, 'नगण' में लघु, लघु, लघु और 'सगण' में लघु, लघु, दीर्घ अक्षर होते हैं। यदि हम इन विभिन्न गणों में मात्राओं की गणना करें तो 'नगण' में तीन मात्राएं 'जगण' भगण और सगण में चार-चार मात्राएँ यगण, तगण और रगण में पाँच-पाँच मात्राएँ तथा 'मगण' में छह मात्राएं मिलेंगी।

पांच वर्णों का गण वैदिक भाषा में '**सुप्रतिष्ठा**' कहलाता है। ऐसे अनेक भेद हो सकते हैं जिनमें एक चरण के अन्तर्गत वर्ण तो पाँच ही हों परन्तु मात्राओं की संख्या भिन्न हो। यदि पांच लघु अक्षरों का एक चरण है तो उसमें मात्राओं की संख्या पांच होगी और यदि पांच दीर्घ वर्णों का एक चरण है तो उसमें मात्राओं की संख्या दस होगी। इसी तरह गुरुओं और लघुओं की संख्या के अन्तर से '**सुप्रतिष्ठा**' छन्द के अनेक भेद होंगे और उन छन्दों के साथ विभिन्न मात्राओं वाले तालों का व्यवहार होगा।

'सुप्रतिष्ठा' छन्द का एक भेद है 'पंक्ति' जिसमें एक चरण के अन्तर्गत एक भगण और दो गुरु होते हैं। जैसे- 'पंक्ति' के चार चरण निम्नलिखित हैं–

बादर आये । अंबर छाये। बालम मोरे। ना घर आये।

Scanned with OKEN Scanner

यह सरल भाषा में एक उदाहरण है। इन चारों चरणों में प्रत्येक का वज़न सितार के बोल 'दादिरदारा' के बराबर है। दीर्घ अक्षर की दो और लघु अक्षर की एक मात्रा के हिसाब से गणना की जाए तो प्रत्येक चरण में आठ-आठ मात्राएं हैं। अब यदि आठ मात्राओं के 'अद्धा' ताल में इस छन्द को गाया जाए तो यह इस प्रकार स्वतः आ जायेगा।

५	६	७	८	१	२	३	४
ता	तिन्	तकि	धिन्	धा	धिन्	धगि	तिन्
बा	ऽ	द	र	आ	ऽ	ये	ऽ
अं	ऽ	ब	र	छा	ऽ	ये	ऽ

अन्तरा

बा	ऽ	ल	म	मो	ऽ	रे	ऽ
ना	ऽ	घ	र	आ	ऽ	ये	ऽ

यदि आप 'पंक्ति' छन्द के इन्हीं शब्दों को तिलवाड़े में गाना चाहें तो अवग्रह इस प्रकार होंगे और एक आवृत्ति में छन्द के दो चरण आयेंगे।

धाऽ धाऽ धिंऽ धिंऽ धाऽ तिरकिट धिंऽ धिंऽ धाऽ धाऽ तिंऽ तिंऽ ताऽ तिरकिट धिंऽ धिंऽ

ऽबा

ऽ ऽ द ऽर आ ऽ ये ऽअं ऽ ऽ ब ऽर छा ऽ ये

अन्तरा

ऽ बा

ऽ ऽ ल ऽम मो ऽ रे ऽना ऽ ऽ घ ऽर आ ऽ ये

जिनके मस्तिष्क में ताल का रूप है और राग भी रचा हुआ है वे किसी भी मल्हार में विषय को देखते हुए इन बोलों को गा सकते हैं। यहां अवग्रह बेतुके नहीं हैं और उनसे ताल का रूप प्रकट होता है ।

विभिन्न ताल विभिन्न आकृतियों वाले पात्रों की भांति हैं। यही स्थिति छन्दों की है। 'राग' दूध की भाँति एक तरल पदार्थ है, जिस पात्र में रक्खा जाता है, उसी जैसी आकृति धारण कर लेता है। इसीलिए कहा गया है कि नृत्य, वाद्य और गीत ताल में प्रतिष्ठित (सुखपूर्वक यथास्थान स्थित) हैं। बन्दिश का आधार ताल है। इसी छन्द को मर्मज्ञ गुणी झपताल में इस प्रकार कहेंगे ।

धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
				बा	ऽ	ऽ	द	ऽ	र
आ	ऽ	ये	ऽ	अं	ऽ	ऽ	ब	ऽ	र
छा	ऽ	ये	ऽ						

अन्तरा

				बा	ऽ	ऽ	ल	ऽ	म
मो	ऽ	रे	ऽ	ना	ऽ	ऽ	घ	ऽ	र
आ	ऽ	ये	ऽ						

अवग्रहों के इस मर्म को मेरी माता व गुरु श्रीमति सुलोचना बृहस्पति के स्वर्गवासी गुरु स्वर्गीय पं० भोलानाथ भट्ट भी भली-भांति जानते थे। भट्ट जाति में महाकवि पद्माकर और महाकवि ग्वाल जैसे कवि भी हुए हैं और चुन्नीलाल भट्ट तथा फूल जी भट्ट जैसे गायक भी। सदारङ्ग के युग तक छन्द और ताल के सामंजस्य की यह परम्परा मुसलमान गुणियों में भी थी, परन्तु मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् इसको जानने वाले व्यक्ति कहीं-कहीं रह गए।

वास्तविकता से अपरिचित होने के कारण लोग यह समझने लगे हैं कि ख़याल

Scanned with OKEN Scanner

गान में ताल या छन्द का कोई महत्त्व नहीं है परन्तु जिन लोगों ने तिलवाड़ा या झूमरा जैसे तालों की विभिन्न मात्राओं को विभिन्न खण्डों में विभाजित किया था वो छन्द और ताल के मर्मज्ञ थे ।

प्रत्येक ताल का अपना एक 'मिज़ाज' होता है, एक गति होती है। छन्द में आए हुए अक्षरों के अवग्रहों का एक विशिष्ट स्थान होता है और ताल के बोलों के साथ जब तक उनका सामंजस्य नहीं होता तब तक बंदिश की चूलें नहीं बैठतीं।

आज अधिकांश ख़याल गायक भाषा, उच्चारण, अर्थ, छन्द और ताल की उपेक्षा करके चल रहे हैं। इसलिए ख़याल में बिखरावट आ गई है । निरक्षर गुणी जब से छन्द को भूलकर स्वच्छन्द हो गए तभी से मूल बंदिशों का रूप विकृत हो गया और विभिन्न घरानों के नाम पर बंदिशों की मनमानी खींचतान हुई। इस युग के सङ्गीतोद्धारकों ने अपना ध्यान केवल राग की ओर लगा दिया और यह देखने का कष्ट नहीं किया कि गान में छन्द और ताल का महत्त्व कितना है?

Scanned with OKEN Scanner

राग मिश्रण के सिद्धान्त

मिश्र रागों में रागों का मिश्रण करते समय कौन-कौन से नियमों का पालन किया जाता है, यह जानना आवश्यक है। इसके अध्ययन से हमें राग मिश्रण के मूल तत्त्वों के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त होती है।

राग मिश्रण प्रक्रिया बुद्धि-प्रधान आनन्द का निर्माण करती है। दो रागों का मिश्रण करते समय दो बातें आवश्यक हैं—

(१) मिश्र राग के घटक रागों पर पूर्ण अधिकार रखना।
(२) उन घटक-रागों को योग्य तथा प्रभावी ढंग से साधने का चातुर्य रखना।

इन दो गुणों के द्वारा गायक अपने बुद्धि-विलास का दिग्दर्शन करता है। मिश्र राग को सुनते समय श्रोता बारबार आश्चर्य का अनुभव करता है और यही अनुभव आश्चर्यजनित आनन्द का सृजन करता है। श्रवण के पूर्वानुभव के आधार पर श्रोता कलाकार से एक विशिष्ट दिशा की और गतिमान होने की अपेक्षा करता है। लेकिन ऐसी वैचित्र्यपूर्ण रचना का प्रादुर्भाव कर कलाकार अपने कौशल का परिचय देता है तथा श्रोता को विस्मित करता है। अत: मिश्र-राग का रस ग्रहण करने के लिए सुनने वाले लोगों में सङ्गीत विषयक ज्ञान का एक विशिष्ट स्तर होना आवश्यक माना जाता है, अन्यथा कलाकार के सब श्रम व्यर्थ ही जाते हैं। अत: सर्व सामान्य श्रोता मिश्र राग के अधिकारी नहीं रहते। परन्तु विद्वान् और मार्मिक श्रोता के लिए तो मिश्र राग एक अपूर्व अवसर रहता है, जहां वह बौद्धिक आनन्द का अनुभव करता है। जिन दो रागों का मिश्रण किया जाता है, उनका यथायोग्य ज्ञान अगर श्रोता को न हो, तो वह मिश्र राग के सच्चे सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। आजकल गायक या वादक अधिकतर मिश्र राग ही गाते हैं या बजाते हैं। किन्तु साधारण श्रोता मिश्र राग के द्वारा संपूर्ण आनन्द नहीं हो सकता। अत: शुद्ध राग का गायन आज भी आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। शुद्ध

Scanned with OKEN Scanner

रागों के गायन से श्रोताओं का मनोरंजन वर्षों से आज तक किया गया है तथा शुद्ध रागों का अभ्यास भी कलाकारों ने गहराई से किया है। अतएव शुद्ध राग भविष्य में भी कायम रहेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

प्राय: मिश्र राग अप्रचलित रहते हैं। लेकिन कई बार कुछ मिश्र राग इतने लोकप्रिय हो जाते हैं कि उन्हें अप्रचलित राग नहीं कहा जा सकता। कुशल गायक की रसपूर्ण गायकी, राग वैचित्र्य तथा राग पर असामान्य प्रभुता इन तीनों बातों के कारण अप्रचलित लगने वाले राग भी लोकप्रिय बन जाते हैं। इसलिए किसी भी अप्रचलित राग को लोकप्रिय बनाने में गायक की गान-तपश्चर्या तथा राग-मिश्रण करते समय पालन किये गए नियम यही दो बातें निर्णायक रहती हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आजकल के नवीन प्रचलित राग स्वयं ही हैं।

किसी समय प्रचलित लगने वाले राग आज अप्रचलित बन सकते है तथा आज अप्रचलित लगने वाले राग भविष्य में प्रचलित बन सकते हैं। यह सब बातें परिस्थितियों पर निर्भर हैं।

मिश्र राग का थाट कौन सा है, यह निश्चित करते समय उस राग में किस राग का प्राबल्य है, यह देखना चाहिए तथा जो प्रथम राग का थाट होगा, वही थाट इस मिश्र राग का भी होगा ऐसा कहा जाता है।

मिश्र राग के सम्बन्ध में कौन से नियमों का पालन किया जाना आवश्यक है

पहला तत्त्व रागों का मिश्रण करते समय दो या अधिक राग साथ ही साथ प्रयुत्य होते हैं। किन्तु ऐसे मिश्र रागों के स्वरूपों में एक ही राग विशेष ढंग से चमकता है। जिस प्रकार कपड़े पर रंग बिरंगे बेल-बूटे से सुन्दर काम किया जाता है, उसी प्रकार मिश्र राग से प्रबल राग के स्वर विस्तार पर दूसरे राग अथवा की कलापूर्ण योजना की जाती है तथा इस प्रकार मिश्र राग की उत्पत्ति होती है ।

जिस प्रबल राग में दूसरे राग को मिलाकर मिश्र राग का निर्माण किया जाता है, वह प्रबल राग मिश्र राग के आरोह, अवरोह, पूर्वांग या उत्तरांग इत्यादि में एक अथवा अनेक जगह लाया जा सकता है । जिस दूसरे राग का उठान निश्चित

Scanned with OKEN Scanner

स्वर से ही करना पड़ता है अथवा आरोहावरोह या पूर्वांग उत्तरांग इन में से किसी एक ही विभाग में उस राग का विस्तार करना पड़ता है । इन सब नियमों का यही उद्देश्य रहता है कि प्रबल राग-प्रकृति की हानि न हो तथा दूसरे राग के मिश्रण से बनायी गयी नवीन मिश्र राग रचना मूल राग के रसानुकूल और अधिक श्रवण मधुर हो। इस तत्त्व का पालन प्रायः सभी तमाम रागों में किया जाता है। कई मिश्र राग ऐसे पाये जाते हैं कि जिनमें दो राग बराबर मात्रा (समप्रमाण) में मिले हुए रहते हैं। ऐसे रागों में अधिक प्रभावी राग कौन सा है, यह सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा ही निश्चित किया जाता है।

मिश्र राग में कोई न कोई एक राग सदैव प्रबल रहता है, यह तत्त्व ध्यान में रखने से एक बात और स्पष्ट होती है कि प्रत्येक मिश्र राग के अनेक अथवा कम से कम राग स्वरूप अपने प्रबल राग पर निर्भर रहता है। उदाहरणार्थ्स- बसंत-बहार, इस राग में बसंत अथवा बहार किसी भी राग को प्रबल राग का स्थान दिया जा सकता है। साधारणतः बसंत प्रबल राग मानकर उसमें बहार को मिलाते हैं। लेकिन यदि बहार को प्रबल राग मानकर उसमें बसंत राग को मिश्रित कर दें, तो वह बसंत बहार इस मिश्र राग का एक स्वतंत्र ही राग स्वरूप होगा। एक बात निश्चित है कि ऐसे दो या अनेक राग स्वरूपों में जो राग स्वरूप रसोत्पत्ति का रूप, विस्तार सुलभ और अधिक श्रवण मधुर होगा, वही राग स्वरूप प्रचलित होने की अधिक संभावना है ।

राग मिश्रण का दूसरा तत्त्व यह है कि किसी भी एक राग के स्वर कायम रखकर उसके गाने की पद्धति मात्र दूसरे राग की होती है। उदाहरण मेघमल्हार के सारंग राग के स्वर कायम रखकर गायकी मात्र मल्हार राग के अनुसार की जाती है। ऐसे मिश्र रागों में दो रागों को ढूंढ निकालना कठिन होता है । कारण स्वर तो एक राग के होते हैं, किन्तु उनका चलन दूसरे राग के अनुसार किया जाता है। ऐसे मिश्र राग फिर शुद्ध राग का स्वरूप प्राप्त कर लेत हैं तथा ऐसे मिश्र रागों के प्रकारों में दो भिन्न रागों को ढूंढने के लिए सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता रहती है। साधारण श्रोता ऐसे मिश्र रागों को पहिचानने में कठिनाई अनुभव करते हैं। ऐसे मिश्र राग के संबंध में एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस राग का चलन दूसरे राग की स्वर संगति को प्रदान किया जा रहा है, वह चलन दूसरे राग की स्वर-संगति के अनुरूप है ।

Scanned with OKEN Scanner

इससे यह स्पष्ट है कि करुण भाव उत्पन्न करने वाले स्वरों को यदि चंचल अथवा वीर रस के स्वरों का चलन दे दें तो वह रंग भंग करेगा। जबकि राग-रंजकत्व राग की प्रमुख कसौटी है ।

तीसरा तत्त्व यह है कि जिस मिश्र राग में दो रागों का मिश्रण प्रगट रीति से किया जाता है, वे दो राग एक दूसरे के पोषक रहने चाहिए। दोनों राग एक दूसरे का विरोध करने वाले न हों। दोनों रागों के स्वरों का संयोग इस प्रकार हो कि राग-विस्तार सुलभ हो यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। अत: जहां तक संभव हो, दो रागों के स्वर अधिकांशतय: समान होने चाहिए। जहां तक संभव हो दोनों राग जिनका मिश्रण किया जाये एक ही थाट के होने चाहिए।

चौथा तत्त्व यह है कि जिन दो रागों के विश्रांति-स्थान, वादी, संवादी आदि बातें समान हों, उनका मिश्रण आसानी से किया जा सकता है ।

कम से कम एक स्वर तो मिश्र अवश्य ही होना चाहिए कि जहां से दोनों रागों का विच्रार आरंभ किया जा सके। यह संधि कराने वाला स्वर वादी-संवादी स्वर ही हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। परन्तु कम से कम एक स्वर संगति ऐसी अवश्य होनी चाहिए जो दोनों रागों में समान ढंग से प्रयुक्त हो ।

पांचवा तत्त्व यह है कि दो रागों में कुछ समानता हो किन्तु यह समानता राग के स्वरूप को परस्पर अलग दिखाने में बाधक न हो । किसी भी एक राग का विस्तार प्रारंभ करने के बाद तुरन्त दूसरे राग को कम से कम स्वर लेकर जोड़ना, यही मिश्र राग की कुशलता का प्रमुख अंग हे। अत: मिश्रित राग तथा प्रबल राग यह एक दूसरे से विभिन्न होने चाहिए। ऐसा करने से ही उस राग का स्वरूप को मिश्र राग का जा सकता है अन्यथा उसका वर्णन शुद्ध राग का एक भ्रष्ट स्वरूप ही कहा जायेगा।

छठा तत्त्व यह है कि जहाँ किसी एक राग के प्रमुख स्वर इतनी कुशलता से प्रयुक्त होते हैं कि वह राग स्पष्ट रीति से कहीं भी दिखलाई नहीं देता, परन्तु उसकी छाया प्रबल राग पर प्रतीत होती है। उदाहरण- शुद्ध कल्याण में तीव्र मध्यम व निषाद स्वरों का प्रयोग इतनी कुशलता से करते हैं भूपाली (भूप) के स्वरों द्वारा कल्याण का आभास होता है। लेकिन कल्याण की एक भी स्वर - संगति स्पष्ट

Scanned with OKEN Scanner

रीति से कहीं भी प्रयोग नहीं करते। केवल 'प रे सा' यह कल्याण वाचक स्वर संगति लेकर कल्याण राग का आभास स्पष्ट करते हैं।

सातवां तत्त्व है राग का नामकरण। राग के अन्तर्गत आये हुए रागों पर ही नाम रखना उचित है। जैसे मल्हार राग के सब प्रकारों में मल्हार शब्द प्रयुक्त होता है। यह मल्हार राग के प्राबल्य को दिखलाता है ।

कुछ मिश्रित राग ऐसे भी हैं जिनके नाम सार्थक नहीं हैं और हमको रागों के संबंध में कोई भी आभास प्राप्त नहीं होता है। जैसे गोरख कल्याण जिसमें कल्याण का प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाई नहीं पड़ता।

आठवां तत्त्व यह है कि राग मिश्रण में रस-सिद्धांत का महत्त्व रखा जाये। मिश्र राग से उत्पन्न होने वाला आनन्द आश्चर्यजनित और बौद्धिक रहता है। फिर भी मिश्र राग को प्राप्त होने वाले भावनात्मक आधार को कभी नहीं भूलना चाहिए। कारण रंजक्तव गुण का महत्त्व मिश्र राग के लिए भी असाधारण है। आश्चर्य आनन्द का निर्माता है। परन्तु इस आश्चर्य की भी सीमा है, बन्धन है। नहीं तो विसंगत व अति विचित्र स्वर रचना रस-भंग करने वाली होती है। अतः राग मिश्रण के संबंध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आश्चर्य व नवीनता का प्रयोग रंजकता कों देखकर ही किया जाये तभी वह राग मिश्रण कला की दृष्टि से उपयुक्त होगा।

भातखण्डे जी ने कहा है कि बिलावल राग के सभी प्रकार रात के तमाम रागों के जवाब हैं और प्रातर्गेय हैं। [१]

भातखण्डेजी ने अनेक गायकों का यह मत बताया है परन्तु इस पर स्वयं निर्णय नहीं दिया है ।

रामपुर परम्परा के मर्मज्ञ आचार्य्य बृहस्पति का कहना है कि कल्याण थाट का पंचम ही बिलावल थाट का षड्ज है। कल्याण थाट का धैवत बिलावल का ऋषभ है, कल्याण का निषाद बिलावल का गांधार है, कल्याण का षड्ज बिलावल का मध्यम है। कल्याण का रिषभ बिलावल का पंचम है। कल्याण का गांधार बिलावल का धैवत है, कल्याण का मध्यम बिलावल का षड्ज है। अर्थात् कल्याण के- प ध नी स रे ग मॅ प ही बिलवाल के— स रे ग म प ध नी सं हैं।

यमन कल्याण के दोनों मध्यम ही अल्हैया बिलावल के दोनों निषाद हैं।

Scanned with OKEN Scanner

कल्याण के पूर्वांग में स्थित गांधार ही बिलावल के उत्तरांग में स्थित धैवत हैं। इस दृष्टि से कल्याण और बिलावल में सहज संबंध है ।

यदि बिलावल गाते समय तानूपरे के बायीं ओर का तार शुद्ध मध्यम में मिलाया जाये, तो यह स्थिति बच्चों की भी समझ में आ जायेगी। सामान्यत: बिलावल गाते समय लोग तानूपरे पर पंचम स्थापित करते हैं जो कि कल्याण का ऋषभ है इसीलिए बिलावल में कल्याण का रूप सामान्य व्यक्तियों के लिए छिपा रहता है। इसीलिए बिलावल को सवेरे का कल्याण कहते हैं।

पूर्वी थाट के पंचम को षड्ज मानने पर तीव्र धैवत के ललित की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—

पूर्वी-	प	ध॒	नी	सं	रें॒	गं	में॑	पं
ललित	स	रे॒	ग	म	म॑	ध	नी	सं

भातखण्डे जी की परम्परा में ललित में तीव्र धैवत का व्यवहार होता है, वह ललित पूर्वी थाट का ही प्रसाद है ।

कोमल धैवत के ललित का जन्म रात्रि-कालीन राग से न होकर प्रात:कालीन तोड़ी थाट से हुआ है। तोड़ी थाट के पंचम को षड्ज मानने पर कोमल धैवत की ललित होती है ।

तोड़ी-	प	ध॒	नी	सं	रे॒	ग॒	म॑	प
ललित-	स	रे॒	ग	म	म॑	ध॒	नी	सं

काफी थाट के पंचम को षड्ज मानने से आसावरी थाट की उत्पत्ति हुई है-

काफी -	प	ध	नी॒	सं	रे॒	ग॒	म	प
आसावरी -	स	रे	ग॒	म	प	ध॒	नी॒	सं

काफी थाट के अनेक राग रात्रिगेय हैं। विचार करने पर आसावरी थाट

के अनेक राग, प्रात:कालीन राग रात्रि गेय रागों का जवाब है ।

खमाज थाट के पंचम को षड्ज मानने से पटदीप का थाट निकलता है-

खमाज-	प	ध	नी	सं	रे	ग	म	प
पटदीप-	स	रे	ग	म	प	ध	नी	सं

उपरोक्त रागों के निर्माण का आधार मूर्च्छना है। यह षड्ज चालन की विधि से प्राप्त हुए हैं।

दस थाटों में से भैरव, पूर्वी, तोड़ी और मारवा थाट भरत या शार्ङ्गदेव की मूर्च्छनाओं में नहीं आते हैं। शेष छः थाट मूर्च्छनाओं में आते हैं। मूर्च्छना से प्राप्त न होने वाले पूर्वोक्त चारों थाटों का मिश्रण जब मूर्च्छनाजन्य थाटों के रागों में किया जाता है तब विभिन्न स्वर गुच्छों के पारस्परिक सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए स्वर योजना की जाती है । ऐसी दशा में चतुःश्रुति, षट्श्रुति, सप्तश्रुति, नवश्रुति और तेरह श्रुतियों के संबंधों का ध्यान रखते हुए जाल बुना जाता है ।

स-ग संबंध षट्श्रुतिक है, यही संबंध प-नी और म-ध, रे-म (४६-१२५) और ध (२२२) - सं (३०१) में है।

सप्त श्रुति का सम्बन्ध

स-ग ९७, रे- म (च्युतम्), (२३-१२०) रे (२८)- म (१२५), रे (५१), म (१४८), ग (७४)- प् (१७१), ग (७९)- प (१७६), ग (१०२)-ध (१९९), म (१२५)- ध (२२२) नी (२५०)- रें (३४७) में है।

तात्पर्य यह है कि रागों के मिश्रण में पंचश्रुतिक तथा अष्टश्रुतिक स्वर अनिष्ट होते हैं। आचार्य बृहस्पति ने तोड़ी, ललित और रामकली के मिश्रण से प्रभात रंजनी राग की सृष्टि की है जो परस्पर संवादी स्वर गुच्छों की योजना का परिणाम है।

Scanned with OKEN Scanner

सवाल	जवाब
ध़ नि़ ध़ प़ म़ प़ नी़ स	रे॒ ग॒ रे॒ स नि़ स ग म
नि़ स रे॒ स नि़ स	ग म मं म ग म
रे॒ नी़ नी़ स	ध मं मं प

उदाहरणार्थ - **भटियार :—**

भटियार में गौड़ मल्हार, जलधर, देवगिरि, ललित, कालिंगड़ा, परज व हिंडोल की छाया आती है अतः यह एक अजीब राग समझा जाता है जिसमें कई राग मिले हैं और वे सभी अलग अलग ठाठों के हैं।

स ऽ स ग ऽ ग म ऽ म प ग ऽ	— कालिंगड़ा
प ऽ ग ऽ मं ग रे॒ ऽ स	— परज
रे ऽ स ग ऽ ग म ऽ ऽ	— ललित
सां ऽ ऽ ध पं म ऽ म	— जलधर
ध ऽ ध ऽ प ध नी ऽ प म ऽ ग	— देवगिरि
मं ऽ ध सं ऽ ध सं ऽ	— हिंडोल
म ऽ म प ध सं ऽ ध प म ऽ	— गौड़ मल्हार

इसी प्रकार शिवमत भैरव में भी भैरव तथा भैरवी का मेल है।

लाग-डाट से स्वरों का प्रयोग

किसी स्वर पर जाने का संकल्प किसी अन्य स्वर से किया जाता है वह लाग का स्वर कहा जाता है और जिस स्वर पर जाकर रुका जाता है वह डाट का स्वर कहा जाता है क्योंकि डाट का अर्थ रुकना या स्थिर रहना है। ये लाग आरोह की ओर से भी हो सकती है और अवरोह की ओर से भी ।

मूलतः आरोह की ओर स्वरों की प्रवृत्ति चढ़ने की ओर होती है और अवरोह की ओर उतरने की। इस दृष्टि से आरोह की ओर दुर्गा और अवरोह की ओर गुणकली के स्वर रखे जाएं तो—

Scanned with OKEN Scanner

आरोह- स रे म प ध सं
अवरोह-सं ध स म रे स

स्व० आचार्य्य बृहस्पति ने भुवन मोहिनी की सृष्टि की है। यदि इस सब स्वरों को आरोह क्रम से रख दिया जाये तो-

आरोह - स रे रे म प ध ध सं
हो जाएंगे जो दक्षिणात्यों के कनकांगी या मुखारी मेल की स्वरावली हैं।

यदि आरोह की ओर तिलंग और अवरोह की और धानी हो तो स्थिति यह होगी-

आरोह- स ग म प नी सं
अवरोह- सं नी प म ग स

इस प्रकार रखा जाए तो जोग बन जायेगा । जो कि दाक्षिणात्यों के रागमात्य का 'चलनाट' मेल होगा- स ग ग म प नी नी सं।

सिद्धांत यह हुआ कि दो संवादी स्वरों को आरोह में तीव्र रखा और अवरोह में उतार दिया है ।

आरोह- स ग म ध नी सं
अवरोह- सं नि ध म ग स

उपरोक्त नया राग बन गया जिसका सिद्धांत हुआ कि मध्यम का संवादी स्वर ध नी सं हुए। आरोह में रागेश्री और अवरोह में मालकंस हुए।

प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान काल तक असंख्य रागों की रचना हो चुकी है। इन रागों का वर्गीकरण शुद्ध छायालग, मिश्र और संकीर्ण भेदों द्वारा किया जाता है। शुद्ध राग वे हैं जिसमें किसी भी अन्य राग की छाया तक नहीं दिखाई पड़े। जैसे भैरव, कल्याण

छायालग राग- वे हैं जिनमें स्वर वही हों और दूसरे राग की छाया आ जाये।

Scanned with OKEN Scanner

मिश्र राग- दो रागों का मिश्रण पाया जाये। जैसे- बसंत- बहार, नट भैरव, अहीर, भैरव आदि।

संकीर्ण राग- दो से अधिक रागों का मिश्रण होता है। जैसे मालगुंजी में काफी, बागेश्वरी और रागेश्वरी।

संकीर्ण के दो भेद हैं- (१) संकर राग- जिस प्रकार दूध, पानी और चीनी का मिश्रण इस प्रकार घुला मिला होता है जिसको अलग अलग पहचान नहीं सकते हैं।

(२) संसृष्टि - यह खिचड़ी या तिल चावल के मिश्रण के समान हैं जो अलग अलग पता चलते हैं।

रामपुर के छम्मन साहब की परम्परा में राग बनाने के कुछ नियम हैं जो निम्नलिखित हैं-

(१) किसी भी ठाठ के कोमल स्वरों को तीव्र ओर तीव्र स्वरों को कोमल कर देना 'ठाठ' लौटना कहलाता है। अमीर खुसरो ने इसी प्रकार का आश्रय लेकर अनेक रागों में परिवर्तन किया था। सेनिया की परम्परा में यह प्रभाव खुसरो की परम्परा से आया था। काफी ठाठ को लौटने से पूर्वी ठाठ बन जाता है, जैसे -

काफी ठाठ- स रे ग म प ध नि सं
पूर्वी ठाठ- स रे ग म॑ प ध नि सं

पहले बसंत काफी ठाठ में गाया जाता था। अमीर खुसरो ने ठाठ लौटकर उसे पूर्वी ठाठ में कर दिया। यही इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) मत का वसंत है, जो आजकल प्रचार में है।

खमाज ठाठ को लौटने से तोड़ी ठाठ बन जाता है-

खमाज ठाठ- स रे ग म प ध नि सं
तोड़ी ठाठ- स रे ग म॑ प ध नि सं

Scanned with OKEN Scanner

आसावरी ठाठ को लौटने से मारवा ठाठ का निर्माण हुआ ।

आसावरी ठाठ- स रे ग म प ध नि सं
मारवा ठाठ- स रे ग मं प ध नि सं

(२) ठाठ के कुछ स्वरों को उलट देना और कुछ को जैसा का तैसा रहने देना- जैसे भीमपलासी के निषाद और मध्यम की आरोह में धैवत तथा ऋषभ को अवरोह में लौटकर और गांधार को जैसा का तैसा रखकर शाहजहाँ- कालीन शेख बहाउद्दीन जकरिया ने मुलतानी का निर्माण किया।

भीमपलासी- नि स ग म प नि सं
नि ध प म ग रे सा
मुलतानी- नि स ग मं प नि सं
नि ध प मं ग रे स।

(३) राग बनाने का तीसरा नियम ठाठ के स्वरों को जैसा का तैसा रखते हुए उनकी गति में परिवर्तन करना और विश्रांति के स्वरों को बदल देना है। जैसे सोहनी, पूरिया, मारवा।

(४) ठाठ भी लौटा जाए और विश्रांति स्वर भी बदले जाएं तो मालकोंस और हिंडोल जैसे रागों की स्थापना होगी ।

(५) यदि किसी राग के पूर्वांग में एक राग रखा जाय तथा उत्तरांग में दूसरा तो पूरिया कल्याण, कौसी कान्हड़ा तथा जोगकंस जैसे राग जन्म लेंगे ।

Scanned with OKEN Scanner

कान्हड़ा अङ्ग के रागों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

कान्हड़ा का नाम सुनते ही एक राग, जिसका स्मरण अकस्मात् ही आता है, वह है दरबारी कान्हड़ा तथा राग का यह संयुक्त नाम देखते ही मन में सहज ही ऐसी धारणा आती है कि इस राग में 'दरबारी' तथा 'कान्हड़ा', इन दो स्वतंत्र रागों का मिश्रण होगा। परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। इस नाम में दरबारी को सिर्फ कान्हड़ा का विशेषण समझना चाहिए। अब आगे यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि दरबारी विशेषण से किसका बोध होता है तथा शब्द कान्हड़ा से पहले क्यों लगाया गया। इसका समाधान पं० भातखण्डे जी ने यह बताया है कि बड़े-बड़े राजा -महाराजाओं के महलों में दरबार लगा करते थे, तो दरबारी शब्द कान्हड़ा के साथ क्यों आया, इसके उत्तर पं० भातखण्डे जी के गुरु जी रामपुर में रहा करते थे, ने इस प्रकार दिया— कि मियाँ तानसेन ने कान्हड़ा राग को आज के स्वरूप में अकबर बादशाह के सामने भरे दरबार में गाया था, बादशाह उस प्रकार को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उस दिन से यह राग दरबार में बारम्बार गाया जाने लगा तथा दरबार को प्रिय होने के कारण यह राग दरबारी के नाम से पुकारा जाने लगा। दरबारी शब्द यावनिक है, यह स्पष्ट ही है। यह स्पष्टीकरण चाहे असत्य हो या संदेहात्मक हो, परन्तु, दूसरा समाधान कारक प्रमाण मिलने तक हमारे लिए यही स्वीकार करना उचित है। अब प्रश्न यह उठता है कि अगर तानसेन ने कान्हड़ा का आधुनिक रूप अकबर के दरबार में गाया था तो क्या इसका कोई प्राचीन रूप भी था तथा जो दरबारी कान्हड़ा आधुनिक काल में गाया बजाया जाता है हूबहू वैसा ही स्वरूप मियाँ तानसेन ने अकबर के समक्ष प्रस्तुत किया था तो इसका उत्तर यह है कि तानसेन के वंशज आज भी रामपुर में विद्यमान हैं तथा वे यह राग अपनी परम्परानुसार गाते हैं तथा एक सत्य यह भी है कि इस राग के विषय में शायद ही सर्वत्र देश में कहीं कोई मतभेद हो। अस्तुः दरबारी कान्हड़ा तथा कान्हड़ा तथा एक ही राग के दो नाम हैं, इसमें संदेह नहीं किया जाना चाहिए चाहे अकबर के समय के संस्कृत ग्रंथकार दरबारी कान्हड़ा नाम का उल्लेख कहीं नहीं करते ।

'कान्हड़ा' राग के अनेक प्रकार अपने गुणी लोग मानते हैं। हमारे यहाँ

Scanned with OKEN Scanner

के गायक तथा वादक कान्हड़ा के १८ प्रकार मानते हैं, उनके नामों में कहीं-कहीं अन्तर भी दिखाई पड़ता है, परन्तु यह १८ की संख्या अधिकांश को मान्य दिखाई देती है। इनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) दरबारी (२) नायकी (३) हुसैनी (४) कौंसी (५) मुद्रिक (६) सूहा (७) सुघराई (८) अड़ाना (९) सहाना (१०) बागेश्री (११) गारा (१२) काफी (१३) जयजयवन्ती (१४) नाग ध्वनि (१५) टंकी (१६) कोलाहल (१७) मंगल (१८) श्याम कान्हड़ा। ये नाम 'गीतसूत्रधार' में कृष्णधन बनर्जी ने दिए हैं। स्व० पं० भातखण्डे जी कहते हैं कि इसके अतिरिक्त रामपुर के नवाब के मुँह से मैंने सोरटी कान्हड़ा तथ खमाजी कान्हड़ा भी सुने थे । इसके अतिरिक्त रामपुर के ताज खाँ के वंशज ने **गारा कान्हड़ा** भी गाया था। ग्वालियर के सरदार बलवन्त राव शिंदे द्वारा कान्हड़ा का एक प्रकार **रायसा कान्हड़ा** भी गाया जाता था । परन्तु आजकल प्रचार में केवल ८ या १० प्रकार ही प्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त बाकी प्रकारों को ढंग से गाने वाले अथवा ढंग से समझने वाले लोग १ प्रतिशत भी मुश्किल से ही मिलेंगे ।

कान्हड़ा का मिश्रण विशेषतः 'ग̱मरेस' तथा 'नि̱ ध̱नि̱प' अथवा 'नि̱ प ग̱ म' इत्यादि टुकड़ों से किया जाता है। उदाहरणार्थ काफी कान्हड़ा, खमाजी कान्हड़ा, जयजयवन्ती कान्हड़ा। इसके मुख्य भाग काफी अथवा कान्हड़ा को लेकर इन टुकड़ों को जोड़ दिया जाये तो काफी कान्हड़ा बन जायेगा।

पं० भावभट्ट द्वारा 'शुद्ध कर्णाट' को ही 'दरबारी कान्हड़ा' समझा गया है। कर्णाट शब्द का अपभ्रंश ही कानड़ा या कान्हड़ा है, ऐसा समझ कर हम चलें अर्थात् कान्हड़ा के स्वरूप 'कर्णाट' राग के स्वरूप को ही समझना चाहिए। कर्णाट गौड़ ऐसा भी एक नाम संस्कृत ग्रंथकार लिखते हैं। कुछ ग्रंथकार कर्णाट या कर्णाटी ये दोनों भी भिन्न प्रकार मानते हैं, परन्तु उनमें से कर्णाटी हमारी पद्धति में नहीं। पं० शार्ङ्गदेव ने अपने ग्रंथ 'सङ्गीतरत्नाकर' में '**कर्णाटबंगाल**' तथा '**कर्णाट गौड़**' ये राग '**अधुनासङ्गीत**' नाम से दिये हैं परन्तु अकेले कर्णाट नाम से नहीं। 'राग-तरंगिणी' में लोचन पंडित के समय में 'कर्णाट' राग खमाज ठाठ में लेते थे अर्थात् उसमें तीव्र गान्धार आता था, ऐसी मान्यता चली आ रही है। लोचन के ग्रंथ में लिखे एक श्लोक से यह पता चलता है कि कर्णाट या कर्णाटी ये दोनों नाम एक

Scanned with OKEN Scanner

ही राग के हैं। लोचन के कर्णाटी लक्षण से ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में कर्णाट राग में तीव्र गान्धार तथा तीव्र धैवत स्वरों का प्रयोग किया जाता था। परन्तु आजकल सभी गायक तथा वादक दरबारी कान्हड़ा में गांधार तथा धैवत का कोमल रूप प्रयोग करते हैं। "**हृदयकौतुककार**" कर्णाट अथवा कान्हड़ा राग के स्वर इस प्रकार हैं— ग म म ग रे सा नि़ सा रे सा रे सा ग रे स, सा सा सा सा रे सा नि़ सा सा सा रे सा नि ध प म म म प म प ध नि सा ध नि प म म ग रे सा । इसमें अधिकांश स्वर क्रम ऐसा ही रखकर इस स्वरूप में गांधार व धैवत कोमल कर दें तो हम दरबारी के बहुत निकट आ गए, ऐसा स्पष्ट दिखाई देगा। लोचन के कुछ रागों में तीव्र गांधार के स्थान पर कोमल गांधार लगा है। इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। परन्तु कानड़ा राग में कोमल धैवत किसी भी ग्रंथकार (संस्कृत) ने लेने को नहीं कहा और यदि कभी लिया भी गया तो उसको किसने लिया, संभवतः तानसेन ने उसे शामिल करके उसके नवीन स्वरूप को दरबारी नाम दिया होगा, परन्तु इसमें लिखित प्रमाण मिलना कठिन है। भावभट्ट के समय में अर्थात् शाहजहाँ बादशाह के समय में तो शुद्ध कानड़ा को दरबारी कानड़ा समझा जाने लगा था। उस समय के उत्तर के नामांकित ग्रंथकारों में लोचन, हृदय, अहोबल, श्रीनिवास, पुंडरीक, भावभट्ट तथा श्रीकण्ठ का नाम आता है। उनके ग्रंथों में दरबारी कानड़ा का उल्लेख है अथवा नहीं और यदि है तो उन्होंने उस राग के विषय में क्या कहा है यह देखना भी आवश्यक है। यह देखने पर पता चलता है कि भावभट्ट के अतिरिक्त 'दरबारी-कानड़ा' का उल्लेख किसी अन्य ने नहीं किया है। तब 'दरबारी' शब्द को छोड़कर मूल जो कानड़ा राग है उसके सम्बन्ध में ग्रंथकारों के मत देखने पर पता चलता है कुछ ग्रंथकारों ने कानड़ा कुछ ने कानड़ी तथा कुछ ने कर्णाट नाम का प्रयोग किया है। पुनः कुछ ने कर्णाट गौड़ नाम का प्रयोग भी किया है कर्णाट गौड़ एक प्रान्त का नाम है, उसी का अपभ्रंश 'कानड़ा' अथवा कन्नड़ है। लोचन पंडित ने कर्णाट को ठाठ मानकर उसमें पहला ही राग 'षाडवः कानरो रागो' ऐसा कहा है। इससे यह निश्चित हो गया कि कर्णाट तथा कानड़ा में सम्बन्ध है। पं० लोचन के अनुयायी **हृदयनारायण** ने अपने ग्रंथ हृदयकौतुकी में राग नाम कानड़ा न कहकर केवल कर्णाट कहा है। 'हृदयप्रकाश' में भी 'कर्णाट' ऐसा नाम उन्होंने दिया है, तब कानड़ा तथा कर्णाट अथवा कर्नाट एक ही राग के नाम हैं, यह भी सिद्ध होता है। पुन्डरीक बिट्ठल ने अपने ग्रंथ चन्द्रोदय में कर्णाट ठाठ नाम छोड़ कर **कर्णाटगौड़** स्वीकार किया है तथा उस ठाठ के जन्यरागों में प्रथम राग कर्णाट कहा है । इन्हीं पुन्डरीक विट्ठल ने पुनः '**रागमंजरी**' नामक ग्रंथ में ठाठ

Scanned with OKEN Scanner

नाम कर्णाट तथा राग नाम भी कर्णाट कहा है । परन्तु राग लक्षण में किंचित अंतर कर दिया है। सोमनाथ ने राग विबोध में ठाठ का नाम 'कर्णाट' इतना ही दिया है। इसमें कर्णाट के लक्षण ऐसे हैं जो कि पुन्डरीक विट्ठल के कर्णाट लक्षण से मिलते हैं। इन सारे तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि 'कानड़ा' 'कर्णाट' तथा 'कर्णाट गौड़' इन सबके स्वर समान ही हैं। चुतुर्दंडिप्रकाशिकाकार ने **कंनडगौड़** यह नाम स्वीकार करके उसमें कोमल गांधार सम्मिलित किया। दक्षिण का एक ग्रंथ 'रागलक्षण' है। इस ग्रंथ में 'कर्णाट गौड़' राग काफी ठाठ में कहा है तथा 'दरबार' नाम का भी एक स्वतंत्र राग इस ग्रंथ में पाया जाता है । **कंनडगौड** तथा **दरबार** इन दोनों रागों में ग एवं नि स्वर कोमल प्रयोग किए जाते हैं। राजा टैगोर ने **सङ्गीतसारसंग्रह** ग्रंथ में कर्णाटी को पंचम राग की रागिनी माना है। इसी प्रकार सङ्गीतनारायण, सङ्गीतचूड़ामणि आदि ग्रंथों में इस राग का उल्लेख तो मिलता है, परन्तु इसके लक्षण नहीं मिलते। पूरन कवि ने **'नादोदधि'** ग्रंथ में कानड़ा पंचाग के बारे में लिखते हुए कहा है कि इसके पाँच भाग हैं, पहले भाग में राग लक्षण, दूसरे भाग में कानड़ा की सरगम, तीसरे भाग में कानड़ा की वायनामा सरगम, चौथे में कानड़ा की स्तुति तथा पाँचवे में कानड़ा स्वरूप कहा है ।**'राधागोविन्दसङ्गीतसार'** ग्रन्थ में कानड़ा को मेघ राग का पुत्र बताया गया है।

दरबारी कानड़ा हमारे यहाँ का अति लोकप्रिय राग है । यह अनेक गायकों को आता है तथा श्रोतागण भी भली-भांति इससे परिचित हैं । विशेषतः यह कानड़ा प्रकार का 'आश्रयराग' माना जाता है। इसका समय मध्यरात्रि का मानते हैं। वादी ऋषभ तथा संवादी पंचम मानते हैं । ''आरोह में एकदम 'सा रे ग॒ म प' ऐसा जलद तान से नहीं होता तथापि आरोह में गांधार वर्ज्य नहीं समझना चाहिए। गांधार तथा धैवत इन स्वरों पर आन्दोलन हैं।'' कान्हड़ा के प्रकार ग्रंथ में जयसुख लाल शाह पृ०२ पर लिखते हैं-

कानड़ा की उत्पत्ति

कानड़ा की उत्पत्ति कब और कैसे हुई इसका कोई निश्चित उल्लेख या आधार नहीं मिलता है। कोई कन्नड़ अथवा कानड़ी से कानड़ा नाम के प्रचलन की बात मानते हैं।

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं कानड़ा एक समय कर्णाट नाम से पहचाना

जाता था, पर इसका मूल स्वरूप उपलब्ध नहीं है। फिर भी मध्यकालीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि कर्णाट का थाट अपने खमाज थाट जैसे होने से एक समय कर्णाट (कानड़ा) के प्रकार खमाज थाट में अर्थात निषाद कोमल और अन्य स्वर शुद्ध से गाये जाते थे। तत्पश्चात् इस में परिवर्तन हुआ और ग, नि, कोमल एवं ग, ध, नि, कोमल का प्रयोग कर यह काफी और आसावरी थाट के अंतर्गत कानड़ा (कर्णाट का अपभ्रंश) नाम से आधुनिक रूप में प्रचार में आये। कोई इसे कान्हरा अथवा कान्हड़ा भी कहते हैं।

शुद्ध कानड़ा

कई गुणीजनों का मत है कि शुद्ध कानड़ा का स्वरूप सारंग जैसा था। यदि यह कथन सत्य हो तो भी इसका कोई निश्चित आधार नहीं मिलता। प्रचलित मान्यता के अनुसार दरबारी कानड़ा को ही, जिसे तानसेन प्रचार में लाये, शुद्ध कानड़ा कहा जाता है। इसका समर्थन **'दरबारी सो सुध कहावे'** सूत्र से और कुछ ग्रन्थों में दरबारी कानड़ा का केवल कानड़ा के रूप में उल्लेख से भी होता है ।

कानड़ा के मुख्य अङ्ग

'प नि॒प, मप, गग म, म रे, सा' इस प्रकार के स्वर, जो कानड़ा सूचक है, बहुधा प्रत्येक कानड़ा प्रकार में दिखाई देते हैं जिससे कानड़ा प्रकार का खयाल तुरन्त ही आ जाता है ।

ग्रन्थों में पाये जाने वाले कानड़ा के प्रकार

(विस्तार भय से केवल राग **चंद्रिकासार** और पं० भावभट्ट के **सङ्गीतानूपांकुश** ग्रन्थ के श्लोक देकर अन्य ग्रन्थों के श्लोकों का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है।)

राग चंद्रिकासार

१. देसाख सब काफी के सुरन में ध ग को निर्बल राख।
परि वादी संवादी ते सारंग छव देसाख ॥ ३६॥

२. सूहा कोमल ग म नी सीख रिखव, धैवत जामें नाहीं।
सम संवादी वादि तें सूहा राग कहाई ॥ ३७ ॥

Scanned with OKEN Scanner

३. सुघराई — तीवर रि ध कोमल ग म नी चढ़ते ध नहीं लगाई।
स प संवादी वादि ते गुणी गावत सुघराई ॥ ३८॥

४. कानड़ा — मृदु ग म ध नि तीखो रिखव अवरोहत ध न लाग।
रि प वादी संवादी ते कहत कान्हरा राग ॥ १०१ ॥

५. नायकी — ग म नी सुर कोमल जहाँ धैवत सुर बरजोई।
स म संवादी वादी ते कहो गायकी सोई॥ १०२॥

६. हुसेनी — मध्यम सुर उद्ग्राह करि वादि खरज कर तार।
कहत हुसेनी कान्हरा कोमल म नि गंधार॥ १०३॥

७. कौंसी — संपूरन कोमल नि ग म मध्यम वादी जान।
मालकंस मिलि कान्हरा कौंसी रूप बखान ॥ १०४॥
(यहां पर कोमल ध नि ग म होना चाहिए)

८. अड़ाणा — तीवर रि ध कोमल नि ग म, ध ग दुर्बल दरसाही।
प स वादी संवादी तें होत अड़ाना ताही ॥ १०५ ॥
(शुद्ध धैवत वाला अड़ाना का उल्लेख है)

९. सहाना — रि ध तीखे कोमल नि ग म चढ़त नहीं ध लगाई।
प स वादी संवादी तें होत सहाना भाई ॥ १०६॥

१०. बागेसरी — तीवर रि ध कोमल ग म नि मध्यम वादि बखानी।
खरज जहाँ संवादी है बागेसरी लखानी ॥ १०७ ॥

११. बहार — रि ध तीवर कोमल नि ग म उतरत धैवत टार।
स म संवादी वादी है समजो राग बहार ॥ १०८ ॥

अभिनव राग मंजरी
(काफी मेल जन्य रागाः)

१. वागीश्वरी (बागेश्री)— सा, नि॒, ध़ नि॒ सा, म, ग॒, म ध नि॒ ध, म ग॒ रे सा। मध्यम अंश। आरोहे पंचम वर्ज्यै। रात्रिगेय । (१५५)

२. सहाना नि॒ ध प, म प सां, नि॒ प म प ग॒, म, प ग॒, म, रे सा पंचम अंश। रात्रिगेय। (१५६)

Scanned with OKEN Scanner

३. सूहा: नि सा, ग म, प नि म प, सां, नि प, म प, ग म, प ग म, रे सा। मध्यम अंश । दिन का द्वितीय प्रहर। (१५७)

सुघराई : ध प, म रे, नि़ सा रे, ग, म, रे सा, नि प, म प, ग म, रे सा। पंचम अंश (१५९)

५. नायकी नि प, म प, सां नि प, म प, ग, म प, ग म, रे सा ध हीन। मध्यम अंश मध्यरात्रि (१६०)

द्वितीय नायकी: सा, रे प, ग, म, रे सा, म, प, ध, नि प, सां, नि प, म प, ग म, रे सा। (आसावरी मेल जन्य कोमल ध प्रकार) (१९१)

(क्वाचित् सूहा, सुघराई और नायकी में कोमल ध का प्रयोग) (१६१)

६. देवसाग नि सा, म रे, प म, नि प, सां, नि प, म प, ग म, रेसा,पंचम अंश रात्रिगेय (१६२)

७. बहार नि सा ग म, प ग म, ध, नि सां, नि प म प, ग म, रेसा। मध्यम अंश । रात्रिगेय (१६५)

आसावरी मेल जन्य रागा:

८. कौशिक कर्णाट- नि सा म, ग म, प ग,म ग रे सा, म, ध, नि सां, नि ध, म प नि ध म, प ग, म ग रे सा। मध्यम अंश । रात्रि गेय (१८८)

९. दरबारी कानड़ा ग रे, सा, नि़ सा, रे, म प, ध, नि सां, नि प, म प, ग, रे सा। ऋषभ अंश। मध्य रात्रि आंदोलित गांधार। (१८९)

१०. अड़ाणा म प, ध सां, ध, नि प, म प ग म, रे सा । तार षड्ज अंश। रात्रि तृतीय प्रहार। (१९०)

सङ्गीत सुधाकर (पं० अतातुलसी कृत)

देशी च देवगांधारः खटो देशख्य एव च॥ २१॥
सूहा सुआइका मध्यमादिः सारंग पुत्र च ॥ २२॥
कर्णाटको नायकी च हुसेनी कौशिखे च॥
अड्डुणकः सहाना च बागीश्वरी बहार कौ॥ ३२ ॥

१. देशाख्य संपूर्ण, षड्ज अंश, न्यास-संवादी मध्यम, ध, ग, दुर्बल, मृदु नि, ग, म, ध तीव्र ऋषभ, कर्णाट-मेघ मिश्र, आंदोलित गांधार, क्वचित् धैवत वर्ज्य॥ (आसावरी वाद में माना है।) ॥१७०-७२॥

२. सूहा कर्णाट मेल, षड्ज अंश, षाड्व, संवादी-न्यास मध्यम, धैवत वर्जित, नि, ग, म कोमल ऋषभ तीव्र, नि प सङ्गति, मेघ कर्णाट मिश्रण मध्याह्न ॥ १७३-१७६॥

३. सुघराई षड्ज ग्रह- अंश, प संवादी, आरोहे ध वर्ज्य, षाड्व-सम्पूर्ण, सारंग अंग, नि, ग, म कोमल, ऋषभ तीव्र, मध्याह्न ॥ १७७-१७९॥

४. कर्णाट ऋषभ अंश, पंचम संवादी, अवरोहे ध हीन, संपूर्ण षाड्व, नि प सङ्गति, आंदोलित गांधार, विलंबित लय, मन्द्र-मध्य, रात्रि गेय, कर्णाट का अपभ्रंश दरबारी कानड़ा नाम से प्रसिद्ध, ग, म, ध, नि कोमल, ऋषभ तीव्र। ॥ ४३२-३६॥

५. नायकी कर्णाट भेद, मध्यम अंश, षड्ज संवादी, धैवत वर्ज्य, निप, पग, सङ्गति, कर्णाट अंग, षाड्व, रात्रि गेय, नि, ग, म, कोमल, तीव्र ऋषभ॥ ४३७-३९॥

६. हुसेनी कर्णाट भेद, तार षड्ज अंश, मध्यम ग्रह, पंचम संवादी, तार-मध्य प्रस्तार, कर्णाट अंग, संपूर्ण, रात्रि गेय, ग, म, ध नि कोमल ऋषभ तीव्र। आसावरी थाट माना हैं॥ ४४०-४३॥

७. अड्डाणा कर्णाट भेद, तार षड्ज अंश, पंचम संवादी, मध्यम ग्रह, संपूर्ण

Scanned with OKEN Scanner

तार-मध्य प्रस्तार, ध, ग, दुर्बल, सारंग अंग, प ग, सङ्गति, शुद्ध और कोमल ध इस तरह के दोनों प्रकारों में ध दुर्बल, ग, स नि कोमल ऋषभ तीव्र रात्रि तृतीय प्रहर॥ ।४४४-५०॥

८. **सहाना** कर्णाट भेद, पंचम अंश, षड्ज संवादी, आरोहे ध वर्ज्य, षड्व-संपूर्ण, रात्रि गेय, नि, ग, म कोमल रि, ध तीव्र॥ ४५१-५३॥

९. **कौंशी** कर्णाट भेद, मध्यम अंश, षड्ज संवादी, संपूर्ण, म, ध, सङ्गति, कर्णाट-मालकंस, मिश्रण, नि, ग म, कोमल, रि, ध, तीव्र रात्रि गेय। (यहां पर मालकंस मिश्र और धैवत तीव्र बताया है वहां कोमल, रि, ध, तीव्र, रात्रि गेय यहां पर मालकंस मिश्र और धैवत तीव्र बताया है। वहाँ कोमल धैवत होना चाहिए।) ॥ ४४५-४४६॥

१०. **वागीश्वरी** मध्यम अंश, षड्ज संवादी, आरोहे प० वर्ज्य, षाड़व-संपूर्ण, अवरोहे प अल्प, क्वचित् दोनों गांधार, तीव्र ग आरोहे, कोमल ग, अवरोहे नि, ग , म कोमल, री, ध तीव्र, रात्रि गेय ॥ ४५७-६०॥

११. **बहार-** षड्ज न्यास-ग्रह- अंश, मध्यम संवादी, षाड्व आरोहे रे वर्ज्य, अवरोहे ध वर्ज्य, मध, नि प सङ्गति, नि, ग, म कोमल री, ध तीव्र, बसंत में कभी भी गाये जाते हैं। ।४६१-६४॥

पं० भातखंडेजी ने हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति भाग चौथा (मराठी) के क़ानड़ा प्रकार के बारे में अन्य ग्रंथों का उल्लेख करके जो आधार दिया है वह निम्न प्रकार से है-

पं० भावभट्ट द्वारा सङ्गीतानुपांकुश ग्रन्थ में दिए गए कर्णाट प्रकार-

शुद्ध कर्णाट रागश्च कर्णाटो नायकी ततः।
वागीश्वर्यादि कर्णाटः कर्णाटोऽड्डाण पूर्वकः॥
ततः सहाना कर्णाटः पूर्यादिकस्ततः परम्।
ततो मुंद्रिक कर्णाटो गारा कर्णाटकस्ततः परम।
ततो मुंद्रिक कर्णाटो गारा कर्णाटकस्तथा।

Scanned with OKEN Scanner

हुसेनी पूर्व कर्णाटः खंबावत्यादिक स्ततः।
सोरटी पूर्व कर्णाटः काफी कर्णाटकस्तथा॥
ततः कर्णाट गौड़ः स्यात् कर्णटीति चतुर्दश।

इस तरह चौदह प्रकार बताए गए हैं। हिं० सं० प० भाग-४ मराठी पृष्ठ ७८२) (श्रीमल्लक्ष्यसङ्गीतम्) में यह श्लोक कुछ पाठ फिर से पृष्ठ १२३ पर दिए हैं।

श्रीमल्लक्ष्यसङ्गीतम् में आसावरी मेल में (१) दरबारी (२) अड़ाना (३) कौशिक (पृष्ठ ५८,९५,९६) और काफी मेल में (१) बहार (२) बागेश्वरी (३) अड़ाना (४) हुसैनी (५) कौशिक (६) सूहा (७) सहाना (८) देशाख्य (९) नायकी (१०) सुघराई (पृष्ठ ५२, १२१-२३-२४-२५-२६-२७-२८) इस तरह कानड़ा के प्रकारों के उल्लेख और वर्णन श्लोक के रूपों में दिए हैं।

राजा सुरेन्द्र मोहन टैगोर ने सङ्गीतसार ग्रन्थ में निम्नलिखित १८ कानड़ा के प्रकार बतलाए हैं-

(१) दरबारी (२) नायकी (३) कौशिकी (४) मुद्रा (५) बागेश्वरी (६) नट (७) काफी (८७) कोलाहल (९) मंगल (१०) श्याम (११) टंक (१२) नागध्वनि। इस प्रकार बारह पूर्वीय एवं अभ्य आधुनिक (१३) अड़ाना (१४) सहाना (१५) सोहना (१६) सुघराई (१७) हुसैनी (१८) मियां का कानड़ा। (देखिये हिं० सं० प० मराठी भाग ४, पृष्ठ २५९)

गीतसूत्रसार में श्री कृष्णाधन बनर्जी ने जो १८ प्रकार के कानड़ा बताए हैं -वे (१) दरबारी (२) नायकी (३) हुसैनी (४) कौंसी (५) मुद्रिक (६) सूहा (७) सुघराई (८) अड़ाना (९) साहना (१०) बागेश्री (११) गारा (१२) काफी (१३) जयजयवंती (१४) नागध्वनी (१५) टंकी (१६) कोलाहल (१७) मंगल (१८) श्याम (हिं. सं. प. मराठी भाग ४ पृष्ठ ७७६)

(मंगल कानड़ा को ही मुद्रिक कानड़ा कहते हैं ऐसा उल्लेख श्री वी. सुब्बराव ने किया है, किन्तु यहीं पर मुद्रिक और मंगल ऐसे दो अलग प्रकार बताए गए हैं। इसलिए इस कथन को समर्थन नहीं मिलता है।)

स्वर्गीय पं० बझे बुवा ने सङ्गीत कला प्रकाश भाग १ में बंगाल का कानढ़ा के बहुत से प्रकार प्रचार में है ऐसा लिख कर निम्नलिखित प्रकारों का उल्लेख किया है।

(१) राजशाही (२) नौहारी (३) जसोदी (४) सोहनी (५) मंगल।

राग दरबारी में शाह सदारङ्ग को औलादों ने बीन और सुरसिंगार पर रागों के जौहर दिखाए हैं। इन लोगों ने खुद ख़याल नहीं गाया, परन्तु अपने घर से बाहर वालों को बताया । खुद क्यों न गाया? इसका जवाब यही है कि वे रागों का 'धरम' रखना चाहते थे। उन्हें सुनने वालों को सुलाने या रुलाने का शौक था। फड़काने अथवा चक्कर में डालने के चक्कर में वह नहीं पड़ते थे। वे 'आह' के मारे हुए थे तथा 'वाह' से दूर थे। दरबारी एक आलाप का राग है तथा दौड़ भाग इसके मिजाज़ के मुताबिक नहीं। यह राग-वियोग का है। वियोग भी ऐसे इन्सान का जो चिल्ला नहीं सकता, जिसका दर्द चुपके-चुपके रिसता है। दरबारी में 'स रे गऽ ऽ' का जवाब 'म प ध ऽ ऽ' है यानी 'सा' का जवाब 'म' है। 'धऽनिप' का जवाब 'ग ऽम रे' है । यानी ऋषभ तथा पंचम आपस में सवाल जवाब हैं। लिहाजा दरबारी गाते वक्त तानपूरे की बाई ज़ानिब का तार मध्यम में मिलाया जाना चाहिए, क्योंकि दरबारी में 'स' का जवाब 'म' है। समझदार लोग यह राज अच्छी तरह जानते हैं कि दरबारी के गांधार व धैवत अति कोमल है। गांधार के इस झुकाव का ऋषभ तथा धैवत के झुकाव का असर पंचम पर भी पड़ता है। तानपूरे पर पंचम की जगह मध्यम मिलाकर दरबारी गाये जाने पर पंचम भी हवा भर उतरता है। गांधार व धैवत इस राग में झूलती है तथा यही झूलना उसकी जान है ।[१] इस राग में ग, ध, नि स्वर कोमल लगते हैं तथा अन्य स्वर शुद्ध हैं। 'आरोह में गांधार दुर्बल तथा अवरोह में धैवत वर्ज्य तथा गांधार वक्र मानकर इसकी जाति संपूर्ण षाड्व मानी जाती है । लेकिन प्रचार में कई बार स रे ग, म प, इस तरह आरोह में सरल गांधार तथा अवरोह में 'सां ध नि प' ' इस तरह वक्र धैवत तथा ग म रे स तथा रे, ग स, इस तरह वक्र तथा सरल गान्धार का प्रयोग किया जाता है। इसलिए इसकी जाति सम्पूर्ण मानना अधिक उचित होगा।[२] **सूहा** तथा **सुघराई** भी कान्हड़ा के बहुत प्रसिद्ध प्रकार हैं तथा हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने भी इनका उल्लेख किया। सूहा राग काफी ठाठ का होने के कारण इसमें गान्धार तथा निषाद कोमल ही रहते हैं। इस राग में धैवत बिल्कुल वर्जित है, वादी स्वर मध्यम

Scanned with OKEN Scanner

तथा सम्वादी षड्ज है। यह राग दिन के द्वितीय प्रहार के अंतिम समय में प्राय: गाया बजाया जाता है। सुघराई का गायन समय भी यही है। इन रागों से पूर्व भैरवी, जौनपुरी, गांधारी, असावरी, देशी आदि राग गाये जाते हैं। सूहा राग में 'ग म रे स' लिया जाता है, क्योंकि यह कान्हड़ा का प्रकार है। उत्तरांग में धैवत वर्जित होने के कारण 'नि प' की सङ्गति ली जाती है । 'नि प' की सङ्गति सारंग में भी आती है, क्योंकि उसमें भी धैवत वर्जित है। परन्तु 'नि प' कान्हड़ा में भी आता है। लोचन पंडित के अनुसार 'शुद्ध सुहव' तथा 'देशी सुहव' इन दो नामों का उल्लेख किया गया है। ये दोनों राग उन्होंने 'मेघ संस्थान' में लिए हैं। हृदय कौतुक में हृदय नारायण में भी इसका उल्लेख किया है। पं० लोचन के अनुयायी ही थे। परन्तु इन महानुभावों ने इनमें आधुनिक शुद्ध गान्धार का प्रयोग किया है। इस स्वरूप में यदि गान्धार कोमल कर दिया जाय, तो यह आज के प्रचलित स्वरूपों के निकट आ जायेगा। कैप्टन विलर्ड ने भी इस राग का उल्लेख अपने ग्रंथ में 'सूहू' नाम से दिया है। परन्तु राग के स्वर नहीं दिये हैं। 'राधागोविन्द सङ्गीतसार' में सूहा नाम का उल्लेख नहीं है, परन्तु 'सुहवी' नाम की 'नट राग की रागिनी' बताई है। कुछ विद्वानों द्वारा सूहा में मेघ तथा दरबारी का योग है तथा सुघराई में बागेश्री तथा सुघराई में बागेश्री तथा मधमाद का योग है। 'हृदयप्रकाश' ग्रन्थ में हृदय नारायण देव द्वारा 'शुद्ध सुहव' अथवा 'देशी सुहव' नाम का उल्लेख न करके केवल 'सुहव' नाम का ही प्रयोग किया गया है। पुंडरीक विट्ठल ने भी 'सुहवी' नाम के राग का उल्लेख किया है। परन्तु वह केदार मेल में कहा गया है। राजा सुरेन्द्र मोहन टैगोर ने भी अपने ग्रंथ 'सङ्गीत-सार' में सूहा राग का वर्णन किया है तथा उसमें कोमल धैवत स्वर का स्पष्ट प्रयोग किया है। **'सुघराई'** राग का वर्णन भी संस्कृत ग्रंथों में प्राप्त होता है तथा उसका दूसरा नाम 'कुलाई' अथवा 'कुडाई' है।[3] आचार्य्य बृहस्पति द्वारा भी राग सूहा को दरबारी तथा मेघ का मिश्रण माना गया है। जो लोग बन्दिशों के आधार पर राग गाते हैं वह राग की बढ़त नहीं कर सकते। अत: पहिले राग ही सीखना चाहिए। ऋषभ पर विश्रांति 'मेघ' तथा 'दरबारी' दोनों रागों में है। 'नि, म, प सं ऽ नि ऽप' मेघ है, इसके पश्चात् म, प, गऽ मऽ रेऽ सा, नि नि रे ऽ स दरबारी है। 'रे रे नि ऽ स' मेघ है, इसका जवाब ' प प ऽ ग म' सूहे में है। रे ऽ स ऽ रे नि का जवाब प ऽ म प ग ऽ सूहे में है। निऽनिऽरेऽसऽ दरबारी है, तथा रे ऽ नि ऽ ऽ नि ऽ स ऽ मेघ है। कुछ लोग दरबारी के अंग को स्पष्ट करने के लिए ' सं ऽ ध ऽ नि ऽ प' का प्रयोग करके सूहे में करते हैं जिसका जवाब ' प ऽ ग ऽ म रे' सूहे में है। सूहे

Scanned with OKEN Scanner

में मध्यम पर विश्रांति है। अतः तानपूरे की प्रथम तंत्री को मध्यम में मिलाना चाहिए, सूहे के ऋषभ, गांधार व निषाद, भीमपलासी के ऋषभ, गांधार तथा निषाद की अपेक्षा एक प्रमाण श्रुति उतरे हुए हैं, तानपूरे पर मध्यम ध्वनित होने से यह स्वर अपने सही स्थान पर लगेंगे ऐसा भावभट्ट ने अपने ग्रंथ 'अनूपविलास' में लिखा है।[४] उन्होंने अपने 'अनूपसङ्गीतरत्नाकर' में भी ऐसा ही कहा है। सुघराई भी काफी ठाठ के जन्य रागों में से एक है इसके आरोह में धैवत स्वर का प्रयोग नहीं होता, परन्तु अवरोह में कहीं-कहीं शुद्ध धैवत का प्रयोग कर लिया जाता है, इसलिए इस राग में भी 'नि प' स्वरों की सङ्गति होती है। 'ग म रे स' यह कान्हड़ा अंग सूहा के अनुसार ही है। 'धैवत का प्रयोग इस राग में वक्र रूप में ही किया जाता है। कभी-कभी इसमें ध नि प', इस प्रकार कोमल धैवत का प्रयोग कर लिया जाता है।[५] पं० लोचन ने 'रागतरंगिणी' में सुघराई राग को कर्णाट संस्थान में रखा है अर्थात खमाज ठाठ में। कान्हड़ा का एक प्रकार **नायकी कान्हड़ा** भी काफी प्रचार में है। सुरेन्द्र मोहन टैगोर का यह मत है कि यह राग गोपाल नायक द्वारा प्रचार में लाया गया । यह उनका प्रिय राग था यह राग भी काफी ठाठ से ही उत्पन्न होता है। 'भातखण्डे जी के अनुसार' वादी मध्यम तथा सम्वादी षड्ज है। गायन समय रात्रि का तीसरा प्रहर माना जाता है । नायकी में 'रे प' की सङ्गति बारम्बार उचित रीति से दिखाई जाती है। जबकि सूहा में यह सङ्गति टाल दी जाती है। उत्तर भारतीय आधार ग्रंथों में कहीं भी इसका वर्णन नहीं मिलता। 'नगमाते आसफी' में मुहम्मद रजा कहते हैं कि सोमेश्वर के मतानुसार 'नायकी' नटनारायण की छह रागनियों में से एक है । लोचन, हृदयनारायण, अहोबल, श्री निवास, पुण्डरीक विट्ठल, आचार्य्य शार्ङ्गदेव, दामोदर पंडित आदि किसी ग्रंथकार ने भी 'नायकी' का वर्णन नहीं किया है। दक्षिण के ग्रंथकारों में से रामामात्य, सोमनाथ, तथा व्यंकटमखी ने भी नायकी के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है। केवल 'रागलक्षणम्' के ग्रंथकार ने इस राग का उल्लेख किया है। आचार्य्य बृहस्पति की दृष्टि में यह एक निहायत ही नाजुक राग है। खासतौर से इसकी फिरत में इसे सूहा से बचाना समझदारी का काम है। जिन लोगों की राय में यह राग गौड़ तथा बड़हंस का मिश्रण है, वे लोग इसमें दोनों निषादों का प्रयोग करते हैं। लेकिन जो लोग इसे गौड़ तथा मेघ का मिश्रण मानते हैं, उनकी राय में इस राग में कोमल निषाद का ही प्रयोग होता है। नायकी में 'स रे नि़ स' का जवाब 'म प ग म' है, 'नि स रे प' का जवाब 'ग म प सं' है तथा नि़ स रे प म प का जवाब 'ग म प स नि सं' है। 'रे रें सं रें गं सं' का जवाब ' प प म प नि म' है। जो इस राज से वाकिफ

Scanned with OKEN Scanner

नहीं, उनकी नज़र में नायकी की फिरत नहीं चमक सकती। 'रे नि स रे' और प ग म प सवाल जवाब है। सीधी सीधी बात यह है कि 'स' तथा म इस राग की बुनियाद है। स्व० भोलानाथ भट्ट जी के शिष्य राम कृष्ण व्यास ने अपनी पुस्तक 'राग प्रवीण' के प्रथम भाग के पृ० १६९ पर नायकी कान्हड़ा का वर्णन किया है कि यह दो रागों के मिश्रण से बना है, पूर्वांग में सूहा जैसे ग म प नी प, सां नि प, तथा उत्तरांग में सारंग 'म प नी प नी सां', इन दोनों रागों के मेल से नायकी कान्हड़ा बना है। यह भी कहा जा सकता है कि यह मल्लार तथा कान्हड़ा का मेल है। इसमें ग, नि कोमल तथा अन्य स्वर शुद्ध हैं। धैवत वर्जित होने से इसकी जाति षाड़व है।पूर्वांग में सूहा तथा उत्तरांग में सारंग के संयोग से यह राग बना है। कई मत से यह दरबारी अंग से गाया जाता है। आरोह में 'रे प' संगति तथा बीच बीच में 'स रे ग म रे स' तथा 'स म, म प, नि प, सां, नि प, ग म रे स,' बार-बार दिखाई देता है। अवरोह में गांधार वक्र है। इसका कोमल धैवत वाला प्रकार जिसके मध्य में 'सां ध नि प' अथवा 'नि ध नि प' इस प्रकार 'ध' का अल्प प्रयोग सुनने में आता है। इसी प्रकार कभी कभी शुद्ध धैवत का प्रयोग भी सुनने में आता है।[६] यह एक उत्तरांग प्रधान राग है। आगरा घराने में एक खास किस्म का नायकी गाया जाता है जिसमें कभी कभी शुद्ध निषाद का प्रयोग भी किया जाता है। इस घराने में इसका वादी स्वर पंचम तथा संवादी स्वर षड्ज माना जाता है। राग अभोगी या अभोगी कान्हड़ा भी कान्हड़ा के प्रचलित प्रकारों में से एक है। स्व० भातखण्डे जी भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र के किसी भी भाग में इस राग का वर्णन नहीं किया है। परन्तु क्रमिक पुस्तक मालिका के छठे भाग के पृष्ठ ३३१ पर राग अभोगी का वर्णन किया है। यहां पर उन्होंने अभोगी का वर्णन किया है। यहां पर उन्होंने अभोगी के बारे में 'राग लक्षण ग्रंथ से एक श्लोक उद्धृत किया है जो इस प्रकार है-

अधिकारि खरहरप्रियमेल्लात् सुनामकः।
आभोगी राग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहेऽप्यवरोहे च पनिवर्ज तथौडुवम्। 'राग लक्षणे'

यह काफी थाट से उत्पन्न हुआ कर्नाट अर्थात् दक्षिण पद्धति का एक राग है। काफी समय से यह उत्तर भारतीय सङ्गीत में भी प्रचलित हो गया है। इस राग की जाति औडुव है। पंचम तथा निषाद स्वर इस राग में पूर्णतः वर्जित हैं।

Scanned with OKEN Scanner

वादी स्वर मध्यम सम्वादी षड्ज तथा गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इस राग-गान्धार कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। यह राग दक्षिण पद्धति का राग अभोगी तथा उत्तरी पद्धति के कान्हड़ा के मेल से बना है। यह भी कहा जा सकता है कि दुर्गा के आरोह तथा अवरोह में पंचम वर्जित करने पर तथा कोमल गांधार (आंदोलित) के प्रयोग से यह राग बना है। इस राग में दुर्गा का आभास आता है । कोमल गांधार का प्रयोग पूर्वांग में दुर्गा को अलग करता है। पूर्वांग में काफी तथा बागेश्री की छाया आती है, परन्तु मध्यम के साथ आंदोलित गांधार एवं 'ग म रे स' स्वरों का प्रयोग इस छाया को दूर कर देता है। कुछ विद्वान आभोगी कान्हड़ा तथा आभोगी को एक ही राग भी मानते हैं। परन्तु यह भिन्न भिन्न राग हैं। फिर भी यह राग काफी मिलते जुलते हैं। इनमें वादी सम्वादी स्वरों का अंतर है। आभोगी में षड्ज वादी तथा मध्यम सम्वादी है जबकि अभोगी कान्हड़ा में इसके विपरीत है। कर्नाटकी आभोगी में 'म ग रे स' तथा अभोगी कान्हड़ा में 'ग म रे स' का प्रयोग होता है। इस राग में गांधार का प्रयोग बहुत ही कुशलता से किया जाता है। 'ग म ध सं' में गांधार बागेश्री अंग की तरह तथा 'ग म रे स' में गांधार को कान्हड़ा अंग की तरह लगाया जाता है। आचार्य्य बृहस्पति का कथन है कि 'पांच सुरों वाले रागों में जो दो सुर वर्जित होते हैं वह आपस में एक दूसरे के सम्वादी होते हैं, लेकिन अभोगी में पंचम तथा निषाद नहीं हैं। लिहाजा इस राग का गांधार अकेला है। उसका सम्वादी इस राग में नहीं है। जो दोनों सुर वर्जित हैं वह उत्तरांग के हैं अर्थात् इसका पूर्वांग सम्पूर्ण है। इस राग का गांधार झूलता रहता है तथा ऐसा लगता है कि अपने साथी की तलाश में भटक रहा हो। कुछ लोगों की राय में 'गगमरेस'' इसमें कान्हड़े की खुशबू देते हैं और कुछ लोग 'धगमगरेस' को इस राग में जायज मानते हैं । जो लोग बागेश्री का कान्हड़े की ही किस्म मानते हैं, उनकी राय में 'ध ग म ग रे स' भी कान्हड़े की ही एक तान है ।

कान्हड़ा का ही एक प्रचलित प्रकार कौंसी कान्हड़ा भी है। परन्तु इस राग के बारे में भी काफी मतभेद हैं। कुछ विद्वान कौंसी तथा मालकौंस को एक ही राग मानते हैं तथा कुछ अलग-अलग राग मानते हैं। ग्रंथों में इसका नाम 'कौंसी' नाम न होकर 'कौशिक' दिखाई देता है। आधुनिक मालकौंस को ग्रंथकार 'मालवकौशिक' अथवा 'मालकौंस' कहते हैं। 'कौशिक कान्हड़ा' एक कान्हड़ा का प्रकार है।[८] 'नादविनोदकार' ने इस राग का वर्णन अपने ग्रंथ में किया है। लोचन पंडित ने

Scanned with OKEN Scanner

कौशिक राग को केदार मेल में कहा है तथा मालव कौशिक को उन्होंने कर्णाट ठाठ में कहा है। 'हृदय प्रकाश' में कौशिक राग का वर्णन बिल्कुल नहीं है। अहोबल ने 'सङ्गीतपारिजात' में भी उसका वर्णन नहीं किया है। पुंडरीक विट्ठल के तीनों ग्रंथों में इसका विवरण नहीं है। पं० भावभट्ट के किसी भी ग्रंथ में इसका विवरण नहीं है। स्वरमेलकलानिधि, राग विबोध, चतुर्दण्डिप्रकाशिका, सङ्गीतसारामृत, तथा राग लक्षण इत्यादि दक्षिण ग्रंथों में भी इसका विवरण नहीं मिलता। केवल टैगोर साहब के सङ्गीतसार संग्रह ग्रंथ में एक 'कौशिक' नाम की रागिनी का वर्णन मिलता है।[१] इस राग का वादी स्वर मध्यम सम्वादी षड्ज तथा गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर माना गया है। कुछ विद्वानों द्वारा आरोह में रे प दुर्बल तथा कुछ वर्जित करते हैं। वैसे प्रचार में रे प वर्जित वाला ही प्रकार है। इस राग का न्यास स्वर मध्यम तथा षड्ज है तथा गांधार, धैवत तथा निषाद स्वर कोमल लगाये जाते हैं। मुख्य अंग नी स, ग म ध म प, ग म ग रे सा, है। यह दो अंगों से गाया जाता है। कुछ विद्वान इसे मालकंस अंग से तथा कुछ बागेश्री अंग से गाते हैं। मालकंस अंग से गाया जाने वाला आसावरी ठाठ से तथा बागेश्री अंग से गाने वाले काफी ठाठ से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। परन्तु प्रचार में गाया जाने वाला कौंसी कान्हड़ा मालकंस अंग से ही गाया बजाया जाता है। यह राग मालकंस तथा कान्हड़ा के मिश्रण से बना है। इस राग के आरोह में मालकंस तथा अवरोह में कान्हड़ा चमकता रहता है । इसका गांधार कान्हड़ा की तरह आंदोलित होता है। राग के उत्तरांग में जब मालकंस प्रबल होने लगता है तो पंचम लगाकर अथवा कान्हड़ा अंग लगाकर मालकंस को अलग कर दिया जाता है। तार षड्ज इस राग में खूब चमकता है। इसका आलाप तीनों सप्तकों में होता है। इसकी प्रकृति गम्भीर है ।

स्व० आचार्य्य बृहस्पति का कथन भी विचारणीय है- 'वागेश्री अंग का कौंसी कान्हड़ा बहुत ही बेतुकी बात है। उनका कथन है कि बागेश्री तथा कान्हड़ा के मिश्रण से तो 'वागेश्री कान्हड़ा'' का निर्माण होना चाहिए अर्थात् 'कौंसी कान्हड़ा' में तो 'मालकंस' तथा 'दरबारी कान्हड़ा' का ही मिश्रण है। षड्ज का वादी मध्यम कौंसी कान्हडे में अपन्यास स्वर है, अतः उत्तरांग के कान्हड़े में अपन्यास स्वर है, अतः उत्तरांग के अवरोह में दरबारी की गंध दब जाती है । परन्तु पूर्वांग के अवरोह में ' प ऽ म म प ऽ म प ग ऽ ग ऽ म रे स ऽ' दरबारी का अंग स्पष्ट कर देते हैं, आरोह में मालकंस है। कौंसी कान्हड़ा गाते बजाते समय तानपूरे की बायीं तंत्री को मध्यम में मिलाया जाना चाहिए। तानपूरे पर स्थापित मध्यम स्वर

Scanned with OKEN Scanner

ही इस राग के साथ न्याय करेगा। 'षड्ज मध्यम' तथा 'षड्ज-निषाद' की सङ्गति इस राग का प्राण है। इस राग के 'षड्ज-मध्यम' एवं 'मध्यमनिषाद', निषाद गांधार, और गांधार धैवत में सदृश सम्बन्ध है। तानपूरे पर मध्यम स्थापित होने से इस स्वरों का ठीक ठीक स्थान पर स्वतः ही प्रयोग होता है। इस राग में आनन्द मग्न होकर इस राग की चाल के अनुसार जब पंचम पर रुका जायेगा, तब वह पंचम मध्यम स्वर की और तनिक झुका हुआ प्रतीत होगा। पंचम के इस केशाग्र अंतर का बोध अच्छे कानों को सरलतापूर्वक हो जायेगा। मालकंस तथा कान्हड़ा के मिश्रण से इस राग की उत्पत्ति हुई है, इस का वर्णन करते हुए आचार्य्य जी कहते हैं- जब दो रागों के मिश्रण से कोई राग बना होता है तब उसके आरोह में प्रयुक्त राग का नाम पहले तथा अवरोह में प्रयुक्त राग का नाम बाद में होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि कौसी कान्हड़े का वही रूप युक्ति युक्त है, विचार करने पर जिसके आरोह में मालकंस तथा अवरोह में कान्हड़ा दिखाई दे।

श्री जयसुख लाल त्रिभुवन दास शाह ने अपनी पुस्तक 'कानड़ा के प्रकार' में कान्हड़ा के ३० रागों का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है- दरबारी कान्हड़ा, अड़ाना, खमाजी कान्हड़ा, सोरठी कान्हड़ा, गारा कान्हड़ा, गूंजी कान्हड़ा, (दो प्रकार) जयन्तीकान्हड़ा,, दो प्रकार, आभोगी कान्हड़ा,, देवसाखी (दो प्रकार), भवसाख (दो प्रकार), सूहा, सुघराई, सूहा सुघराई, शहाना (दो प्रकार), नायकी कान्हड़ा (दो प्रकार), काफी कान्हड़ा, बाँस कान्हड़ा, रायसा कान्हड़ा, कौंसी कान्हड़ा (तीन प्रकार), हुसैनी कान्हड़ा (दो प्रकार), मुद्रिक कान्हड़ा (दो प्रकार), चन्द्रमुखी कान्हड़ा, तथा विजय कान्हड़ा दिए हैं।

संदर्भ

१. संगीत-मई १९६९- उस्ताद ने कहा था- आचार्य्य बृहस्पति, पृ. ३१
२. कान्हड़ा के प्रकार- जयसुख लाल शाह, पृ. २१
३. भा० सं० शा०, भाग चतुर्थ, पृ. १७६
४. वही, पृ. १७६
५. वही, पृ. १७७
६. कान्हड़ा के प्रकार- जयसुख लाल शाह, पृ. २०४
७. वही, पृ. २११
८. भा० सं० शा०, भाग चतुर्थ, पृ. ५८२
९. वही, पृ. ५९५

Scanned with OKEN Scanner

तोड़ी थाट तथा राग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय संस्कृति के कई सहस्त्र वर्षों से सञ्चित भण्डार में राग एक अनोखी सृष्टि है । भारतीय सभ्यता की अज्ञानमय रात्रि के अवसान के अवसर पर क्रम से उद्‌गीत (प्रणव), ग्राम, अरण्य, उह तथा उह्य गान से मुखरित साङ्गीतिक उषा की कल्पना कर सकते हैं। सामगान से प्रभावित ग्रामराग तथा जातिराग भी आध्यात्मिक विचारों से प्रभावित थे।

आर्चिक सभ्यता के समय से ही ऐकिक स्वरों की रञ्जकता का ज्ञान भारत को हो चुका था। समष्टिगत स्वरों के मानव मन पर अधिकार बोध ने, साम तथा वेदोत्तर काल के भारत में एक नवीन चिन्तन की सृष्टि की। प्राचीन ऋषियों की अलौकिक योग मण्डित प्रतिभा ने यह सिद्ध किया कि शुद्ध स्वर स्वर सप्तक (आधुनिक काफी थाट) विकासोन्मुख वाक्‌शक्ति का पथ प्रदर्शक है ।

हमारे देश की वैदिक सभ्यता विश्व की प्रगति के लिए अनोखी वस्तु थी। ऐसी इच्छा से बहुधा विभक्त एक महान सत्ता की धारणा तथा उसके एकीकरण की चेष्टा हमारे दर्शन शास्त्रों का अन्तर्निहित सत्य है। प्रणवध्वनि से अति आधुनिक भारतीय पट के विदेशीय राक एन्ड रोल के अन्ध अनुकरण तक का एक अविच्छिन्न इतिहास है। राग की सृष्टि तो जातिराग की अति संकीर्ण दीवारों के अन्दर हो चुकी थी। यही सङ्गीत विज्ञान की आध्यात्मिकता से वियुक्त होकर वास्तविकता की ओर जाने की प्रथम चेष्टा थी। आत्मिक चेतना से निकटतम सङ्गीत को निस्संदेह शास्त्रीय सङ्गीत का प्रथम स्तर माना जा सकता है । मानव जीवन जैसे-जैसे अधिक जटिल होता चला गया, उसके जीवन से आध्यात्मिकता वैसे-वैसे ही दूर होती चली गई, जैसे कल्पना के अभाव में रचना हो जाती है। इस प्रकार शुद्ध स्वर सप्तक (काफी थाट) को आधार मानकर विभिन्न मेलों ने भारतीय सङ्गीत में जन्म् लिया।

राग शब्द की व्याख्या सर्वप्रथम मतङ्ग ने विस्तारपूर्वक की है। इससे पूर्व राग का वर्णन नहीं मिलता। सङ्गीतज्ञों ने लोक धुनों को नियमबद्ध करके पहले जातियों

Scanned with OKEN Scanner

का, तदुपरान्त जाति लक्षणों में शिथिलता आ जाने के कारण जातियों से उत्पन्न स्वरावलियों को रागों की संज्ञा से विभूषित किया । उस काल में अनेक सामाजिक जातियाँ विद्यमान होने के कारण उनकी अपनी-अपनी विभिन्न लोक धुनें थीं। इन अलग-अलग लोकधुनों के आधार पर अनेक रागों का जन्म् हुआ। विभिन्न मेलों के बनने से विभिन्न धाराएं ऐतिहासिक रूप में दिखाई देती हैं।

(१) **मूर्च्छना**— तीनों ग्राम में २१ मूर्च्छनाओं की सृष्टि प्राचीन है। परन्तु गुप्त-युग के सङ्गीतज्ञों ने मेल सृष्टि में इन सीमाओं का उल्लंघन किया ।

(२) इस प्रकार देशी सङ्गीत के प्रभाव से हमारे सङ्गीत में प्रादेशिक नामयुक्त बहुत से राग तथा पूर्वोक्त मूर्च्छना के अतिरिक्त अन्य मेल भी आये। इसका उल्लेख मतङ्ग ने किया तक्क, गुर्जरी, मालव, बंगाल आदि।

(३) अभारतीय रागों के नाम भी हमारे देश के प्राचीन शास्त्रों में मिलते हैं, जैसे तुरुष्क गौड़, तुरुष्क तोड़ी, शक तथा बाद के झीलफ, साजगिरि, यमन (यवनिका तथा यहूदियों की भाषा में Yoven तथा Yemen यूनानी)।

(४) मेल प्रकरण की परिसमिति गणित के नियमों से पंडित व्यंकटमखी निर्देशित ७२ थाटों में हुई।

(५) कर्णाटक स्वरों के नामकरण की जटिलता उत्तरी भारत में प्रयुज्य न होने के कारण केवल ३२ थाट हमारे सङ्गीत में स्थान पा सकते हैं। आधुनिक युग के वैश्रेषिक सङ्गीत के पथ-प्रदर्शक पं० भातखण्डे जी ने सरलता के आधार पर केवल दस ही थाटों को माना। विचार योग्य बात यह है कि पाश्चात्य देशों के सङ्गीत में केवल दो ही थाट हैं— (१) Major तथा (२) Minor Scales यद्यपि उनके व्यवहारिक स्वर सप्तक (Tempered Scale) सर्वथा अशुद्ध तथा कृत्रिम है।

स्वरसङ्गति का मानव मन पर विशेष अधिकार है। ध्यानपूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है कि द्विश्रुतिक स्वरांतर (Semi-Tone) मन को आकर्षित करते हैं (जैसे ग म या नि सां)। भावावेश की अधिकता उन्हीं जगहों पर होती है, जहाँ इस प्रकार स्वरांतर (Intervals) अधिकता से हो विशेषकर यदि अचल स्वर षड्ज तथा पंचम के पास ये विकृतियाँ दिखाई दें। इन्हीं कारणों से आधुनिक काफी थाट ही हमारे मार्ग-

Scanned with OKEN Scanner

सङ्गीत के अनुकूल समझा गया। प्रगति के पथ पर आधुनिक खमाज थाट वैकल्पिक रूप से मार्ग-सङ्गीत में आ गया। संभवतः मध्यमग्राम की नींव इसी प्रकार से पड़ी ।

हमारे देश के सङ्गीत ग्रंथों में तोड़ी मेल, तोड़ी राग तथा सम्बन्धित रागों का विवरण यहाँ लिपिबद्ध किया जा रहा है—

(१) मतङ्ग कृत बृहद्देशी

मतङ्ग के समय राग तोड़ी का प्रचार नहीं था, अतः इसका उल्लेख भी नहीं है। शक तथा गुर्जरी का उल्लेख अवश्य है। ये दोनों नाम मध्य एशिया से आये हुए दो जातियों के नाम से युक्त हैं ।

(२) श्रीपार्श्वदेव कृत सङ्गीतसमयसार

पार्श्वदेव ने विदेश से आये हुए उस समय विख्यात कई रागों का वर्णन किया है जैसे तुरुष्क तोड़ी, तुरुष्क गौड़ इत्यादि। इन्हीं के समय स्वतंत्र रूप से तोड़ी की रूप रेखा बनी। घोर शृंगार रसात्मक गुर्जरी के अनुकरण पर '**तोड्डी नाम प्रसिद्धेयं रागोहर्षे नियुज्यते।**' ध्यान रखने योग्य बात यह है कि स्वतंत्र तोड़ी अपनी बाल्यावस्था में एक अत्यन्त चपल रागिनी थी।

(३) श्री शार्ङ्गदेव कृत सङ्गीतरत्नाकर

शार्ङ्गदेव के मतानुसार ग्रामराग की एक विभाषा गुर्जरी है। गुर्जरी को पंचम तथा मालवकौशिक की भाषा के रूप में पाते हैं। रागांग रागों में गुर्जरी तथा देवी का उल्लेख पाते हैं। आसावरी 'अधुना प्रसिद्ध' रागांग राग के रूप में। तोड़ी परिवार के बारे में इनका मत है—

रीथ व्यक्ता तु तोड्यव छाया तोड़ीति कीर्त्तिता।
तोड्येव ताड़ित जाल्या तौरुष्की निधभूयसी॥

Scanned with OKEN Scanner

(४) श्रीलोचन कृत रागतरङ्गिणी

लोचन के समय में खट, गुर्जरी तथा मुलतानी गौरी मेल (सा रे ग म प ध नि) के राग थे। स्वतंत्र रूप से तोड़ी मेल तथा राग का अस्तित्व आधुनिक भैरवी जैसा था। उस समय की भैरवी इस समय की काफी जैसी थी । विदेशी शासक वर्गों के सांस्कृतिक आक्रमण से पूर्व की अवस्था के सही मूल्यांकन की कसौटी रागतरंगिणी है। इसलिये लोचन का मत हमारे सङ्गीत-इतिहास का एक अति मूल्यवान स्तर समझा जाता है ।

(५) श्रीरामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि

दक्षिणी पण्डित रामामात्य के मतानुसार गुर्जरी मालवगौड़मेल का राग है (सा रे ग म प ध नि)। तुरुष्क तोड़ी कन्नडगौल मेल का राग है। (सा ग ग म प ध नि)।

(६) पण्डित पुण्डरीकविट्ठल कृत सद्रागचन्द्रोदय

प्रस्तुत आधार में तोड़ी थाट तथा मेल आधुनिक भैरवी के समान था। तुरुष्क तोड़ी कर्णाट गौलमेल (सा ग ग म प ध नि) का जन्यराग था। इन्हीं के राग अध्याय में तोड़ी तथा तुरुष्क तोड़ी को हिन्डोल रागभार्या तथा गुर्जरी को देशिकार भार्या रूप में पाते हैं। अन्य ग्रन्थ रागमंजरी में (१) तोड़ी तथा शुद्ध भैरव का उल्लेख तोड़ी जन्य रागों में (२) आसावरी तथा गुर्जरी, गौड़ी जन्यरागों में (३) तुरुष्क तोड़ी कर्णाट जन्य रागों में मिलता है ।

(७) सोमनाथ कृत रागविबोध

कर्णाटक सङ्गीत के विद्वान पं० सोमनाथ के मत से तोड़ी मेल हमारे इस समय के भैरवी मेल के समान था। मालवगौड़ मेल जनित गुर्जरी राग उत्तम माना जाता था। परन्तु पंडित सोमनाथ की शुद्ध वराटी का स्वर सप्तक हमारी आधुनिक तोड़ी जैसा है—

पवर्जिता विग्रहाशन्यासा षाडविकास्मृता।
कदाचिदवरोहे सामर्युता गुर्जरी भवेत्॥

Scanned with OKEN Scanner

देशी तथा तुरुष्क तोड़ी राग क्रम से शुद्ध रामक्री तथा कर्णाट मेल के अधम-राग माने जाते थे ।

(८) दामोदर कृत सङ्गीतदर्पण

इस मत से तोड़ी बसंत भार्या है एवम् गुर्जरी भैरव भार्या है। "मध्यमांशग्रहन्यासा सौवीरी मूर्च्छनामता, सम्पूर्णा कथिता तज्ज्ञैस्तोड़ी श्री कौशिकेमता, ग्रहांशन्यासषड्जां च केचिदेनां प्रचक्षते"।

(९) पं० व्यंकटमखी कृत चतुर्डदन्डिप्रकाशिका

इस ग्रन्थ में गुर्जरी का उल्लेख गोलमेल (सा रे ग म प ध नि) में मिलता है।

(१०) श्री हृदय नारायण देव कृत हृदयप्रकाश

हृदय प्रकाश का आधार रागतरङ्गिणी है। अतः तोड़ी मेल आधुनिक भैरवी के समान था ।

(११) श्रीकण्ठ कृत रसकौमुदी

रस कौमुदी में तोड़ी का उल्लेख नहीं मिलता। भैरवी थाट भी अज्ञात सा दीख पड़ता है।

(१२) पं० भावभट्ट कृत अनूपसङ्गीत विलास

इस ग्रन्थ में गुर्जरी, तुरुष्क तोड़ी तथा भैरवी का उल्लेख मिलता है। राग अनुपांकुश में तोड़ी "मालव कैशिक पोषिता" बताई गई है ।

(१३) श्री अहोबल कृत सङ्गीतपारिजात

सङ्गीतपारिजात में तोड़ी, छाया-तोड़ी, मार्ग तोड़ी तथा देसी का विवरण मिलता है —

Scanned with OKEN Scanner

(अ) षडजपूर्वा तु तोड़ी स्यात्यत्रौक्तौ कोमलौरिधौ।
न्यासं, स्याद्धैवत स्तस्यां पंचमेवोभयोरपि॥

(आ) छायातोड्र्या तथैव स्यात्रिपाभ्यां रहितासदा।

(इ) मार्गतोड्यां पहीनायां कोमलास्यौ रिधैस्मृतौ।
सन्यासौ मध्यमांश स्यान्मूर्च्छना तत्र धादिका॥ (पौरवी)

(१४) महाराजा तुलाजी कृत सङ्गीतसारामृत

महाराजा तुलाजी ने गुर्जरी की मालवगौड़ मेल में तथा शुद्ध देशी की श्रीमेल में स्थापना की। इनकी सिन्धुरामक्री हमारे आधुनिक तोड़ी थाट के समान थी।

ब्रिटिश शासनकाल के अन्धकारमय युग को छोड़कर अब हम आधुनिक युग में पदार्पण करते हैं—

(१५) पं० सुदर्शनाचार्य कृत-सङ्गीतसुदर्शन

(१९१६) २० शतक के प्रारम्भ में लिखी हुई एक पुस्तक पं० सुदर्शनाचार्य रचित 'सङ्गीतसुदर्शन' सेनियों के अति निकट रहकर लिखी गई है। उन्होंने 'स्वरसागर' से उद्धृत किया- 'पाचौनारी हिंडोल की तोड़ी या हिती बाम तोड़ी पुत्र मकार' पंचम प्राय: मुक्त रूप से व्यवहृत हुआ है। गांधार तथा धैवत के प्रयोग में समानता दी गई है।

गांधार सुर को धैवत होत है, धैवत सुर को गांधार।

गुर्जरी पंचम वर्जित— भैरव की रागिणी बताई गई। तोड़ी वर्ग के अन्य रागों में देशी, जौनपुरी (३ प्रकार की) आसावरी, लाचारी तथा (बिलासखानी दो प्रकार जैसे, <u>ध</u> <u>नि</u> तथा <u>रे</u> <u>ग</u> म मं <u>ध</u> <u>नि</u>) का वर्णन मिलता है ।

(१६) श्री हरिनारायण जी कृत ध्रुवपद स्वरलिपि

प्रस्तुत ग्रन्थ में तो वर्ग के इन रागों का समावेश है। (१) गांधारी (२) विलासखानी (३) दरबारी तोड़ी अथवा केवल दरबारी (४) हुसैनी तोड़ी (५) देशी (६) आसावरी । विलासखानी के जन्मदाता विलास खाँ रचित दो गीतों का (सरगम

Scanned with OKEN Scanner

सहित) भी इन्होंने उद्धरण किया है।

(१७) श्री गोपेश्वरजी कृत सङ्गीतमंजरी

इस ग्रन्थ में अन्य तोड़ी वर्ग के रागों के अतिरिक्त काफी तोड़ी का उल्लेख भी मिलता है ।

सङ्गीत मासिक पत्रिका तोड़ी थाट अङ्क में पृ० २० पर प्रो० शरत् चन्द्र श्रीधर परांपजे तोड़ी के इतिहास के विषय में कहते हैं—

" तोड़ी भारत की उज्ज्वल अधुना प्रचलित राग-परम्परा में गौरवपूर्ण स्थान पर आसीन है। तोड़ी कहते ही उसके कोमलतर गांधार की कल्पना साकार उपस्थित हो जाती है। तोड़ी का इतिहास सङ्गीत में युगानुकूल होने वाले युगान्तकारी परिवर्तनों का प्रमाण है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों से स्पष्ट है कि तोड़ी का रूप प्राचीनकाल से लेकर ई० १७ तक आधुनिक भैरवी के रूप में बराबर पल्लवित होता रहा। आधुनिक भैरवी तथा आधुनिक तोड़ी में जो अन्तर है, वही प्राचीन तोड़ी तथा आधुनिक तोड़ी में है । दक्षिण में आज भी प्राचीन तोड़ी को तोड़ी अथवा हनुमततोड़ी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। तोड़ी के नाम से दक्षिण में उत्तरात्य भैरवी का गान किया जाता है, यह बात विदित है। दक्षिण के सङ्गीतज्ञों का मत है कि तोड़ी, खमाज तथा झिंझोटी उन उत्तरात्य रागों में से है, जिनको दाक्षिणात्य सङ्गीत-शैली ने आत्मसात् कर लिया है। इस राग का प्रचलन दक्षिण तथा उत्तर में भारतीय राग-रूप की दृष्टि से कैसा अक्षुण्ण रहा, इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन निम्न प्रस्तुत है ।

भारतीय रागों के इतिहास में 'तोड़ी' की एक दीर्घ परम्परा है। ई० ९ से लेकर ई० १७ तक उसका दीर्घ इतिहास सङ्गीत ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। ई० ९ के पूर्ववर्ती मतङ्ग ने तोड़ी का नामोल्लेख तक नहीं किया है। ई० ९ के नाट्यलोचन में तोड़ी का शुद्ध राग के रूप में प्रथम उल्लेख पाया जाता है। ई० ११ की सङ्गीतरत्नमाला में 'तुडिका' को नाट राग का रागांग माना गया है। ई० ११-१२ के मानसोल्लास में 'तोडिका' का निर्देश बसंत के रागांग के रूप में किया गया है। सङ्गीतमकरन्द में 'तुण्डी' तथा 'त्रोडि' दो रागों का उल्लेख है और इनको क्रमशः पटमंजरी तथा पंचम राग से सम्बद्ध माना गया है। ई० १३ के सङ्गीतसमयसार तथा सङ्गीतरत्नाकर में 'तोड्डी' तथा 'तुरुष्क तोडी' दोनों का स्वतंत्र विवरण पाया जाता है। 'तोड्डी' को

Scanned with OKEN Scanner

सहित) भी इन्होंने उद्धरण किया है।

(१७) श्री गोपेश्वरजी कृत सङ्गीतमंजरी

इस ग्रन्थ में अन्य तोड़ी वर्ग के रागों के अतिरिक्त काफी तोड़ी का उल्लेख भी मिलता है ।

सङ्गीत मासिक पत्रिका तोड़ी थाट अङ्क में पृ० २० पर प्रो० शरत् चन्द्र श्रीधर परांपजे तोड़ी के इतिहास के विषय में कहते हैं—

" तोड़ी भारत की उज्ज्वल अधुना प्रचलित राग-परम्परा में गौरवपूर्ण स्थान पर आसीन है। तोड़ी कहते ही उसके कोमलतर गांधार की कल्पना साकार उपस्थित हो जाती है। तोड़ी का इतिहास सङ्गीत में युगानुकूल होने वाले युगान्तकारी परिवर्तनों का प्रमाण है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों से स्पष्ट है कि तोड़ी का रूप प्राचीनकाल से लेकर ई० १७ तक आधुनिक भैरवी के रूप में बराबर पल्लवित होता रहा। आधुनिक भैरवी तथा आधुनिक तोड़ी में जो अन्तर है, वही प्राचीन तोड़ी तथा आधुनिक तोड़ी में है । दक्षिण में आज भी प्राचीन तोड़ी को तोड़ी अथवा हनुमततोड़ी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। तोड़ी के नाम से दक्षिण में उत्तरात्य भैरवी का गान किया जाता है, यह बात विदित है। दक्षिण के सङ्गीतज्ञों का मत है कि तोड़ी, खमाज तथा झिंझोटी उन उत्तरात्य रागों में से है, जिनको दाक्षिणात्य सङ्गीत-शैली ने आत्मसात् कर लिया है। इस राग का प्रचलन दक्षिण तथा उत्तर में भारतीय राग-रूप की दृष्टि से कैसा अक्षुण्ण रहा, इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन निम्न प्रस्तुत है ।

भारतीय रागों के इतिहास में 'तोड़ी' की एक दीर्घ परम्परा है। ई० ९ से लेकर ई० १७ तक उसका दीर्घ इतिहास सङ्गीत ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। ई० ९ के पूर्ववर्ती मतङ्ग ने तोड़ी का नामोल्लेख तक नहीं किया है। ई० ९ के नाट्यलोचन में तोड़ी का शुद्ध राग के रूप में प्रथम उल्लेख पाया जाता है। ई० ११ की सङ्गीतरत्नमाला में 'तुडिका' को नाट राग का रागांग माना गया है। ई० ११-१२ के मानसोल्लास में 'तोडिका' का निर्देश बसंत के रागांग के रूप में किया गया है। सङ्गीतमकरन्द में 'तुण्डी' तथा 'त्रोडि' दो रागों का उल्लेख है और इनको क्रमश: पटमंजरी तथा पंचम राग से सम्बद्ध माना गया है। ई० १३ के सङ्गीतसमयसार तथा सङ्गीतरत्नाकर में 'तोड्डी' तथा 'तुरुष्क तोड़ी' दोनों का स्वतंत्र विवरण पाया जाता है। 'तोड्डी' को

Scanned with OKEN Scanner

प्राचीन सप्त ग्रामरागों में से एक 'षाड़वग्राम राग' से सम्बद्ध मानकर उसके सम्पूर्णतः भारतीय होने के सम्बन्ध में मान्यता इन दोनों ग्रंथों में उलब्ध होती है। तुर्कों के सम्पर्क से निर्मित तुरुष्क- गौड़, तुरुष्क तोड़ी आदि संमिश्र रूपों का वर्णन स्वतंत्र रूप से हुआ है। पार्श्वदेव (सङ्गीतसमयसार) के अनुसार 'तुरुष्क तोड़ी' षाड़वग्राम राग से ही सम्बद्ध है। शार्ङ्गदेव (सङ्गीतरत्नाकर) के अनुसार 'तोड़ी' तथा 'तौरुष्की तोड़ी' दोनों कुछ अन्शों में परस्पर सदृश हैं— **'तौड्येव ताडिता गाल्या तौरुष्की रितिभूयसी।'**

दक्षिण के पंडित पुंडरीक (ई० १६-१७) ने भारतीय रागों के साथ मुस्लिम सभ्यता के सम्पर्क से प्राप्त रागों का उल्लेख किया है। तोड़ी का अन्तर्भाव प्रचलित तथा लोकप्रिय १९ मेलों के अन्तर्गत किया गया है। उत्तरात्य सङ्गीत के आचार्य्य लोचन (ई० १७) ने 'तोड़ी' को प्रचलित एवं लोकमान्य १२ प्रमुख मेलों का संस्थानों में स्थान दिया है। उनके अनुसार यह पूर्वांगेय राग है, जिसमें कोमल रे तथा ध को छोड़कर अन्य सभी स्वर शुद्ध हैं। तोड़ी का यह रूप आधुनिक भैरवी का पर्याय्य है, यह बात विज्ञजनों के द्वारा स्वीकृत है। अपने समय में प्रचलित कुछ पर्शियन रागों का नामोल्लेख उन्होंने किया है, जिनमें तुरुष्क तोड़ी, हुसैनी, नवरोज तथा हिजाज आदि है। तोड़ी के तीन प्रकारों का विवरण उन्होंने किया है—तोड़ी, देशी तोड़ी तथा तुरुष्क तोड़ी। तोड़ी राग को 'तोड़ी' मेल के अन्तर्गत रखा गया है, देशी तोड़ी को 'गौरी' मेल के अन्तर्गत तथा तुरुष्क तोड़ी को 'कर्नाट' मेल के अन्तर्गत माना गया है। प्रतीत होता है कि इन तीनों रागों का रूप लोचन के समय में परस्पर विभिन्न हो गया हो। यह स्पष्ट है कि तोड़ी, देशी तोड़ी तथा तुरुष्क तोड़ी उनकी दृष्टि में परस्पर स्वतंत्र राग-रूप है। पं भावभट्ट (ई०१७-१८) ने भी तोड़ी तथा तुरुष्क-तोड़ी का स्वतंत्र विवरण देते हुए 'तोड़ी' के स्वतंत्र भारतीय रागरूप होने की परम्परा का वहन किया है । उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तोड़ी के सम्पूर्णतः भारतीय तथा एतद्देश-जन्य होने की बात दक्षिण तथा उत्तर के समस्त सङ्गीतज्ञों को सम्मत है। यह तो हुई प्राचीन तोड़ी की बात, जो शताब्दियों तक भारत में आधुनिक तथा उत्तरात्य 'भैरवी' के स्वरों में गाई जाती रही। जहाँ तक उत्तरात्य तोड़ी के आधुनिक स्वरूप की बात है, वह भी प्राचीनकाल से लेकर अधुना तक इसी भूमि में विकसित हुआ, इस सम्बन्ध में प्रमाण उपलब्ध है।

आधुनिक हिन्दुस्तानी 'तोड़ी' का स्वर-रूप निम्न है—

सा, रे॒, ग॒ (अति कोमल), मं (तीव्र), प, ध॒, नि, सां।

Scanned with OKEN Scanner

यह स्वरावलि प्राचीनकाल से 'वराटी' के नाम से उपलब्ध है। दक्षिण के सङ्गीत-ग्रन्थों में हिन्दुस्तानी 'तोड़ी' का समावेश 'पंतु-वराली' नामक ४५ नं० के मेल के अन्तर्गत किया जाता है। मतङ्ग से लेकर तुलजेन्द्र (ई० १८) तक 'वराटी' का विवरण उत्तर तथा दक्षिण दोनों और पाया जाता है। मतङ्ग (ई० ९) से पूर्व' 'वराटी' को भिन्नपंचम की प्रसिद्ध भाषा के रूप में मानते हैं—

मध्यमांशा धैवतान्ता ऋषभेण च दुर्बला।
षड्जधैवतसंवादो द्विश्रुतीनां सधैवतम्॥
भाषा तु षाडवा ह्ये बहुधैवतमध्यमा।
वराटी चेति विख्याता गीता विद्याधरैः किला।'' (बृहद्देशी पृ० १२९)

मम्मट की सङ्गीतरत्नमाला (ई० ११-१२) में इसके तीन रूप माने गये हैं—शुद्ध वराटी, द्राविड़ी वराटी और देशी वराटी। शार्ङ्गदेव के अनुसार 'वराटिका' षड्जमध्यमा जाति से उत्पन्न सौवीरी 'बहुलमध्यम' भाषा से उद्भूत हुई है ।

षड्जमध्यमया सृष्टः सौवीरः काकलीयुतः।
गाल्पः षड्जग्रहन्यासांशकः षड्जादिमूर्च्छनः॥
सौवीरी तद्भवा मूलभाषा बहुलमध्यमा।
तज्जा वराटिका सैव चट्टुकी धनिपाधिका॥
सन्ययासांशग्रहा तारसधा शांते नियुज्यते॥ (सङ्गीतरत्नाकर)

सौवीर राग तथा सौवीरी भाषा राग का प्रचार ई० ९ से पूर्व प्रचलित था, यह तथ्य मतंग कृत विस्तृत विवरण से स्पष्ट है। सङ्गीतरत्नाकर शार्ङ्गदेव के पश्चात् 'वराटी' का उल्लेख प्रमुख मेल-रागों के अन्तर्गत बराबर किया जाता रहा है। पुण्डरीक, रामामात्य, व्यंकटमखी, तुलजेन्द्र आदि दाक्षिणात्य मुख्य मेलों के अन्तर्गत 'शुद्ध वराटी' का समावेश करते हैं, जिसके स्वर आधुनिक उत्तरात्य प्रणाली के अनुसार निम्न होंगे —
'सा रे॒ रे मे॑ प ध॒ नि।'

पं० सोमनाथ इसमें 'साधारण ग' का विधान स्वीकार करते हैं, जिससे इसका रूप आधुनिक उत्तरात्य तोड़ी के सदृश निम्न प्रकार का होता है—

सा रे॒ ग॒ मे॑ प॒ ध॒ नि।

Scanned with OKEN Scanner

पं० भावभट्ट तथा अहोबल ने वराटी के भेदों में 'तोड़ी-वराटी' नामक प्रकार निर्दिष्ट किया है, जिसका स्वरूप उपर्युक्त 'शुद्ध वराटी' से मिलता-जुलता है। अहोबल के अनुसार—

रिगौ कोमल पूर्वकौ।
मस्तु तीव्रतरो धः स्यात् कोमलस्तीव्रनिः स्वरः।

वराटी का स्वरूप वही है, जो पं० पुडरिक आदि सङ्गीतज्ञों के द्वारा प्रोक्त है। इसी में कोमल निषाद के प्रयोग से तोड़ी-वराटी का निर्माण संभाव्य है। अहोबल के अनुसार 'तोड़ी-वराटी' का स्वर-रूप निम्न होगा—

'सा रे ग म॑ प ध नि'।

वराटी की लोकप्रियता इस बात से स्पष्ट है कि अन्य रागों के साथ इसका मिश्रण बड़ा मनोरंजक माना जाता था। तोड़ी-वराटी का यही रूप किंचित् परिवर्तित होकर उत्तर में तोड़ी के नाम से तथा दक्षिण में वराटी के नाम से प्रसिद्ध हुआ, ऐसी यथार्थ कल्पना की जा सकती है। व्यंकटमखी के अनुसार शुद्ध वराली तथा पंतुवराली दोनों राग एक दूसरे से पृथक् हैं और इनका पार्थक्य गांधार के प्रयोग में है। शुद्धवराली में शुद्ध 'ग' का प्रयोग विहित है, जो आधुनिक उत्तरात्य सङ्गीत के तीव्र रे के पर्य्यायस्वरूप है, पंतुवराली में साधारण ग का विधान है, जो आधुनिक उत्तरात्य सङ्गीत के कोमल ग का पर्य्याय है। दोनों के स्वर-रूप क्रमशः निम्न हैं-—

(१) सा रे रे म॑ प ध नि (शुद्धवराली)
(२) सा रे ग म॑ प ध नि (पन्तुवराली)

पंतुवराली की प्रचलित कृतियों में साधारण ग के अतिरिक्त अन्तर ग का प्रयोग यदा-कदा दृष्टिगोचर होता है। अतः साधारण तथा आंदोलित ग वाले प्रकार को 'शुभपन्तुवराली' के नाम से अभिहित किया जाता है। व्यंकटमखी ने इस राग को 'पामरजनप्रिय' बतलाया है , संभवतः इस अर्थ में कि यह राग-रूप जनसङ्गीत में पर्याप्त लोकप्रिय रहा हो।

कुछ मनीषियों के अनुसार तोड़ी विदेश से आयात की हुई रागिनी है। प्राचीन यूनानी-सङ्गीत में पाया जाने वाला 'डोरिक' मेल इस राग के प्राचीन रूप से सादृश्य

Scanned with OKEN Scanner

रखता है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार तोड़ी उन रागों में से एक है, जो ईरान, शक आदि विदेशी जातियों के सम्पर्क से प्राप्त हुई है। उपर्युक्त दोनों सम्मतियाँ सबल प्रमाणों पर आधारित हैं, ऐसा प्रतीत नहीं होता। तथ्य यह है कि यूनानी सङ्गीत में जैसी 'स्केल्स' की प्रणाली प्रचलित थी, वैसी ही भारत में मूर्च्छना-प्रणाली का प्रचलन था। प्राचीन तामिल सङ्गीत में 'पालइ' नामक मूर्च्छना-सदृश प्रकारों से विभिन्न रागों का निर्माण किया जाता था। स्वयं तोड़ी का प्राचीन तथा आधुनिक रूप क्रमशः भरतोक्त षड्जग्रामिक तथा मध्यमग्रामिक मूर्च्छनाओं से उद्भूत हो सकता है, यह बात विद्वजनों से अपरिचित नहीं। यूनानी राग रूपों के संबंध में स्टाबो की साक्ष्य है कि इन 'मोडस' की रचना पायथागरस ने भारतीय सङ्गीत प्रणाली के आधार पर की है। इस सासक्ष्य के बल पर यही कहा जा सकता है कि उपर्युक्त 'डोरिक' मेल भारत से निर्यात साङ्गीतिक उपादानों में से है। ईरानी प्रभाव की बात भी प्रमाण परिपुष्ट नहीं कही जा सकती। प्राचीन ईरानी सङ्गीत में मूलभूत आठ अथवा बारह रागों की स्थिति मानी गई है, जिसमें तोड़ी का नामोल्लेख नहीं। संभव है कि दक्षिण भारत में नीलगिरि पहाड़ियों में निवपास करने वाली 'तोड' जातियों की धुन से इसका सम्बन्ध रहा है। तोड़ जाति के सङ्गीत में प्राचीन धुनें उपलब्ध होती हैं, ऐसा पाश्चात्य सङ्गीत-मनीषी डॉ० बेक का अभिमत है। समाज-शास्त्रज्ञों के विचार से यह जाति उन प्राचीन जातियों में से है, जो प्रागैतिहासिक काल में भारत में आकर बसीं। यह जाति अपने आपको रामायणकालीन रीछों से उद्भूत मानती है। संभवतः लोकसङ्गीत के अन्वेषक तथा समाज-शास्त्रज्ञों के सहयोग से तोड़ जाति के सङ्गीत के सम्बन्ध में विशेष एवं प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

जो हो, अधुना उपलब्ध ग्रन्थ-प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तोड़ी की सनातन परम्परा इस देश में रही है तथा तोड़ी के प्राचीन एवं आधुनिक दोनों रूप भारत की सङ्गीत परम्परा में विकसित हुए हैं।"

सङ्गीत के इसी अङ्क में पृ० ३३ पर स्वामी प्रज्ञानानन्द जी लिखते हैं—

"तोड़ी राग अनेक नामों से पुकारा जाता है जैसे तोड़िका, तोडी, तूड़ी, तुन्डी आदि। मेरे विचार से तोड़ी अथवा तोड़िका सही नाम है। इसका प्रादुर्भाव किसानों अथवा चरवाहों की खेतों पर गाई जाने वाली धुन से हुआ। मूल रूप में यह तुर्क चरवाहों की धुन थी। अन्य विदेशी जातियों की भाँति जब तुर्कों ने भारत पर आक्रमण

किया, वे भारतीय समाज में अपनी चरवाहों की तथा राष्ट्रीय धुन छोड़ गये अतः इसे एक विदेशी धुन समझा जाता है। डा० बी० एन० दत्त अपनी पुस्तक भारतीय कला से संस्कृति का संबंध में लिखते हैं- "यह हिन्दू संस्कृति के पूर्ण विकास की शास्त्रीय सङ्गीत पद्धति थी जो वाकाटक तथा गुप्त काल में दिखाई दी। अब तक यह विदेशी प्रभाव से सर्वथा मुक्त थी। उसी समय तुर्की आक्रमण हुआ और उत्तरी भारत उससे प्रभावित हुआ और भारतीय आर्यों की सङ्गीत पद्धति में तुर्की तोड़ी का सन्निवेश हुआ।"

पार्श्वदेव ने तोड्डी अर्थात् तोड़ी को रागाङ्ग राग कहा है और तुरुष्कतोड़ी तथा छायातोड़ी को उपांगराग कहा है। पार्श्वदेव के अनुसार तुरुष्क तोड़ी सप्तस्वर युक्त तथा छाया तोड़ी पंचस्वर युक्त है जिसमें ऋषभ तथा पंचम वर्जित हैं। 'सङ्गीत-मकरन्द' में तोड़ी को पंचम राग का उपराग माना गया है। मम्मटाचार्य्य ने इसे नट-जन्य राग कहा है। शार्ङ्गदेव ने पार्श्वदेव के अनुकरण पर मध्यम को ग्रह, न्यास तथा अन्श माना है। पंडित अहोबल ने तोड़ी अर्थात् मार्ग तोड़ी को षाडव, ऋषभ तथा धैवत को विकृत या कोमल, मध्यम को अन्श, षड्ज को न्यास तथा धैवत को ग्रह कहा है। इसे मध्यम ग्राम की पौरवी मूर्च्छना में प्रकाशित किया जाता है, जिसका स्वरूप इस प्रकार है —

ध़ नि़ सा रे ग म प - प म ग रे सा नि़ ध़ इसे प्रातःकाल गाया जाता है ।

स्व० पं० भातखण्डे जी ने तोड़ी ठाठ व राग के बारे में अपने ग्रंथों में काफी चर्चा सप्रमाण की है। उनका कहना है कि हमारे गायक हमको बहुत से तोड़ी प्रकारों के नाम बताते हैं। जैसे शुद्ध तोड़ी, दरबारी तोड़ी, लाचारी ताड़ी, गुर्जरी तोड़ी, लक्ष्मी तोड़ी, बहादुरी तोड़ी, मुद्रा तोड़ी, अहीरी तोड़ी, हुसैनी तोड़ी, अंजनी, बिलासखानी तोड़ी, फीरोजखानी तोड़ी इत्यादि । इनके अतिरिक्त खट, गांधारी, जौनपुरी, देसी, आसावरी को भी तोड़ी प्रकार में गिनते हैं परन्तु इनमें से कई प्रकार तो बिलकुल अप्रसिद्ध हैं तथा कुछ विवादग्रस्त हैं। तोड़ी के इतने अधिक प्रकार किसी गायक या वादक को आते हों, ऐसा शायद ही कोई गुणी मिल पायेगा। इन प्रकारों के लिए ग्रंथाधार मिलना तो असंभव है क्योंकि हुसैनी तोड़ी, बहादुरी तोड़ी, फिरोजखानी तोड़ी, बिलासखानी तोड़ी में तो स्पष्ट रूप से आधुनिक एवं यावनिक नाम है।

Scanned with OKEN Scanner

राग तोड़ी का वर्णन करते हुए क्रमिक पुस्तक मालिका भाग दो के पृष्ठ ४२९ पर विभिन्न ग्रंथों के आधार पर इस प्रकार दी हैं।

मनी तीव्रौ यस्यां खलु धगरयः संति मृदवो ।
मतो वादी षष्ठोऽस्य तु सहचरो गोऽतिमधुरः॥
गभीरा संपूर्णा प्रकटसग्रहन्याससुभगा ।[१]
प्रसिद्धा तौड़ीय दुरधिगमना संगवचरा

— कल्पद्रुमांकुरे

मनी तीव्रौ धगरयः कोमलाः स्युर्धगौ स्मृतौ।
वादिसंवादिनौ यत्र तोड़ी सा संगवे मता॥[२]

—चंद्रिकायाम्

तीखे मनि कोमल रिगध वादी धैवत साज।
संवादी गंधार है, टोड़ी राग बिराज ॥[३]

—चंद्रिकासार

धनी सरी गरी सश्च मपौ धमौ मगौ रिसौ।
संपूर्णा तोड़िका ज्ञेया धैवतांशा च संगवे ॥[४]

—अभिनवरागमंजर्याम्

राग तोड़ी का वर्णन भातखण्डे जी ने इस प्रकार दिया है— यह राग तोड़ी थाट से उत्पन्न होता है। इसमें मध्यम तीव्र, निषाद शुद्ध तथा शेष स्वर ऋषभ गांधार तथा धैवत कोमल लगते हैं। वादी धैवत तथा सम्वादी गान्धार है। यह राग सम्पूर्ण जाति का है, गायन समय दिन का दूसरा पहर मानते हैं। पंचम स्वर का प्रयोग इस राग में कम किया जाता है। इस राग की सारी खूबी रे ग ध स्वरों पर अवलंबित है।[५]

तोड़ी ठाठ के मुख्यतः तीन राग ही विशेष रूप से गाये जाते हैं। तोड़ी, गुजरी तोड़ी, तथा मुलतानी। स्व० आचार्य्य बृहस्पति ने अपने ग्रंथ **राग रहस्य** में भी तोड़ी की काफी चर्चा की है। उनका कहना है मुगल बादशाहों में बाबर अत्यन्त सङ्गीतानुरागी था। इसमें आश्रित आठ सङ्गीतज्ञों के नाम इतिहास में मिलते हैं। इनमें से कुछ गायक, कुछ बरबत गायक, कुछ ने (एक सुषिर वाद्य) वादक थे तथा कुछ कानून वादक थे।[६] इनमें से कुछ लोग रागों के आविष्कारक भी थे। ये सभी सङ्गीतज्ञ बाबर के देश बन्धु

Scanned with OKEN Scanner

थे। जिस अकबरी दरबार में ध्रुवपद गायकों तथा बीनकारों की सङ्गति विदेशी कलाकारों से लम्बे समय तक हुई, उसमें प्रतिभाशाली कलावंतों के द्वारा नवीन रागों का निर्माण विदेशी कलाकारों के सम्मुख अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने का और अकबर को चमत्कृत करने के लिए हुआ। उसी समय अनेक रागों के ठाठ भी परिवर्तित हुए।[७]

हिन्दुस्तानी सङ्गीत में तोड़ी 'ठाठ' का वर्णन सबसे पहले सोमनाथ ने अपने ग्रंथ में 'शुद्ध वराटी' नाम से किया है।[८] सोमनाथ का ग्रंथ अकबरी युग के पश्चात् जहाँगीर के युग में लिखा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह ठाठ अकबरी युग में तो केवल प्रयोग का विषय रहा, उसके पश्चात् इसे ग्रन्थों में स्थान मिमला।[९] खमाज ठाठ को उलटने से तोड़ी थाट का प्राप्ति इस प्रकार होती है [१०]—

खमाज—	स रे ग म प ध नि सां
तोड़ी —	स रे ग मं प ध नि सां

इस ठाठ के तोड़ी राग को **मियाँ की तोड़ी** कहा जाता है, संभव है कि खमाज को उलटकर तोड़ी ठाठ में अपनी तोड़ी का आविष्कार तानसेन ने ही किया हो। 'तोड़ी ठाठ ' के 'ध़ नि़ स रे' और 'ग मं प ध' परस्पर सम्वादी हैं। 'ध़ नि़ स रे ग मं प ध' में 'ध़ - ग' 'नि़ - मं' 'सा - प ' तथा 'रे - ध' षड्ज पंचम भाव से सम्वादी है।[११] तोड़ी में 'ध - ग' की जोड़ी चमकती है। यद्यपि तोड़ी ठाठ के सा रे ग मं और 'प ध नि सां' परस्पर सवाल जवाब नहीं है, तथापि तोड़ी गाते समय आज तानपूरे की बायीं तार पर 'पंचम' मिलाने का रिवाज है। यह पंचम जहाँ 'मुलतानी' के गांधार का मित्र है, वहीं तोड़ी के गांधार का परम शत्रु है।[१२] इसलिए तोड़ी गाते समय पंचम को धैवत की बहुलता से 'प मं ध ऽ ऽ मं ग मं ध ऽ ऽ नि ध प मं ध ऽऽ' जैसे स्वर प्रयोगों में दबाया जाता है । आचार्य्य बृहस्पति जी द्वारा तोड़ी गाते समय तानपूरे की बांई ओर के तार पर नि स्थापित करनी चाहिए। 'नि़ - ग' में स्वाभाविक 'सा-ग' सम्बन्ध है। 'सा रे ग ऽ ऽ ग रे रे ग ऽ ऽ रे स' जैसे राग वाचक स्वर गुच्छ का कोई जवाब इस राग में नहीं है, क्योंकि इस राग की प्राप्ति अभारतीय शैली से की गयी है।[१३]

तोड़ी के प्रकार मुसलमान गायकों ने दो-दो, तीन-तीन प्रकार मिलाकर उत्पन्न किये, ऐसा कुछ गायक मानते हैं। तोड़ी मेल के स्वर सा रे ग मं प ध नि सां हैं। तोड़ी राग इसी ठाठ से उत्पन्न होता है। इसका आरोह अवरोह सम्पूर्ण है। तोड़ी में वादी स्वर

Scanned with OKEN Scanner

धैवत तथा सम्वादी स्वर गांधार है। 'नि़ स रे ग ऽ रे ग ऽ रे स' इतने स्वरों से तोड़ी दिखाई देने लगती है। तोड़ी गाने का समय दिन का दूसरा प्रहर है। कुछ विद्वान आसावरी, जौनपुरी, गांधारी, देसी तथा खट ये तोड़ी के प्रकार मानते हैं तथा उन्हें उसी प्रहर में गाते हैं। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि तोड़ी या शुद्ध तोड़ी ये पृथक-पृथक राग हैं या नहीं। सन् १९१८ ई० में दिल्ली की अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद में तोड़ी के विभिन्न प्रकारों पर चर्चा हुई थी। उस सभा में हिन्दुस्तान के बहुत से प्रसिद्ध गुणी एकत्र हुए थे। वहाँ चर्चा करते समय बीच-बीच में गुणी लोग अपने गीत गाकर दिखाते थे तथा चर्चा करते थे। उसी सभा में यह बात भी चर्चा का विषय बनी थी कि **शुद्ध तोड़ी, दरबारी तोड़ी** तथा **मियां की तोड़ी,** ये तीनों प्रकार अलग-अलग हैं अथवा एक ही प्रकार के ये विभिन्न नाम हैं। इस विषय पर बहुत छानबीन हुई तथा यह तय हुआ कि 'शुद्ध तोड़ी,' 'दरबारी तोड़ी' तथा 'मियाँ की तोड़ी' ये तीनों नाम एक ही प्रसिद्ध राग तोड़ी के हैं।

मुनि शार्ङ्गदेव ने रत्नाकर में इस प्रकार कहा है कि 'तोड़ी' राग 'शुद्ध षाडव' नामक ग्रामराग से उत्पन्न होता है। रागतंरगिणी, सद्राग चन्द्रोदय, नृत्यनिर्णय, सङ्गीतपारिजात, सभी ग्रन्थों में तोड़ी का वर्णन है। दक्षिण के ग्रंथकारों में रामामात्य की **स्वरमेल कलानिधि** में भी तोड़ी का वर्णन मिलता है। 'राग विबोध' में भी तोड़ी का वर्णन मिलता है। व्यंकटमखी ने तोड़ी राग को देशीराग की नामावली में लिया है। अपने हिन्दुस्तानी तोड़ी मेल को उन्होंने 'शैवपन्तुवराली' नाम दिया है। तुलाजीराव ने अपने तोड़ी मेल को 'सिन्धुरामक्रिमेल' कहा है। चतुर्दण्डि में तोड़ी मेल को 'जनुतोड़ी' नाम दिया है। वह हमारा भैरवी ठाठ होगा। **रागलक्षण** में तोड़ी मेल के सब स्वर कोमल हैं तथा उसका नाम 'हन्नुमतोड़ी' कहा है। हमारे हिन्दुस्तानी तोड़ी ठाठ को इस ग्रन्थ में 'शुभपन्तुवराली' नाम दिया है ।

१९१८ ई० में ही अखिल भारतीय सङ्गीतपरिषद में तोड़ी के विभिन्न प्रकारों की चर्चा करते हुए इसका एक प्रकार बिलासखानी तोड़ी तथा इसे भैरवी के स्वरों ही गाया गया, इसके पश्चात् गुर्जरी अथवा गुजरी तोड़ी के सम्बन्ध में यह निश्चित हुआ कि शुद्ध तोड़ी में जो पंचम होता है, उसे निकाल दिया जाय तो गुजरी उत्पन्न होती है। परन्तु आचार्य्य बृहस्पति का कथन है कि गूजरी गाते समय तानपूरे का बांयी तंत्री को कोमल धैवत में मिलाया जाना चाहिए। उनका कहना है कि शुद्ध तोड़ी में सिर्फ पंचम निकाल देने से ही गूजरी तोड़ी नहीं बन जाता, गूजरी तोड़ी में गाते या बजाते समय

Scanned with OKEN Scanner

धैवत तथा सम्वादी स्वर गांधार है। 'नि़ स रे ग ऽ रे ग ऽ रे स' इतने स्वरों से तोड़ी दिखाई देने लगती है। तोड़ी गाने का समय दिन का दूसरा प्रहर है। कुछ विद्वान आसावरी, जौनपुरी, गांधारी, देसी तथा खट ये तोड़ी के प्रकार मानते हैं तथा उन्हें उसी प्रहर में गाते हैं। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि तोड़ी या शुद्ध तोड़ी ये पृथक-पृथक राग हैं या नहीं। सन् १९१८ ई० में दिल्ली की अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद में तोड़ी के विभिन्न प्रकारों पर चर्चा हुई थी। उस सभा में हिन्दुस्तान के बहुत से प्रसिद्ध गुणी एकत्र हुए थे। वहाँ चर्चा करते समय बीच-बीच में गुणी लोग अपने गीत गाकर दिखाते थे तथा चर्चा करते थे। उसी सभा में यह बात भी चर्चा का विषय बनी थी कि **शुद्ध तोड़ी, दरबारी तोड़ी** तथा **मियां की तोड़ी,** ये तीनों प्रकार अलग-अलग हैं अथवा एक ही प्रकार के ये विभिन्न नाम हैं। इस विषय पर बहुत छानबीन हुई तथा यह तय हुआ कि 'शुद्ध तोड़ी,' 'दरबारी तोड़ी' तथा 'मियाँ की तोड़ी' ये तीनों नाम एक ही प्रसिद्ध राग तोड़ी के हैं।

मुनि शार्ङ्गदेव ने रत्नाकर में इस प्रकार कहा है कि 'तोड़ी' राग 'शुद्ध षाडव' नामक ग्रामराग से उत्पन्न होता है। रागतंरगिणी, सद्राग चन्द्रोदय, नृत्यनिर्णय, सङ्गीतपारिजात, सभी ग्रन्थों में तोड़ी का वर्णन है। दक्षिण के ग्रंथकारों में रामामात्य की **स्वरमेल कलानिधि** में भी तोड़ी का वर्णन मिलता है। 'राग विबोध' में भी तोड़ी का वर्णन मिलता है। व्यंकटमखी ने तोड़ी राग को देशीराग की नामावली में लिया है। अपने हिन्दुस्तानी तोड़ी मेल को उन्होंने 'शैवपन्तुवराली' नाम दिया है। तुलाजीराव ने अपने तोड़ी मेल को 'सिन्धुरामक्रिमेल' कहा है। चतुर्दण्डि में तोड़ी मेल को 'जनुतोड़ी' नाम दिया है। वह हमारा भैरवी ठाठ होगा। **रागलक्षण** में तोड़ी मेल के सब स्वर कोमल हैं तथा उसका नाम 'हन्नुमतोड़ी' कहा है। हमारे हिन्दुस्तानी तोड़ी ठाठ को इस ग्रन्थ में 'शुभपन्तुवराली' नाम दिया है ।

१९१८ ई० में ही अखिल भारतीय सङ्गीतपरिषद में तोड़ी के विभिन्न प्रकारों की चर्चा करते हुए इसका एक प्रकार बिलासखानी तोड़ी तथा इसे भैरवी के स्वरों ही गाया गया, इसके पश्चात् गुर्जरी अथवा गुजरी तोड़ी के सम्बन्ध में यह निश्चित हुआ कि शुद्ध तोड़ी में जो पंचम होता है, उसे निकाल दिया जाय तो गुजरी उत्पन्न होती है। परन्तु आचार्य्य बृहस्पति का कथन है कि गूजरी गाते समय तानपूरे का बांयी तंत्री को कोमल धैवत में मिलाया जाना चाहिए। उनका कहना है कि शुद्ध तोड़ी में सिर्फ पंचम निकाल देने से ही गूजरी तोड़ी नहीं बन जाता, गूजरी तोड़ी में गाते या बजाते समय

Scanned with OKEN Scanner

तोड़ी के स्वरों में पंचम वर्जित करके मारवा की चाल रखनी चाहिए तथा गूजरी तोड़ी गाते समय 'ध़ - रे़' की जोड़ी चमकती रहनी चाहिए जबकि मियाँ की तोड़ी में 'ध़ - ग' की जोड़ी चमकती रहनी चाहिए। ग्वालियर के एक दो गायक गूजरी गाते समय भी अन्तरे में पंचम का थोड़ा सा प्रयोग करते भी सुनाई दिए हैं। इसके पश्चात् जौनपुरी तोड़ी की चर्चा हुई। यह प्रकार नया तथा सरल होने के कारण इस पर अधिक चर्चा नहीं हुई। यह राग **गांधारी** नामक प्राचीन राग से गायकों ने उत्पन्न किया। इसमें तीव्र ऋषभ लिया जाना चाहिए ये भी सर्वसम्मति से माना गया। इसके पश्चात् **'गान्धारी तोड़ी'** के विषय में चर्चा हुई। इस राग के कुछ अंग जौनपुरी जैसे तथा कुछ आसावरी जैसे हैं। गांधारी के आरोह में चढ़ी ऋषभ तथा अवरोह में उतरी ऋषभ लेनी चाहिए। ऐसा करने से आसावरी, देसी तथा जौनपुरी से सहज ही पृथक हो जायेगी, ऐसा निश्चित हुआ। इसके पश्चात् 'आसातोड़ी' के विषय में चर्चा हुई। यह राग आसावरी तथा तोड़ी मिलाकर गाया जाता है। इसमें सब स्वर कोमल तथा अवरोह में गान्धार वर्जित करने का नियम बताया गया। तत्पश्चात् **लक्ष्मी तोड़ी** के विषय में चर्चा हुई। इसमें दोनों गान्धार, दोनों निषाद तथा दोनों धैवत का प्रयोग किया गया। इसके बाद **बहादुरी तोड़ी** चर्चा का विषय बना, इस तोड़ी में दोनों ऋषभ, गांधार कोमल, मध्यम तीव्र, पंचम, धैवत कोमल तथा तीव्र निषाद का प्रयोग हुआ।

लक्ष्मी तोड़ी

१९१८ ई० में जब अखिल भारतीय सङ्गीतपरिषद् का आयोजन दिल्ली में हुआ था, तब स्व० भातखण्डे जी के एक गुरु रामपुर- नवाब स्वर्गीय हामिद अली खाँ परिषद् के अध्यक्ष थे और स्व० भातखण्डे जी के दूसरे गुरु साहबज़ादा सहादत अली खाँ ने मलार के प्रकारों पर एक सोदाहरण निबन्ध पढ़ा था। उस अवसर पर अनेक अप्रचलित रागों की चर्चा के समय 'लक्ष्मी तोड़ी' को केवल रामपुर के गायकों ने प्रस्तुत किया था। उपस्थित अन्य चालीस कलाकारों को इसका रूप ज्ञात न था।[१४] उस समय गायकों ने 'लक्ष्मी तोड़ी' में दोनों गांधार, दोनों धैवत, और दोनों निषाद प्रयुक्त किए थे।[१५]

इस घटना के सोलह वर्ष पश्चात् क्रमिक पुस्तक मलिका के पांचवे और छठे भाग की हस्तलिखित प्रति स्व० रातनजनकर जी ने तैयार की। क्रमिक पुस्तक मालिका के छठे भाग का प्रकाशन स्व० भातखण्डे जी के वैकुण्ठवास के पश्चात् हुआ, क्योंकि

Scanned with OKEN Scanner

स्व० भातखण्डे जी के स्वर्गवास के समय पाँचवा भाग छप रहा था।[१६]

अस्तु, क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग-६ में लक्ष्मी तोड़ी के तीव्र धैवत और तीव्र निषाद भी स्वर्गवासी हो गए। स्पष्ट है ती तीव्र निषाद और तीव्र धैवत से रहित 'लक्ष्मी तोड़ी' रामपुर-परम्परा की नहीं है।[१७]

'संकर' दो रागों का भी हो सकता है और अनेक रागों का भी दूध, पानी, चीनी मिल कर जब एकरूप हो जाते हैं, तभी इन तीनों घटकों या इकाइयों का 'संकर' होता है। विभिन्न रागों के उपयुक्त संकर से जो भी एक नवीन संकीर्ण राग बनता है, उसका एक अपना 'रंग' होता है, उसकी एक अपनी 'गंध' होती है।

किसी राग की दो एक बंदिशें घोट लेने से राग का विस्तार भली-भाँति स्पष्ट नहीं होता। बंदिश के आधार पर ही राग गाने-बजाने वाला व्यक्ति कुएं का मेढ़क है, सागर की लहरों में खेलने वाला कुशल तैराक नहीं। वह बंदिश बनाने वाले की सूझ में बंदी होता है, उसकी अपनी स्वतंत्र सूझ नहीं होती, क्योंकि वह विभिन्न रागों के संकर से निर्मित संकीर्ण राग के निर्माण के सिद्धांत से अपरिचित होता है और विभिन्न घटक रागों की चूल कुशलतापूर्वक बिठाने में कुशल नहीं होता।

संकीर्ण रागों में कुछ परस्पर संवादी स्वर गुच्छ ऐसे होते हैं, जो स्वयं राग-मिश्रण का परिणाम होते हैं, विवेकशील व्यक्ति इन्हें सदैव दृष्टि में रखते हैं।

एक स्वर-गुच्छ है— "नि ऽ नि सा रे ग म ऽ ग म ऽ म प ऽ प ग ऽ रे नि ऽ नि सा ऽऽ", इसका संवादी स्वर-गुच्छ है। " म ऽ म प ध नि ऽ नि सां ऽ सां रें रें नि ऽ ध म ऽ म प ऽऽ"। इन दोनों स्वर-गुच्छों में परस्पर संवादी स्वर प्रश्नोत्तर जैसा करते प्रतीत होते हैं। "ग ऽ रे नि ऽ नि सा ऽऽ" का जवाब 'नि ऽ ध म ऽ म प ऽ ऽ' है और 'सा रे म ऽ ग म ऽ' का जवाब 'प ध नि ऽ नि सां ऽ ऽ' है।

'ध ऽ म प ऽ ग ऽ रे' का जवाब ग ऽ सा रे ऽ नि ध है और इन दोनों स्वर गुच्छों में धैवत के दोनों रूप आ गए हैं।

'प ग ऽ सा रे ऽ रे नि ऽ नि सा ऽ' का जवाब 'रे नि ऽ प़ ध़ ऽ ध़ म़ ऽ म़ ऽ म़ ऽ म़ प़ ऽ' है ।

Scanned with OKEN Scanner

इन स्वर-गुच्छों में कोमल ऋषभ और तीव्र मध्यम के अतिरिक्त सभी स्वर आ गए हैं, परन्तु एक विशिष्ट क्रम और विशिष्ट सङ्गति के साथ आये हैं। इनमें कोई असङ्गति नहीं है।[१८]

आजकल जो तोड़ी प्रचार में है उसका प्रमाण या शास्त्राधार यही है कि प्राचीन ग्रन्थकार हमारे आज की तोड़ी को 'वराली' या वराटी कहते थे। उसी को आगे तोड़ी नाम दिया गया। उसके प्रमाणस्वरूप **सङ्गीतपारिजात** में तोड़ी वराटी संयुक्त नाम को प्रस्तुत किया जा सकता है। उसमें तीव्र निषाद स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया है किन्तु वह वराटी की व्याख्या से लेना पड़ेगा।

संदर्भ

१. क्रमिक पुस्तक मलिका खण्ड दो, पृ० ४२९
२. क्रमिक पुस्तक मलिका खण्ड दो, पृ० ४२९
३. क्रमिक पुस्तक मलिका खण्ड दो, पृ० ४२९
४. क्रमिक पुस्तक मलिका खण्ड दो, पृ० ४२९
५. क्रमिक पुस्तक मलिका खण्ड दो, पृ० ४३०
६. राग रहस्य (प्र०भा०), ले० आ० बृ०, पृ० २०४
७. राग रहस्य (प्र०भा०), ले० आ० बृ०, पृ० २०४
८. राग रहस्य (प्र०भा०), ले० आ० बृ०, पृ० २०४
९. राग रहस्य (प्र०भा०), ले० आ० बृ०, पृ० २०५
१०. राग रहस्य (प्र०भा०), ले० आ० बृ०, पृ० २०५
११. राग रहस्य (प्र०भा०), ले० आ० बृ०, पृ० २०५
१२. राग रहस्य (प्र०भा०), ले० आ० बृ०, पृ० २०५
१३. राग रहस्य (प्र०भा०), ले० आ० बृ०, पृ० २०८
१४. भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र भाग-४, पृ० ६७८
१५. भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग-४, पृ० ६७८
१६. भातखण्डे अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४६८
१७. सङ्गीतंचिन्तामणि, ले० आ० बृ०, पृ० ५९६-६०१
१८. भातखण्डे, सङ्गीतशास्त्र, ले० आ० बृ०, पृ० ६८

Scanned with OKEN Scanner

बिलावल थाट तथा राग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यहां पर हम थाट तथा राग बिलावल की चर्चा करेंगे। जैसा कि सभी जानते हैं स्व० भातखण्डे जी द्वारा १० थाटों की रचना की गयी, जिससे आधुनिक विद्यार्थियों को ऐसा प्रतीत होता है कि पहले किसी विद्वान ने ठाठ गढ़े, तदोपरान्त उन ठाठों से रागों की रचना की गई । भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र के प्रथम भाग में बिलावल की काफी चर्चा की गई है। सर्वप्रथम हम बिलावल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करते हैं। बिलावल एक (भातखण्डे जी द्वारा) शुद्ध ठाठ है, जिसे ग्रंथों में शंकराभरण कहा गया है। यहाँ इस बात की चर्चा करनी भी आवश्यक है कि जिन्हें हम आजकल शुद्ध स्वर मानते हैं वे प्राचीन ग्रंथों के शुद्ध स्वर नहीं हैं। यदि दक्षिण की ओर जाया जाय तथा वहाँ के किसी सङ्गीतज्ञ से केवल सात शुद्ध स्वर गाने या बजाने के लिए कहा जाय तो वह सुनने में कुछ नवीनता लिए हुए लगेंगे । उसके द्वारा प्रयोज्य स्वरों में हमें षड्ज, मध्यम, तथ पंचम (स,म,प) तो उत्तर भारतीय सङ्गीत के ही लगेंगे, परन्तु ऋषभ, गांधार, धैवत, तथा निषाद (रे, ग, ध, नि) अवश्य भ्रम में डाल देंगे, क्योंकि उत्तर भारतीय सङ्गीत के कोमल, ऋषभ, धैवत, दक्षिण के शुद्ध ऋषभ तथा धैवत होंगे तथा जो शुद्ध ऋषभ व धैवत उत्तर भारतीय सङ्गीत के हैं वे उनके क्रम में शुद्ध गांधार व निषाद होंगे, जो ग्रन्थ प्राचीन कहे जाते हैं, उनके शुद्ध स्वर बिलावल ठाठ के नहीं है। परन्तु ऐसा भी नहीं है आधुनिक पद्धति सर्वथा निराधार हो। चतुर पण्डित भातखण्डे कृत 'लक्ष्य-सङ्गीत' नामक ग्रंथ में, इस पद्धति को समर्थन प्राप्त होता है। संस्कृत ग्रंथों में बिलावल का नाम-बैलावली, बेलावल, बिलावली, आदि दिखाई पड़ता है। इनके राग रूपों में भेद पाया जाता है। किसी-किसी ग्रन्थ में 'बेलावली' में गांधार कोमल प्रयोग किया गया है। परन्तु प्रचार में तीव्र गान्धार का प्रयोग किया गया है। बहुमत से बिलावल का ठाठ 'शंकराभरण' ही माना गया है। 'शंकराभरण' दक्षिणात्यों का अत्यन्त ही लोकप्रिय राग है। इसी प्रकार उत्तर भारतीय सङ्गीत में भी बिलावल अत्यन्त ही लोकप्रिय राग है। ये दोनों ही राग प्रभातकालीन राग माने जाते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में 'शंकराभरण' को प्रभातकालीन राग बताया गया है। दक्षिणात्यों में 'विलहारी' नामक एक प्रकार है, जो कुछ-कुछ उत्तर भारतीय सङ्गीत के बिलावल

Scanned with OKEN Scanner

के काफी समीप है। 'जिस प्रकार सायंकालीन संधिप्रकाश रागों के पश्चात् कल्याण गाया जाता है, उसी प्रकार प्रातःकालीन संधिप्रकाश रागों के पश्चात् 'बिलावल' गाया जाता है। इसलिए इसे प्रातःकालीन 'कल्याण' नाम से भी जाना जाता है।[२] 'बेलावली राग के विषय में सङ्गीतदर्पणकार का मत यह है कि ये दो प्रकार की होती हैं- १. सम्पूर्ण बेलावली तथा २. औडव बेलावली। बेलावली प्रातर्गेय है और इसमें वादी स्वर धैवत को माना गया है तथा औड़ुव प्रकार में ऋषभ तथा पंचम स्वर वर्जित किए गए हैं।[३] 'रागविबोध' में 'बिलावली' शुद्ध स्वरों के थाट में कही गयी है तथा इसका वर्णन आधुनिक बिलावल से काफी मिलता है। कुछ विद्वान बिलावल तथा बेलावली को भिन्न-भिन्न राग मानते हैं परन्तु ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि 'राग विबोध' तथा 'दर्पण' में स्पष्ट रूप से बेलावली का थाट शंकराभरण बताया गया है। 'सङ्गीतसारामृत' में वेलावली में कोमल गांधार का प्रयोग किया गया है। 'स्वरमेलकलानिधि' में वेलावली को काफी ठाठ में रखा गया है। रागचन्द्रोदयकार ने वेलावली केदार मेल में बतायी है । दक्षिण में शंकराभरण थाट से निम्नलिखित लोकप्रिय राग गाये बजाये जाते हैं—

१. शंकराभरण, २. अठाणा, ३. आरभी, ४. कुरंजी, ५. केदार, ६. सावेरी, ७. बिलहरी, ८. बिहाग, ९. हंसध्वनि, १०. नवरोज तथा ११. देवगाँधारी।

इन रागों के आरोह-अवरोह दक्षिण की अनेक तेलगू ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं । वहां पर थाट तथा आरोह-अवरोह का अधिक महत्त्व है । उत्तर भारतीय सङ्गीत में बिलावल ठाठ में निम्न राग अत्यन्त लोकप्रिय हैं—

१. शुद्ध बिलावल, २. अल्हैया बिलावल, ३. शुक्ल विलावल, ४. देवगिरी, ५. नट विलावल, ६. कुकुभ, ७. मलुहा केदार, ८. गुणकली, ९. पहाड़ी, १०. देशकार, ११. माड़, १२. बिहाग, १३. शंकरा, १४. दुर्गा, १५. हंसध्वनि (कुछ विद्वान इसे कल्याण ठाठ का मानते हैं तथा यह मत अधिक सही प्रतीत होता है।) १६. हेम कल्याण, १७. सरपरदा, १८. लच्छासाख।

क्रमिक पुस्तक मलिका भाग २ में भातखण्डे जी अल्हैया बिलाबल के बारे में इस प्रकार लिखते हैं—

Scanned with OKEN Scanner

रागो वेलावलीति प्रथित इह सदा मान्यशुद्धस्वरेषु।
षड्जन्यासग्रहोऽयं प्रकृतिसुरुचिरो धैवतांशो गमंत्री॥

कल्याणांगं दधानो विलसति निगयोर्वक्रता चात्र नित्यं।
प्रातर्गेयोऽभिगीतो रमयति हृदयं शृणवतामेष पूर्णः॥ - कल्पद्रु मांकुरे

वेलावलीरागभवस्त्वल्हैया पूर्णो धवादि सहचारिगान्वितः।
मृदुर्निषादोऽभिमतोऽत्र किंचिदारोहणे मध्यमवर्जितोऽयम्॥ -कल्पद्रु मांकुरे

वेलावली मान्यशुद्धा गसंवादिधवादिनी।
गनिवक्रा तथा पूर्णा प्रातरेव हि गीयते॥
वेलावलीसमुद्भूत आरोहे वर्ज्यमध्यमः।
अल्हैया धगसंवादोऽवरोहे मृदुनिः क्वचित्॥। —चंद्रिकायाम्

मृदु मध्यम तीवर सबहि सुर सोहत जेहि माहिं।
ध-ग वादी-संवादी है, कहत बिलावल ताहि॥
मृदु मध्यम, सब तीख सुर, मध्यम सें न चढैया।
कहुँ निखाद कोमल लगत, ध-ग संवाद अल्हैया॥—चंद्रिकासार

सरौ गमौ पधौ निसौ निधौ पमौ गमौ रिसौ।
शुद्धवेलावली धांशा गेया ग्राह्णे मनोहरा॥
प्रारोहे चेन्मरिक्तासौ निद्वया गनिवक्रिता।
अल्हैया स्यात् सुविख्याता धैवतांशपरिष्कृता॥—अभिनवरागमंजर्याम्

यह राग बिलावल ठाठ से उत्पन्न होता है। इसकी जाति संपूर्ण है। इस राग में सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। वादी स्वर धैवत और संवादी स्वर गांधार है। गायन-समय प्रातःकाल का प्रथम प्रहर है। यह राग कल्याण-सरीखा ही दिखता है, अतः कभी कभी इसे प्रातः का कल्याण भी कहते हैं। इस राग में निषाद व गांधार स्वर वक्र गति से प्रयुक्त होते हैं। इसके आरोह में जब मध्यम वर्जित किया जाता है और अवरोह में किंचित् कोमल निषाद लेते हैं, तब गुणीजन इसे **अल्हैयाबिलावल** नाम देते हैं। प्रचार में अल्हैयाबिलावल अधिकतर सुनाई देता है।

Scanned with OKEN Scanner

बिलावल का आरोहावरोह-स्वरूप

सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सां । सां नि ध, प मग, रे सा

अल्हैया का आरोहावरोह-स्वरूप

सा, रे, गरे, गप, ध, निध, नि सां

सां नि ध, प, धनिधप, मग, मरे, सा

अल्हैया की पकड़:- गरे, गप, ध, निसां.

इनके अतिरिक्त बिलावल के कुछ और प्रकार भी माने जाते हैं, परन्तु उनका स्वरूप बहुत ही विवादग्रस्त है। बिलावल के जो भिन्न-भिन्न प्रकार प्रचार में गाये अथवा बजाये जाते हैं, उनमें से अधिकांश भेद सम्पूर्ण जाति के हैं तथा प्रायः सभी उत्तराङ्गवादी भी हैं। प्रत्येक भेद में राग के प्रमुख अङ्ग (बिलावल अङ्ग) को रखने के प्रयत्न में उनके अन्तरे समान दिखाई देते हैं। स्व० भातखण्डे जी के अनुसार बिलावल का एक निश्चित अवरोह इस प्रकार है। सां, निध, पधनि धप, म ग, म रे स। इस अवरोह के स्वरों का प्रयोग करते ही बिलावल स्पष्ट हो जाता है। उत्तराङ्गवादी रागों की यह विशेषता है कि वे राग के अवरोह में ही स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं। बिलावल के अवरोह में मध्यम स्वर अति महत्त्वपूर्ण है तथा इसे वर्जित नहीं किया जा सकता। मध्यम को वर्जित कर देने से देशकार का स्वरूप प्रकट हो जाता है । भारतीय सङ्गीत शास्त्र में प्रथम भाग के पृष्ठ १४१ में कहा गया है कि बिलावल में वादी स्वर धैवत तथा सम्वादी गांधार या ऋषभ को माना जाता है । गांधार को सम्वादी मानने का प्रचार अधिक है । किसी-किसी ग्रन्थ में बिलावल के स्वरूप में ऋषभ तथा पंचम वर्जित माना गया है, परन्तु ऐसा प्रचार में नहीं है। बिलावल राग के अवरोह में ध मे अथवा ध ग स्वरों की सङ्गति विशेष रूप से ली जाती है तथा इस प्रयोग से राग का सौन्दर्य बढ़ जाता है। कुछ विद्वानों द्वारा शुद्ध बिलावल तथा अल्हैया बिलावल, दो भिन्न राग माने जाते हैं। उनके मत के अनुसार शुद्ध बिलावल का आरोह अवरोह स रे ग म प ध नि सं तथा सं नि ध प म ग रे स होने चाहिए। इस प्रकार आरोह में मध्यम वर्जित कर देने पर तथा कोमल निषाद का अल्प प्रयोग कर देने से अल्हैया बिलावल

हो जाता है। शुद्ध बिलावल तथा अल्हैया बिलावल को अलग-अलग राग समझकर गाने बजाने वाले सङ्गीतज्ञ बिरले ही मिलेंगे। राग शुद्ध बिलावल की चर्चा करते हुए स्वर्गीय आचार्य्य बृहस्पति ने 'राग-रहस्य' प्रथम भाग के पृष्ठ० ६२ पर कहा है कि शुद्ध बिलावल का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है तथा वह आश्रय राग है । 'ग म प म ग म ग रे ग ऽ रे सा ऽ नि़ ध़' स्वर गुच्छ 'एमनीबिलावल' में शुद्ध बिलावल से ही गया है। सदारङ्ग परम्परा के ध्रुवपद 'पिया बिन कैसे' के स्थाई का सम मंद्र निषाद पर तथा 'अधरन की लाली' का सम मध्य षड्ज पर है। यह राग आलाप के योग्य है। स्मरण रखना चाहिए कि बिलावल ठाठ में 'भिन्न यमक' है अर्थात् इस ठाठ के परस्पर सम्वादी दो 'चतुस्वरक' 'सा रे ग म' और 'प ध नि सं' अपने आप में सवाल जवाब हैं। दोनों चतुः स्वरों का पृथक और स्वतंत्र व्यक्तित्व है। बिलावल ठाठ के 'म़ प़ ध़ नि़ स रे ग म' ही कल्याण ठाठ के 'सा रे ग मं प़ ध नि सं' को जन्म् देते हैं। बिलावल बुजुर्ग (प्राचीन) राग है, अतः कल्याण का जनक है। कल्याण के 'सा रे ग मं' और 'प ध नि सां' में सम्वाद न होकर 'रे ग मं प' का अंतिम तथा 'प ध नि सं' का आदिम स्वर है । कल्याण ठाठ का 'प ध नि सं' बिलावल ठाठ के 'स रे ग म' हैं। 'शुद्ध बिलावल' को प्रातः कालीन 'कल्याण' कहा जाता है। अतः बिलावल राग के निषाद को कल्याण के तीव्र मध्यम का तथा बिलावल राग के गांधार को कल्याण राग के निषाद का स्थानीय समझा जाना चाहिए। इसी कारण बिलावल राग के ' प़ ध़ नि़ ऽ ध़ स' कल्याण के 'रे ग मं ग प ऽ' हैं। बिलावल के 'ग म रे ग प ध नि ध सां ऽ' एमन के 'नि सां ध नि रे ग मं ग प' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। जो लोग सब स्वर चढ़े होने के कारण कल्याण को प्रथम ठाठ मानते हैं, उनके मत में कल्याण के 'मं' को उतारकर 'म' बना देने से बिलावल ठाठ का जन्म् होता है। भातखण्डे जी ने यही वर्णन किया है कि यदि बिलावल में कोमल निषाद का प्रयोग जैसे 'ध नि॒ ध प' करें तो अल्हैया बिलावल हो जाता है। आचार्य्य बृहस्पति द्वारा शुद्ध बिलावल में केवल बिलावल ठाठ के ही स्वरों का प्रयोग होता है। 'अल्हैया' में 'ध नि॒ ध प' प्रयोग बिलावल में प्रयोज्य 'ग म ग रे' के सम्वादी स्वर-गुच्छ के रूप में होता है। इस प्रकार 'अल्हैया' में 'ग म ग रे' के सम्वादी दो स्वर गुच्छ 'धनि॒ धप' तथा 'नि सं नि ध' हो जाते हैं। आचार्य्य बृहस्पति जी की दृष्टि में 'अल्हैया बिलावल' मिश्र मेल का राग है, जिसमें 'बिलावल' व 'खमाज' ठाठ उत्तरार्ध में मिले हैं। राग अल्हैया बिलावल को वह एक संकीर्ण राग मानते हुए कहते हैं कि अल्हैया के इस भाग में पूर्वोक्त 'शुद्ध बिलावल' मिला देने से अल्हैया

Scanned with OKEN Scanner

बिलावल बन जाता है। अत: अल्हैया बिलावल 'बिलावल खमाज' मेल का राग है, क्योंकि अल्हैया का 'ग म रे ग प ध नि ऽ ध प ऽ म ग प ऽ म ग रे सा ऽ' खण्ड निषाद की कोमलता के कारण खमाज ठाठ का भाग है। अत: यह सिद्ध है कि अल्हैया बिलावल जैसे संकीर्ण मेल 'बिलावल-खमाज' के अन्तर्गत ही वर्गीकृत किए जाने चाहिए।

'देवगिरी' राग के बारे में स्वर्गीय भातखण्डे जी कहते हैं —देवगिरी नाम दौलताबाद का प्राचीन नाम है । देवगिरी प्रचार में बिलावल राग का एक प्रकार माना जाता है। ग्रन्थों में देवगिरी बिलावल, इस प्रकार का संयुक्त नाम प्राप्त नहीं होता है। वरन् देवगिरी मात्र ही प्राप्त होता है।[४] किसी ग्रंथ में देवगिरी को कल्याण ठाठ में भी माना गया है अर्थात् उसमें तीव्र मध्यम ग्रहण किया जाता है। यह मत 'सङ्गीतपारिजात' का है। परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रचार में शंकराभरण ठाठ का ही देवगिरी गाया बजाया जाता है। परन्तु तीव्र मध्यम वाला प्रकार भी बुरा नहीं मालूम देता है। कल्याण ठाठ में 'देवगिरी' को यमन से अलग करना कठिन है। क्योंकि इसके अवरोह में ध ग वर्जित करने का नियम है। कल्याण ठाठ में इस प्रकार का दूसरा राग दिखाई नहीं देता है। माल श्री में रे-ध, हिंडोल में रे-प, तथा भूपाली में म-नि वर्जित है। परन्तु अवरोह में ध-ग वर्जित करने वाला राग एक भी नहीं आया है। इस प्रकार देवगिरी का वादी स्वर षड्ज होता है । प्रचलित देवगिरी का स्वरूप कल्याण के स्वरों से इतना मिलता है कि कभी-कभी इन दोनों रागों के स्थाई भाग अलग करना कठिन हो जाता है। सा, ऩि ध़ ऩि ध़, सा, रे ग, म रे ग, रे स। इन स्वरों को विलम्बित रूप में गाने पर बहुत सुंदर दिखाई देता है। इसमें कल्याण का भास उत्पन्न होता है, इसके लिए शुद्ध मध्यम लगा कर राग स्पष्ट कर देते जैसे 'ग म ग रे स'।[५] ऐसा पहले बताया जा चुका है कि पंडित अहोबल ने अवरोह ध ग वर्जित करने के लिए कहा है। कुछ गायक उस ही नियम का प्रयोग शंकराभरण ठाठ के देवगिरी राग में भी करते हैं। जैसे - प प ध नि, प, ग , म रे, सा, ऩि ध़, सा, रे ग म रे, सा। देवगिरी प्रभातकालीन राग माना गया है। यह उत्तराङ्गवादी राग है। इसका सौन्दर्य अवरोह में अधिक निखरता है। 'कुछ लोग अल्हैया तथा यमनी का मिश्रण कर देवगिरी गाते हैं परन्तु तीव्र मध्यम का प्रयोग बिल्कुल नहीं करते अन्यथा यमनी बिलावल से यह राग पृथक करना कठिन हो जाता है। कुछ ग्रंथकार बिलावल में पंचम वर्जित करते हुए भी देवगिरी का स्वरूप उत्पन्न करने का उल्लेख करते हैं। परन्तु यह मत प्रचार में नहीं।'[६]

प्राचीन ग्रंथों में इसके अलग-अलग नाम मिलते हैं जैसे- देवक्री, देवकी, देवकृति। परन्तु इस बात पर मतभेद है कि यह अलग-अलग राग हैं या एक ही राग के अलग-अलग नाम हैं। 'सारामृतकार' ने 'देवक्री' को कांभोजी थाट में बताया गया है। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' व 'राग-तरंगिणी' ग्रन्थों में इस राग का वर्णन नहीं है। 'स्वरमेलकलानिधि' ग्रन्थ में 'देवक्रिया' को कन्नड़-गौड़ थाट में बताया गया है तथा इसमें दोनों गांधारों तथा दोनों निषादों का प्रयोग बताया गया है। 'सङ्गीत सम्प्रदाय प्रदर्शिनी' नामक ग्रन्थ में 'देवक्रिया को केदार गौड़ थाट अर्थात् प्रचलित खमाज थाट में बताया गया है। आचार्य्य बृहस्पति सङ्गीत मासिक पत्रिका की' लेखमाला 'उस्ताद ने कहा था' के १६वें लेख में इस राग का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'यह कोई राज़ नहीं कि कल्याण ठाठ के पंचम को 'स' मान लिया जाय तो कल्याण ठाठ के 'प़ ध़ नि़ स रे ग मं प' ही बिलावल के 'सा रे ग म प ध नि सं' बन जाते हैं। जिनके पास यह नज़र है उन्हें बिलावल की किस्में गाने - बजाने में बड़ी आसानी रहती है। कल्याण ठाठ में मध्यम को शुद्ध कर देने से भी बिलावल ठाठ बन जाता है। यह दूसरी नज़र है । देवगिरी बिलावल गाने में दूसरी नज़र से ही काम लेना चाहिए, देवगिरी की फिरत मुश्किल कही जाती है, समझ-बूझकर करनी की जाए, तो कोई भी राग मुश्किल नहीं रहता। देवगिरी गाते समय आरोह के पूर्वाङ्ग में भोपाली तथा अवरोह में बिलावल रखा जाता है।' कुछ गायक इस राग के उत्तराङ्ग में कोमल निषाद का भी अल्प प्रयोग कर देते हैं। एक मत यह भी है कि 'यह राग शुद्ध कल्याण, कल्याण तथा बिलावल के मिश्रण से बना है। राग का विस्तार तीनों सप्तकों में होता है। राग के न्यास स्वर षड्ज, गांधार तथा पंचम हैं।' इस राग में सा, नि़ ध़, सा रे ग, ग रे ग, रे सा नि़ ध़ प़ ग स्वर कल्याण, 'ग रे स, नि़ ध़ प़ ग़, शुद्ध कल्याण तथा म ग म रे, सा ग प, नि ध, नि सां, ग प <u>नी</u> ध प आदि स्वर बिलावल से आये हैं।'[८]

एमनी बिलावल

एमनी बिलावल भी बिलावल का ही एक प्रकार है। 'एमनीबिलावल' का संयुक्त नाम सुनते ही समझ में आ जाता है कि यह राग यमन (एमन) और बिलावल का मिश्रण है। 'लक्ष्य सङ्गीतकार' के मतानुसार देवगिरी में तीव्र मध्यम को टालते जाना चाहिए तथा यमनी बिलावल में स्पष्ट रूप से दिखाते रहना चाहिए। इसका वादी स्वर षड्ज तथा संवादी स्वर पंचम है। यह एक आधुनिक राग है इसलिए

Scanned with OKEN Scanner

इसका ग्रंथाधार ढूंढना अधिक उचित नहीं है। क्योंकि यमन अपने आप में बहुत प्राचीन राग नहीं है। 'जिन रागों का नाम दो रागों के नामों से मिलकर बना हो। ऐसे मुरक्कब (संकीर्ण) रागों का नाम ही इस तरीके पर रखा जाता है कि यह पता चल जाय कि आरोह तथा अवरोह में किन–किन रागों का मिश्रण है। 'एमनी–बिलावल' के आरोह में 'एमन' तथा अवरोह में 'बिलावल' मिले हैं।[९] 'कुछ विद्वान इसमें भी 'धनि॒धप मंग मगरे' स्वर समूह प्रयुक्त करते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि यदि यह स्वर समूह इस राग में जायज़ होता तो यह 'एमनी–बिलावल' न होकर 'एमनी कल्याणी अल्हैया बिलावल' होता, क्योंकि 'एमनी बिलावल' के अवरोह में बिलावल रहना चाहिए। मं ग तो बिलावल की चाल में नहीं आता।'[१०]

शुक्ल बिलावल अथवा सुकल बिलावल

शुक्ल बिलावल अथवा सुकल बिलावल राग भी बिलावल के प्रचलित प्रकारों में से एक प्रकार है तथा इससे मिलता–जुलता राग नट बिलावल भी है। इस राग का भी कोई ग्रन्थाधार नहीं है, जिससे यह ज्ञात होता है कि यह भी बहुत प्राचीन राग नहीं है। इस राग में 'सा ग ग म' इस प्रकार का आरम्भ गायक कभी–कभी करते हैं। 'स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि इस थाट का आरोह अवरोह बिलावल थाट जैसा सरल है, परन्तु सारे राग की विचित्रता स्वर समुदाय की रचना पर तथा भिन्न स्थानों की विश्रांति पर आधारित है। दृढ़ नियमों की दृष्टि से ऐसे राग अधिक संतोषजनक नहीं होते।'[११] एक अन्य मत के अनुसार—'सुकुल बिलावल में केदार तथा बिलावल बड़ी खूबी के साथ मिलाए गए हैं । इस राग में मध्यम पर अधिक (न्यास) रहता है। यह असर केदार से आया है । 'म प म ऽ प ध म ऽ प ध सां ऽ ध प म ऽ ' जैसे हिस्से और 'रें सां ऽ ध प म म रे' जैसे टुकड़े केदार से आये हैं। पध॒ममरें कहने के के बाद 'पम गरेस' अथवा 'पमगमरेरेस' जैसे स्वर गुच्छ बिलावल के हैं। 'प ध म म रे प म ग रे स' में 'रे–प' सुकल बिलावल को खोल देता है। सुकल बिलावल के आरोह में ऋषभ तथा धैवत कमजोर हैं। गांधार व निषाद प्रबल हैं। कुछ लोगों को सुकल बिलावल में खमाज का मेल दिखाई देता है तथा कुछ को गौड़ मलार दिखाई देती है। तानपूरे की बांई जानिब का तार मध्यम पर मिलाकर सुकल बिलावल गाया जाना चाहिए। ऐसी हालत में सुकल बिलावल खिल जायेगा तथा गौड़ मलार या खमाज पास नहीं फटक पायेगा।''[१२]

Scanned with OKEN Scanner

राग कुकुभ बिलावल

राग कुकुभ बिलावल भी बिलावल का ही एक प्रकार है। यह एक संकीर्ण राग है। प्रचार में केवल कुकुभ नाम ही सुनाई देता है। बहुमत से कुकुभ बिलावल का ही एक प्रकार माना गया है। यद्यपि संस्कृत ग्रन्थों में 'कुकुभ-बिलावल' ऐसा संयुक्त नाम नहीं मिलता, परन्तु प्रचार में इसे बिलावल का प्रकार ही माना जाता है । कैप्टन विलर्ड ने- अपनी पुस्तक में बिलावल, पूर्वी, केदार, देवगिरी, मारु इतने राग कुकुभ के अङ्गभूत बताए हैं। दक्षिण की ओर किसी भी ग्रन्थ में इसका वर्णन नहीं पाया जाता। 'राग-तरङ्गिनी' में कुकुभ को कर्नाट मेल में रखा गया है। इस राग के बारे में भी विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ इसे अल्हैया बिलावल तथा जैजैवन्ती का मिश्रण मानते हैं तथा कुछ अल्हैया बिलावल तथा झिंझोटी का। परन्तु पहला मत ही प्रचार में अधिक है। इस राग का स्वरूप उत्तराङ्ग में ही खिलता है। जैजैवन्ती का रे ग रे स, **नी ध़ प़** रे, स्वर समूह इस राग में नहीं लगता। बल्कि जैजैवन्ती का देश वाला अङ्ग ध प म ग, रे, ग सा, लगता है। जब इन्हीं स्वरों में बिलावल का रूप जोड़ देते हैं, जैसे प ध नी सां, ध नि प, ध नी ध प, ध प म ग, रे ग सा, तब कुकुभ बन जाता है । इनके अतिरिक्त **सरपरदा** नामक राग की चर्चा भी 'रागविबोध' में भी की गई है। कर्नाट गौड़ की टीका में इसका नाम है। कर्नाट गौड़ राग में बिलावल मिलाने पर यह राग बन जाता है। यह राग मुसलमान गायकों द्वारा प्रचारित किया गया है। 'लक्ष्य सङ्गीत' में भी इस राग का वर्णन प्राप्त होता है। इस राग में बिहाग की छाया पड़ती है। अल्हैया बिलावल में यमन, गौड़ तथा बिहाग रागों के मिश्रण से बना हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि यह राग गौड़ मलार तथा अल्हैया बिलावल के मिश्रण से बना है। पूर्वाङ्ग में गौड़ मलार का रूप जैसे रे ग म, ग म प ग म, रे ग, रे म ग, रे सा तथा उत्तराङ्ग में प प ध नि सं, नि ध प स्वरों से बिलावल का रूप आता है। ग म प म ग स्वरों से बिहाग तथा प़ ध़ नी़, सा स्वरों से कल्याण की छाया प्रतीत होती है, परन्तु जब ध नी ध प म ग, म रे, द्वारा बिलावल स्वरों का प्रयोग करते हैं तब दोनों रागों की छाया नष्ट हो जाती है। अल्हैया बिलावल की भांति उत्तराङ्ग के अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग करते हैं। नट बिलावल नामक राग भी बिलावल का एक प्रकार माना जाता है। 'लक्ष्य सङ्गीत' के अनुसार यह राग नट तथा बिलावल के मिश्रण से उत्पन्न होता है। यह राग शुद्ध स्वरों के ठाठ से उत्पन्न होता है। पूर्वाङ्ग में नट राग का भाग रहता है तथा अवरोह में तथा उत्तरांग में बिलावल स्पष्ट हो

Scanned with OKEN Scanner

जाता है। पूर्वाङ्ग में नट का स्वरूप- स ग म, प म ग म रे, तथा जब इन्हीं स्वरों के बिलावल का रूप जोड़ देते हैं जैसे ग म रे, नी ध प, म, प म ग, म रे सा, तब यह नट बिलावल हो जाता है। इस राग में मध्यम खुले रूप में लगता है। जब पूर्वाङ्ग में नट प्रबल होने लगे तब बिलावल का रूप मग, म रे सा, जोड़ देना चाहिए और जब बिलावल प्रबल हो तब नट जोड़ देना चाहिए।

इनके अतिरक्त बहुत से अन्य प्रचलित प्रकार भी हैं जैसे **देशकार।** संस्कृत ग्रन्थों में इसका समय संध्याकाल बताया गया है । किसी-किसी ग्रंथकार ने देशकार को पूर्वी ठाठ में बताया है । 'सङ्गीतरागतरङ्गिणी' में देशकार का ठाठ गौरी माना गया है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे राग भी हैं जिन्हें कुछ विद्वान कल्याण ठाठ में तथा कुछ बिलावल ठाठ के अन्तर्गत रखते हैं। जैसे- भोपाली, हंस ध्वनि, शंकरा, जलधर, केदार, मलुहा केदार इत्यादि। एक महत्त्वपूर्ण राग जो आधुनिक काल में काफी प्रचार में है वह है **दुर्गा**। यह राग अप्राप्य रागों में से एक माना जाता है। इसे गाने के दो प्रकार प्रचलित हैं। खमाज अङ्ग का दुर्गा तथा बिलावल ठाठ का दुर्गा। यहाँ पर बिलावल थाट के दुर्गा का वर्णन किया जा रहा है। इसका वादी स्वर मध्यम माना जाता है । इस राग में शुद्ध मध्यम से ऋषभ पर बार-बार मींड ली जाती है। दुर्गा का आरम्भ प, म, प ध, म रे, म रे, प, इस प्रकार बारम्बार दिखाई पड़ता है । गायन समय रात्रि का दूसरा पहर है। कैप्टन विलर्ड ने मिश्र रागों के कोष्ठक में दुर्गा नामक एक राग बताया है तथा उसके अन्तर्गत माल श्री, लीलावती, गौरी तथा सारङ्ग रागों का नाम बताया है। ग्रंथों में शुद्ध स्वरों के ठाठ में एक 'सोम' राग बताया है, परन्तु उसके अवरोह में गांधार लिये जाने से उसका स्वरूप दुर्गा से भिन्न हो जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

संदर्भ

१. भारतीय सङ्गीत शास्त्र-प्रथम भाग, पृ० १३
२. भारतीय सङ्गीत शास्त्र-प्रथम भाग, पृ० १३८
३. भारतीय सङ्गीत शास्त्र-प्रथम भाग, पृ० १४१
४. भारतीय सङ्गीत शास्त्र-प्रथम भाग, पृ० १५३
५. भारतीय सङ्गीत शास्त्र-प्रथम भाग, पृ० १५३
६. भारतीय सङ्गीत शास्त्र-प्रथम भाग, पृ० १५५
७. सङ्गीत-१९७०, ले० आ० बृ०, जून,पृ० १७
८. राग प्रवीण, ले० राम कृष्ण व्यास, पृ० २८
९. सङ्गीत-जुलाई, १९७०, उस्ताद ने कहा था, ले० आ० बृ०, पृ० १८
१०. सङ्गीत-जुलाई, १९७०, उस्ताद ने कहा था, ले० आ० बृ०, पृ० १८
११. भारतीय सङ्गीत शास्त्र-प्रथम भाग, पृ० १८८
१२. सङ्गीत-अगस्त, १९७०, उस्ताद ने कहा था, ले० आ० बृ०, पृ० १४

Scanned with OKEN Scanner

ठाठ-सिद्धान्त या मेल-सिद्धान्त की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

'षड्ज' और 'पंचम' को अचल मानकर, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत तथा निषाद के चढ़े और उतरे, दो-दो रूप मानना, सप्तक के स्थान पर 'अष्टक' को राग वर्गीकरण का आधार मानना और प्रत्येक 'स्थान' (मन्द्र, मध्य और तार) में बारह-बारह ध्वनियाँ मानना ठाठ-पद्धति का सिद्धांत है। इस विधि का मूल यूनानी विचारक 'पायथॉगोरस' की पद्धति में है। अरब और ईरान में यह दृष्टि यूनान से ही आई और मुसलमानों के साथ इसका पदार्पण भारत में हुआ।

ईसा की चौदहवीं शती में 'अमीर खुसरो' और 'गोपाल नायक' का मिलन दिल्ली में हुआ।[१] इसी पद्धति के अनुसार 'गोपाल नायक' ने अपने विशिष्ट सम्प्रदाय (चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय) की स्थापना की[२] और 'आलाप', 'ठाय', 'गीत' और 'प्रबन्ध' को मिलाकर 'चतुर्दण्डी' कहा।[३]

चौदहवीं शती ई० में ही विजयनगर के महामंत्री विद्यारण्य ने उस युग में उस ओर प्रचलित पचास रागों का वर्गीकरण मेल-पद्धति के अनुसार किया।[४]

पन्द्रहवीं शती तक यह पद्धति दक्षिण में भली-भांति प्रतिष्ठित हो चुकी थी।[५]

उत्तर में यह पद्धति ठाठ-पद्धति कहलाई परन्तु एक 'पाठ' में एक स्वर के चढ़े और उतरे दोनों स्वरों का उपयोग 'ठाठ' में सम्भव नहीं था, जबकि 'मेल' में यह सम्भव था, हाँ 'मेल' में भी मध्यम के दो रूप नहीं आ सकते थे ।

अकबरी युग में विभिन्न ठाठों के मेलार्द्धों को मिला कर 'मिश्र-मेलों' का निर्माण हुआ और इस नई विधि से संकीर्ण रागों की सृष्टि की गई। अकबरी दरबार में अनेक भारतीय और अभारतीय गुणी लम्बे समय तक एकत्र रहकर परस्पर प्रभावित हुए थे, अतः राग की दृष्टि से नवीन प्रयोग हुए।

Scanned with OKEN Scanner

अकबरी दरबार के कलाकारों में तानसेन प्रधान थे। ये 'कलावन्त' थे और 'बैजू' की परम्परा में थे। इन्हें 'ग्राम-मूर्च्छना' पद्धति का भी ज्ञान था और 'ठाठ' पद्धति का भी ।[६] इस परम्परा के लोग मूर्च्छना की दृष्टि से स्वर-संज्ञाओं को 'गुप्त' और ठाठ के अनुसार स्वर-संज्ञाओं को 'प्रगट' कहते थे।[७] सम्भवतः बैजू ने ही वर्तमान 'भैरव' को 'प्रथम राग' कहा था। बैजू के युग में ही इस राग के 'ठाठ' को कर्नाटक पद्धति के राग-शिक्षण का आधार भी बनाया गया।[८] ऐसा प्रतीत होता है कि मानसिंह तोमर द्वारा पुनः स्थापित और नवीन रूप में प्रतिष्ठित ब्रजभाषा-ध्रुवपद-परम्परा में 'कव्वालों' को 'हिन्दुत्व' की गन्ध आई। वे स्वयं को जौनपुर की परम्परा का अनुयायी कहते थे। अतः 'कलावन्तों' और 'कव्वालों' के दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर रहा ।

अकबर की मृत्यु १६०५ ई० में हुई। इसके १०२ वर्ष पश्चात् औरंग़जेब का पुत्र (अर्थात् अकबर का सरपोता यानी अकबर के परपोते का पुत्र) बहादुरशाह १७०७ ई० में मुग़ल-राजसिंहासन पर बैठा। उस समय राजधानी दिल्ली थी।

दिल्ली में इस समय क़व्वालों का ज़ोर था। नेमत खाँ 'सदारङ्ग' की शिक्षा-दीक्षा इस युग में हो रही थी। ये एक बंगाली नटवे, एक तातारी क़व्वाल तथा महाकवि देव के शिष्य थे, इन्होंने अपने युग के अन्य अनेक गुणियों से भी शिक्षा ली थी ।

एक ओर 'सदारङ्ग' वीणा-वादक और ध्रुवपद-गायक थे, तो दूसरी ओर क़व्वालों की शैली के मर्मज्ञ भी। अतः इन्होंने 'सीधी पटली' के ख़याल को जन्म दिया, जिसमें राग शुद्ध रहता था और जिसमें दो 'धातु', 'स्थायी' और 'अन्तरा' थे।[९]

दूसरी ओर 'सदारङ्ग' ने उस 'कल्याण' ठाठ को 'प्रथम ठाठ' (अन्य ठाठों को जन्म देने वाला) कहा, जिसे वेंकटमखी ने 'तुरुष्कप्रिय' (तुर्कों या मुसलमानों को प्रिय कहा था)।

कल्याण को मूल ठाठ मानने का कारण केवल यही था कि उसमें सब स्वर चढ़े हुए थे और यह परम्परा 'कोमलता' (उतरे हुए होने) को 'विकार' मानती है।

Scanned with OKEN Scanner

यह परम्परा उन रागों को शुद्ध मानती थी, जिनमें एक विशिष्ट ठाठ से बाहर के किसी स्वर का प्रयोग नहीं होता था। जिन रागों में दो या कई 'ठाठों' का मिश्रण हो उन्हें 'मिश्र-मेल-राग' मानती थी ।

२. सदारङ्ग-परम्परा और रामपुर-दरबार

प्रथम रुहेल नवाब अलीमुहम्मद खाँ स्वर्गवास १७५० ई० में हुआ। ये मुहम्मद शाह रंगीले के मनसबदार थे, इसीलिए दिल्ली दरबार के कलाकारों में नवाब अलीमुहम्मद खाँ का प्रगाढ़ परिचय था। नेमत खाँ 'सदारङ्ग' तो इनका परम अनुग्रह था।

'सदारङ्ग' के भतीजे और दामाद, फीरोज़ खाँ 'अदारङ्ग' नवाब अली मुहम्मद खाँ के पुत्र नवाब सादुल्ला खाँ के आश्रित थे। मेंहदीसेन और करीमसेन जैसे लोग भी 'अदारङ्ग' के साथ-साथ इसी दरबार में थे।

'सदारङ्ग' और उनके वंशजों का सम्बन्ध रामपुर दरबार के साथ घनिष्ठ रहा।

अवध के नवाबों का उत्कर्ष जब हुआ, तब 'सदारङ्ग' के कुछ वंशज अवध चले गए, परन्तु वहाँ वीणा और ध्रुवपद के प्रति वास्तविक अनुराग न था। उस ओर के लोगों का स्वभाव एक विशेष प्रकार का था। 'सदारङ्ग' के वंशजों ने उस ओर के लोगों को सितार, सारंगी आदि की शिक्षा दी, कुछ शैकीनों ने उनसे होरी और ध्रुवपद भी सीखे, परन्तु उस ओर के लोगों की रुचि जैसी रही, वह स्पष्ट है ।

१८५७ ई० में जब वाजिद अली शाह का पतन हुआ, तब 'सदारङ्ग' के वंशजों में से बहादुर हुसेन खाँ 'सुरसिंगार वादक', अमीर खाँ, (बीनकार और ध्रुवपद गायक) तथा अमीर खाँ के भाई रहीम खाँ ने रामपुर के नवाब यूसुफ अली खाँ का आश्रय लिया। यहाँ इन की कला का अत्यन्त सम्मान हुआ। महा पण्डित दत्तराम जी भी इस युग में नवाब युसूफ अली खाँ के आश्रय में थे। बहादुर हुसैन खाँ ने महापण्डित दत्तराम से ज्योतिष के रहस्य सीखे और बदले में उन्हें सदारङ्ग परम्परा के रहस्य दिये ।

Scanned with OKEN Scanner

बिलावल	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
काफ़ी	स	रे	<u>ग</u>	म	प	ध	<u>नि</u>	सं
भैरवी	स	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सं
भैरव	स	<u>रे</u>	ग	म	प	<u>ध</u>	नि	सं

संश्लिष्ट यमक

जिन ठाठों में ऋषभ, गांन्धार, मध्यम और पंचम के, षड्ज-मध्यम-भाव से संवादी पंचम, धैवत, निषाद और षड्ज होते हैं, वहां स्वर 'संश्लिष्ट' यमक होता है । इस प्रथम 'चतुःस्वरक' का अंतिम स्वर पंचम ही द्वितीय 'चतुःस्वरक' का आरम्भक स्वर होने के कारण उभयपक्षीय (दोनों ओर चिपका हुआ) होता है, इसीलिए इसे संश्लिष्ट यमक कहा जाता है। कल्याण, नट-भैरवी और खमाज ठाठ में संश्लिष्ट यमक है-

कल्याण	स	रे	ग	मे	प	ध	नि	सं
नट भैरवी	स	रे	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	नि	सं
खमाज	स	रे	ग	म	प	ध	<u>नि</u>	सं

अपसृत भिन्न यमक

यह यमक 'स' से 'सं' तक न मिलकर 'नि़' से 'नि' तक या '<u>ध़</u>' से '<u>ध</u>' तक मिलता है। मध्य सप्तक से नीचे सरक जाने के कारण इसे 'अपसृत' (नीचे सरका हुआ) कहते हैं। 'पूर्वी' और 'तोड़ी' ठाठ में 'अपसृत भिन्न यमक' है।

पूर्वी	नि़	स	<u>रे</u>	ग	मे	प	<u>ध</u>	नि	सं
तोड़ी	<u>ध़</u>	नि़	स	<u>रे</u>	<u>ग</u>	मे	प	<u>ध</u>	<u>नि</u> <u>सं</u>

'नि़ ऽ ऽस <u>रे</u> ग ऽ ऽ, मे ऽ प <u>ध</u> नि ऽ ऽ' कहते ही 'पूर्वी' प्रत्यक्ष हो जाती है। मन्द्र निषाद प्रथम चतुःस्वरक का आरम्भक स्वर और 'मे' द्वितीय चतुःस्वरक का आरम्भक स्वर है ।

तोड़ी में 'ध' और 'ग' दोनों चतुस्वरकों के क्रमशः आरम्भक स्वर हैं, तोड़ी राग में इनकी प्रबलता इसीलिए है ।

षड्ज-पञ्चम हीन संश्लिष्ट यमक

यह यमक मारवा ठाठ में है, जो 'षड्ज और पञ्चम' का लोप करने से ही प्राप्त होता है —

मारवा नि़ (स) रे ग मं (प) ध नि सं

यहाँ 'नि़रेग' के सम्वादी 'गमंध' हैं। गांधार दोनों त्रिकों में होने के कारण संश्लिष्ट है। यह संवाद 'ग़मं़ध़' और 'नि़रेग' में भी हुआ। अस्तु, 'नि़' से आरम्भ होने के कारण यह यमक अपसृत 'ग' के उभयपक्षीय होने के कारण 'संश्लिष्ट' और षड्ज-पंचम लुप्त होने के कारण 'षड्ज-पञ्चमहीन' कहलाता है।

बीनकार लोग इसमें अपने 'ध' को खूब उभारते हैं, जो लोगों को 'ध' प्रतीत होता है। 'निखरजा' (षड्जहीन) मारवा गाने वाला भी एक सम्प्रदाय है। मारवा के आरोह में 'षड्ज' का परित्याग सभी करते हैं।

सदारङ्ग-परम्परा के लोगों ने 'एमन कल्याण', 'अल्हैया बिलावल' जैसे रागों का अन्तर्भाव मिश्र-मेलों में किया। विलावल के 'नि़सरेगम' और 'कल्याण' के 'मपधनिसं' को क्रमशः रखकर—

'नि़सरेगम । मंपधनिस'

जैसे मिश्र मेलों की सृष्टि की गई। इनमें उन रागों को रखा गया, जिनमें मध्यम के दोनों रूप आते हैं और अवशिष्ट स्वर चढ़े हुए हैं।

भैरव के '**नि़सरेगम**' और 'पूर्वी' के '**मंपधनिसं**' को क्रमशः रख कर—

'नि स रे ग म । मं प ध नि सं'

की सृष्टि की गई, जिसमें मध्यम के दोनों रूप आते हैं और ऋषभ धैवत कोमल है ।

आरोह में भैरव और अवरोह में भैरवी ठाठ रखकर एक मिश्र मेल की सृष्टि हुई, 'शिवमत भैरव' इस मिश्र मेल का राग है। 'भैरव' और 'भैरवी' के संयोग से उत्पन्न होने के कारण कोई चाहे, तो 'शिवमत भैरव' को इन दोनों का पुत्र कह सकता है।

आरोह में बिलावल और अवरोह में काफ़ी रखकर एक मिश्र मेल की सृष्टि की गई, 'जयजयवन्ती' का अन्तर्भाव जिस मेल में होता है ।

वेंङ्कटमखी के सम्प्रदाय में एक 'मेल' या 'राग' के अन्तर्गत दोनों मध्यमों का प्रयोग असंभव है, परन्तु सदारङ्ग-परम्परा तीव्र धैवत वाले ललित की स्वरावलि 'पूर्वी' ठाठ के पंचम को 'षड्ज' मानने से और कोमल धैवत के ललित की प्राप्ति तोड़ी ठाठ के पंचम को 'षड्ज' मानने से इस प्रकार होती है—

पूर्वी	**प़**	**ध़̱**	**नि़**	**स**	**रे̱**	**ग**	**म॑**	**प**
तीव्र धैवत का ललित-	**स**	**रे̱**	**ग**	**म**	**म**	**ध**	**नि**	**सं**
तोड़ी	**प़**	**ध़̱**	**नि़**	**स**	**रे̱**	**ग̱**	**म॑**	**प**
कोमल धैवत का ललित-	**स**	**रे**	**ग̱**	**म**	**म॑**	**ध̱**	**नि**	**सं**

अस्तु, हिन्दुस्तानी रागों के वर्गीकरण के लिए हम 'वेङ्कटमखी' की ओर न देखें, तभी कल्याण होगा। 'ललित' के दोनों रूपों को किसी भी मेल में नहीं रखा जा सकता । किसी ठाठ 'पंचम' को 'षड्ज' मान कर नवीन स्वरावलि की प्राप्ति करना सदारङ्ग-सम्प्रदाय में ही आता है ।

यह सत्य है कि 'सदारङ्ग' की परम्परा में पूर्वोक्त 'दस ठाठ' प्रधान माने गए हैं, परन्तु मिश्र रागों को उन दस ठाठों में ठूंसने की चेष्टा कभी नहीं की गई।

भैरवी के पूर्वार्द्ध के पश्चात् भैरव ठाठ का उत्तरार्द्ध रखकर 'सरेगमपधनिसं'में सदारङ्ग परम्परा ने अपना 'पीलू' गाया और खूब गाया ।

अस्तु, यह समझ लेना चाहिए कि 'सदारङ्ग-परम्परा' इस ठाठों को एक प्रारम्भिक दृष्टिकोण मात्र मानती है ।

Scanned with OKEN Scanner

सदारङ्ग–परम्परा में कल्याण से अन्य ठाठों की प्राप्ति के दो उपाय

सदारङ्ग–परम्परा **कल्याण** के 'मध्यम' को उतार कर **बिलावल** की, बिलावल के 'निषाद' को उतार कर '**खमाज**' की, खमाज के गांधार को उतार कर **काफी** की, काफ़ी के धैवत करे उतार कर **नटभैरवी** की और नटभैरवी के ऋषभ को उतार कर **भैरवी ठाठ** की प्राप्ति करती हैं।

दूसरी विधि में **कल्याण** के पंचम को 'स' मानकर **बिलावल,**बिलावल के पंचम को 'स' मानकर **खमाज,** खमाज के पंचम को 'स' मानकर, **काफी** के पंचम को 'स' मानकर **नट–भैरवी** और नट–भैरवी के पंचम को 'स' मान कर **भैरवी ठाठ** की प्राप्ति की जाती है ।

कल्याण से भैरवी तक यह शृंखला सम्पन्न हो जाती है ।

दूसरी शृंखला में कल्याण के ऋषभ को उतार कर **मारवा,** मारवा के धैवत को उतार कर **पूर्वी,** पूर्वी के गान्धार को उतार कर **तोड़ी** और पूर्वी के मध्यम को उतार कर **भैरव ठाठ** की प्राप्ति की जाती है ।

किसी ठाठ के 'उतरे' स्वरों को चढ़ाना और 'चढ़े' स्वरों को उतारना ठाठ लौटना कहलाता है।

नट भैरवी ठाठ को उलट कर **मारवा,**काफ़ी ठाठ को उलटकर **पूर्वी,** खमाज ठाठ को उलट कर **तोड़ी** और काफ़ी में मध्यम के अतिरिक्त अन्य स्वरों को उलट कर **भैरव** ठाठ की प्राप्ति की गई है ।

सदारङ्ग–परम्परा में रागों के शिक्षण का क्रम

सदारङ्ग –परम्परा में रागों के शिक्षण का भी उपर्युक्त विशिष्ट क्रम के अनुसार है। इस परम्परा में कल्याण की शिक्षा पर बड़ा बल दिया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

सदारङ्ग-परम्परा में कल्याण से अन्य ठाठों की प्राप्ति के दो उपाय

सदारङ्ग-परम्परा **कल्याण** के 'मध्यम' को उतार कर **बिलावल** की, बिलावल के 'निषाद' को उतार कर '**खमाज**' की, खमाज के गांधार को उतार कर **काफी** की, काफ़ी के धैवत करे उतार कर **नटभैरवी** की और नटभैरवी के ऋषभ को उतार कर **भैरवी ठाठ** की प्राप्ति करती हैं।

दूसरी विधि में **कल्याण** के पंचम को 'स' मानकर **बिलावल,**बिलावल के पंचम को 'स' मानकर **खमाज,** खमाज के पंचम को 'स' मानकर, **काफी** के पंचम को 'स' मानकर **नट-भैरवी** और नट-भैरवी के पंचम को 'स' मान कर **भैरवी ठाठ** की प्राप्ति की जाती है ।

कल्याण से भैरवी तक यह शृंखला सम्पन्न हो जाती है ।

दूसरी शृंखला में कल्याण के ऋषभ को उतार कर **मारवा,** मारवा के धैवत को उतार कर **पूर्वी,** पूर्वी के गान्धार को उतार कर **तोड़ी** और पूर्वी के मध्यम को उतार कर **भैरव ठाठ** की प्राप्ति की जाती है ।

किसी ठाठ के 'उतरे' स्वरों को चढ़ाना और 'चढ़े' स्वरों को उतारना ठाठ लौटना कहलाता है।

नट भैरवी ठाठ को उलट कर **मारवा,**काफ़ी ठाठ को उलटकर **पूर्वी,** खमाज ठाठ को उलट कर **तोड़ी** और काफ़ी में मध्यम के अतिरिक्त अन्य स्वरों को उलट कर **भैरव** ठाठ की प्राप्ति की गई है ।

सदारङ्ग-परम्परा में रागों के शिक्षण का क्रम

सदारङ्ग -परम्परा में रागों के शिक्षण का भी उपर्युक्त विशिष्ट क्रम के अनुसार है। इस परम्परा में कल्याण की शिक्षा पर बड़ा बल दिया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

सदारङ्ग-परम्परा में वादी-सम्वादी एवं न्यास-अपन्यास स्वर

रागवाचक स्वर गुच्छ (स्थाय) और उसका सम्वादी स्वर-गुच्छ परस्पर 'सवाल-जवाब कहलाते हैं।' ये सवाल-जवाब षड्ज मध्यम भाव के आधार पर भी हो सकते हैं और षड्ज पंचम-भाव के आधार पर भी।

इन्हें इस सारणी में समझ लेना चाहिए। जैसे ऐमन में-

सवाल	जवाब
१. नि़ऽरेगऽरे नि़रे ध़ नि़ रे स ऽ।	म॑ ऽ ध नि ऽ ध म॑ ध ग म॑ ध प ऽ।
२. ध़ ऽ नि़ ऽ रे ग ऽ रे ऽनि़ रे ध़ ऽध़ स ऽऽ	ग ऽ म॑ ऽ ध ऽ नि ऽ ध म॑ ध ग ऽ ग ग प ऽ ऽ ।
ध ३. स ऽ नि़ ध़ नि़ ऽ ध़ स ऽ	प ऽ म॑ ग म॑ ऽ ग प ऽ
४. नि़सरेसनि़सनि़ध़नि़ऽध़ स ऽऽ	म॑पधपम॑ पम॑ऽगम॑ऽगपऽऽ

अर्थात् ठाठ-पद्धति में राग का आधार स्वर होने, तानपूरे पर निरन्तर गूंजने, राग के प्रत्येक स्वर के साथ उसकी सङ्गति होने, मन्द्र, मध्य और तार स्थान का विभाजक होने के कारण 'स' वादी स्वर कहलाता है। 'स्थायी' स्वर भी निरन्तर गूंजने के कारण यही है।

राग-वाचक 'स्थायी' की समाप्ति षड्ज पर होने के कारण षड्ज **वादी** है। 'षड्ज' पर समाप्त होने वाले स्थायों के संवादी स्थायों की समाप्ति यदि 'मध्यम' पर हो, तो राग विशेष में मध्यम संवादी है, यदि षड्ज पर समाप्त होने वाले स्थायों के संवादी स्थायों की समाप्ति 'पंचम' पर हो तो, राग विशेष में पंचम संवादी है। इस प्रकार यदि राग विशेष में 'षड्ज' (राजा) का अनुमोदन 'मध्यम' करता हो, तो वह संवादी (मंत्री) है, यदि 'पंचम' करता हो तो 'पंचम' 'संवादी' (मंत्री) है।

राग-वाचक स्थायों में 'षड्ज' के आगे पीछे लगकर राग की अभिव्यक्ति करने वाले स्वर षड्ज (राजा) के 'अनुवादी' (अनुचर) हैं। राग में संवादी 'मध्यम'

Scanned with OKEN Scanner

अथवा 'पंचम' के आगे पीछे लग कर राग की अभिव्यक्ति करने वाले स्वर 'संवादी' (मंत्री) स्वर के 'अनुवादी' (अनुचर) हैं।

'विवादी' का अर्थ 'वर्जित' या 'लोप्य' स्वर नहीं, अपितु 'रेग', 'धनि' 'गम', 'निसं', 'सरे', 'पध' जैसे द्विश्रुति अन्तराल अपने **मूल रूप** में 'विवादी' हैं, अलग-अलग रागों में इन 'द्विकों' में से एक स्वर 'केशाग्र' अन्तर विचलित होता है और 'इष्ट' स्थान प्राप्त कर लेता है ।

किसी 'गीत' 'स्थायी' या 'अन्तरा' में होने वाली एक आवृत्ति 'विदारी' (गीतखण्ड) है। विदारी का जिस मात्रा से आरम्भ है, उससे पहली मात्रा पर उसकी समाप्ति है, तभी यह आवृत्ति है। विदारी की समाप्ति यदि षड्ज, मध्यम, पंचम के अतिरिक्त जिस स्वर पर हो, वह 'अपन्यास' है।

षड्ज, मध्यम और पंचम के अतिरिक्त पूर्वाङ्ग में ऋषभ या गांधार और उत्तरार्द्ध में धैवत या निषाद पर अधिक ठहराव होता है। यही 'अपन्यास' स्वर है।

आजकल भ्रमवश 'अपन्यास' स्वरों को 'वादी' का 'संवादी' समझा जाता है।

मध्य षड्ज अर्थात् 'राग' का 'अपना घर' है, 'तार षड्ज', राग का गन्तव्य 'मंजिल' है, संवादी स्वर 'मित्र का घर' है। 'अपन्यास' स्वर रागरूपी यात्री के लिए 'वेटिंग रूम' या पड़ाव है।

'न्यास' का अर्थ अर्थात् 'निश्चिन्त होकर बैठने का स्थान है, मनुष्य 'अपने घर' से अधिक निश्चिन्त कहीं नहीं होता, वहीं चिन्तामुक्त होकर विश्राम करता है, इसलिए ठाठ-पद्धति(सदारङ्ग-परम्परा) में प्रत्येक राग का वादी 'षड्ज' होता है। वहीं से राग यात्रा का ग्रहण (आरम्भ) करता है, इसलिए प्रत्येक राग का 'ग्रह' स्वर भी सदारङ्ग परम्परा 'षड्ज' में है । प्रत्येक राग की समाप्ति 'षड्ज' पर ही होती है, इसलिए वही 'न्यास' स्वर है।

मेल-पद्धति में 'स' की जो स्थिति है, मूर्च्छना-पद्धति में वही स्थिति मूर्च्छना के आरम्भक स्वर की थी ।

Scanned with OKEN Scanner

वादी, संवादी इत्यादि शब्दों का जो अर्थ, आजकल लिया जाता है, वह सर्वथा भ्रामक है और अध्यापक एवं विद्यार्थियों के लिए उलझन का कारण बना हुआ है ।

राग की बढ़त के चार स्वस्थान

तानपूरे पर छिड़ने वाले जोड़े की ध्वनि मध्यसप्तकीय षड्ज है, तानपूरे की दाईं ओर के सब से मोटे तार पर छिड़ने वाली ध्वनि 'मन्द्र षड्ज' और तानपूरे की बाईं ओर के तार पर प्रायः मिलाई जाने वाली ध्वनि मन्द्र पंचम है।

राग की यात्रा का आरम्भ 'मध्य षड्ज' से होता है। मन्द्र 'षड्ज' अथवा मन्द्र स्थान के 'अपन्यास' (रागों में जो भी हो) से मध्य सप्तक के गान्धार (यदि राग में गांधार लुप्त है, तो मध्यम सप्तक के ऋषभ) तक राग के संचार (टहलने) का प्रथम स्वस्थान या 'पहला मुकाम होता है ।'

मन्द्रस्थानीय 'षड्ज' अथवा मन्द्र स्थानीय 'अपन्यास' स्वर से लेकर मध्यस्थानीय पंचम (यदि पञ्चम लुप्त हो, तो मध्य स्थानीय मध्यम) तक राग का दूसरा 'स्वस्थान' होता है ।

मन्द्र स्थानीय 'षड्ज' या मन्द्रस्थानीय अपन्यास स्वर से लेकर मध्य स्थानीय निषाद (यदि निषाद लुप्त हो, तो मध्य स्थानीय 'धैवत')तक राग का तीसरा 'स्वस्थान' होता है ।

मन्द्र स्थानीय षड्ज अथवा मन्द्र स्थानीय 'अपन्यास' से लेकर तार स्थानीय 'षड्ज' तार स्थानीय 'अपन्यास' स्वर या तार स्थानीय 'संवादी' स्वर तक राग का चतुर्थ स्वस्थान होता है ।

बीन में मन्द्र, मध्य, तार और अति तार, रूपकों के स्वर भी प्राप्त होते हैं, लोग भ्रमवश इन्हें अनुमन्द्र, मन्द्र, मध्य और तार समझते हैं। लोग भ्रमवश जिन्हें बीन का 'मन्द्र स्थान' समझते हैं, वह उसका मध्य स्थान है ।

गवैये जिन रागों को उत्तराङ्ग प्रधान (?) समझ कर चिल्लाते और अपने

Scanned with OKEN Scanner

प्राण दिये देते हैं, उनका आलाप बीनकार चैन से जिन स्वरों में करते हैं, उन्हें अनजान लोग मन्द्र स्वर समझते हैं।

बन्दिश याद करने और गाने का ढंग

सङ्गीत का प्रयोजन भाव की अभिव्यक्ति है, शब्द, करने का ढंग (पुराने गवैयों की भाषा में 'कहन' या 'कहना', राग, ताल, और लय का सुघटित रूप 'बंदिश' है।

'बंदिश' रूपी सुंदरी की 'हड्डियां' शब्द हैं। 'राग' उसका मांस और त्वचा है, 'सुरीलापन' उसकी 'कान्ति' हैं 'ताल' उसके शरीर का 'आकार' है, 'लय' उसकी 'अठखेलियाँ' हैं।

जिस शरीर में हड्डियां न हों, कम हों, या टूटी फूटी हों, उसकी दशा प्रत्यक्ष है ।

अतः सबसे पहले 'बंदिश' का साहित्य कण्ठस्थ होना चाहिए और उसका अर्थ समझ लिया जाना चाहिए। उसके पश्चात् उस साहित्य को अवग्रह सहित ताल में याद कर होना चाहिए। अच्छी बंदिश की एक 'विदारी' में एक 'वाक्यांश' पूर्ण हो जाता है। सभी विदारियाँ 'लय' में याद होने के पश्चात् ही उन्हें स्वरलिपि के अनुसार गाना चाहिए। गाते समय साहित्य का अर्थ स्पष्ट रहने से और लय-बद्ध रूप में याद होने से बंदिश सदैव याद रहती है और गाने में प्रभाव रहता है ।

सामान्यतया अच्छी बंदिश की पहली बिदारी में 'प्रथम स्वस्थान के स्वर', द्वितीय विदारी में 'द्वितीय स्वस्थान' के स्वर और तृतीय विदारी में 'तृतीय स्वस्थान' के स्वर रहते हैं, 'चतुर्थस्वस्थान' के स्वर प्रायः अन्तरे में रहते हैं।

प्रथम स्वस्थान की बढ़त करते समय प्रथम विदारी के शब्दों में आये हुए दीर्घ अक्षरों को बढ़त का आधार बना कर मुखड़ा पकड़ना चाहिए, द्वितीय स्वस्थान की बढ़त करते समय द्वितीय विदारी में आये हुए शब्दों के दीर्घ अक्षरों को बढ़त का आधार बनाया जाना चाहिए और 'तृतीय' स्वस्थान की ढ़त करते समय तृतीय विदारी में आये हुए शब्दों के दीर्घ अक्षरों को बढ़त का आधार बनाया जाना चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

यही स्थिति चतुर्थ स्थान की है, प्राय: अन्तरे से इस स्वस्थान में प्रवेश होता है।

पुराने लोग इसी शैली को 'बंदिश की गायकी' कहते थे।

एक स्वर से अन्य स्वर पर 'तैरते हुए' जाना चाहिए, फुदक कर या कूद कर नहीं। इसीलिए दीर्घ अक्षर को बढ़त का आधार बनाया जाता है।

अच्छी 'बंदिश' का 'स्थायी-अन्तरा' अच्छे ढंग से कहते ही सभा स्तब्ध हो जाती है।

इसका एक उदाहरण यहां दिया जा रहा है । पहले एक खण्ड को उसके प्रत्येक स्वर पर ताल देकर गाना चाहिए, इस क्रिया से स्वर यथास्थान बलपूर्वक लगेंगे ।

तत्पश्चात् एक एक मात्रा में उसी खण्ड के दो-दो स्वरों को एक एक मात्रा में गाना चाहिए। भले ही लय घटाना पड़े।

यह सिद्ध हो जाने पर एक एक मात्रा में चार चार स्वर कहना चाहिए।

रागों के साथ दिए हुए जिन 'पलटों' में आये हुए जिन स्वरों की संख्या चार से पूरी-पूरी विभाजित नहीं होती, उन्हें चौगुन लय में तब तक कहना चाहिए, जब तक कि पलटे का आरम्भिक चतु:स्वरक स्वर गुच्छ यथापूर्व स्थिति में न आ जाये। जैसे 'निरेगमंपमंमंगरेस' में दस स्वर हैं। इस स्वरगुच्छ को 'चौगुन' में यों कहना चाहिए-

'निरेगमं पमंमंग रेसनिरे गमंपमं मंगरेस'

इस प्रकार ताल देकर इस पलटे को कुछ देर 'ओकार' कुछ देर 'इकार', कुछ देर 'एकार' कुछ देर 'ऊकार' और अंत में 'आकार' में कहना चाहिए।

जब एक 'खण्ड' लय में सिद्ध हो जाये, स्वर सच्चे लगें, तब एक ही सांस में उस खण्ड को अधिक से अधिक बार कहना चाहिए, भले ही लय बढ़ा देना पड़े।

इसी प्रकार प्रत्येक राग में पलटों का अभ्यास करने से अभ्यास के समय भी आनन्द आने लगेगा। कुछ दिनों के पश्चात् स्वयं ही नये नये लयबद्ध संचार तत्काल समझने लगेंगे। 'लय' में लयबद्ध पलटों का अभ्यास करने से 'दाना' अच्छा बनता है ।

ताल में तान कहने का ढंग

यह स्मरण रखना चाहिए कि 'काल' अखण्ड है। 'ताल' के द्वारा हम किसी भी क्रिया के 'काल' को नापते है। 'ताल' का आधार 'मात्रा' है। 'मात्रा' सिद्ध हो जाने पर ताल स्वतः सिद्ध हो जाता है ।

उपर्युक्त स्वर खण्ड 'निरेगर्मपर्मर्मगरेस' को ही तीन ताल और एक ताल में देखिए-

×	२	०	३
नि़रेगर्म	पर्मर्म[redacted]	रेसनि़रे	गर्मपर्म
र्मगरेस	नि़रेगर्म	पर्मर्मग	रेसनि़रे
गर्मपर्म	र्मगरेस	नि़रेगर्म	पर्मर्मग
रेसानि़रे	गर्मपर्म	र्मगरेस	नि़रेगर्म
पर्मर्मग	रेसनि़रे	गर्मपर्म	र्मगरेस

आप यदि तीन ताल का ताल लगाकर वह पलटा दुहराते रहें, तो यह क्रिया स्वयं निष्पन्न हो जाएगी यही स्वर-खण्ड एक ताल में इस प्रकार आयेगा-

×	०	२	०	३	४
नि़रेगर्म	पर्मर्मग	रेसनि़रे	गर्मपर्म	र्मगरेस	नि़रेगर्म
पगर्मग	रेसनि़रे	गर्मपर्म	र्मगरेस	नि़रेगर्म	पर्मर्मग
रेसनि़रे	गर्मपर्म	र्मगरेस	नि़रेगर्म	पर्मर्मग	रेसनि़रे
गर्मपम	र्मगरेस	नि़रेगर्म	पर्मर्मग	रेसनि़रे	गर्मपर्म
र्मगरेस	नि़रेगर्म	पर्मर्मग	रेसनि़रे	गर्मपर्म	र्मगरेस

स्मरण रखिए, 'खाली' और 'भरी' की क्रिया अभ्यास के आये, उस

पर भी अनिवार्य रूप से ज़ोर देना ही चाहिए, थोड़े ही दिनों में करते करते यह काम स्वाभाविक हो जायेगा।

आपकी 'क्रिया' **रेल की पटरी** है, तो 'तान' ट्रेन है। **पटरी** यदि ठीक और मज़बूत है, तो **मालगाड़ी, पैसेंजर ट्रेन, एक्सप्रेस या मेल ट्रेन** उस पर हवा की तरह दौड़ती चली जायेगी। यदि 'पटरी' कमज़ोर या ढीली है, तो कोई भी ट्रेन लुढ़क जायेगी या पटरी से उतर जायेगी।

राग रहस्य प्रथम-भाग से साभार

नायक-नायिका भेद

शृंगार-युग की साहित्यिक रचनाओं का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि शास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माण करने के लिए आचार्य्यों तथा कवियों ने संस्कृत ग्रन्थों को आधार बनाया है। विषय का चयन भी उन्हीं ग्रन्थों से किया गया है और काव्य के सिद्धांतों का निर्णय करने के लिए भी आचार्य्य मम्मट, दण्डी और भामट्ट आदि का अनुसरण किया गया है। सङ्गीतशास्त्र के ग्रन्थों का निर्माण करते समय कवियों के सम्मुख संस्कृत सङ्गीत-ग्रन्थों के आचार्य्यों के ही आदर्श रहे हैं।

शृंगार रस के पक्ष में आचार्य्यों ने कहा है कि इस रस में स्थायी भाव रति की व्यापकता है, जो अन्य आठ रसों में नहीं है। अतः शृंगार रस जितना अधिक प्रभावशाली हो सकता है, उतना अन्य रस नहीं। सङ्गीत काव्य में हमें मुख्य रूप से शृंगार रस ही प्राप्त है। अन्य सभी आवश्यकतानुसार वर्णित हैं ।

सङ्गीत काव्य में नव रसों के अतिरिक्त एक रस को और लिया गया है, जिसे शृंगार रस का एक नवीन रूप भी कहा जा सकता है, वह है 'काम रस'। शृंगार रस का वर्णन स्वकीया, परकीया तथा गणिका नायिका, राधा, कृष्ण, गोपी, प्रेमिका, सखी तथा भक्त के हृदय में रति स्थायी भाव को रखकर किया गया है। सङ्गीत-काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् यह देखा जाता है कि एक नवीन भाव स्थायी बनकर आता है, जिसे हम 'काम' भाव की संज्ञा दे सकते हैं और यह भाव रति भाव से पृथक स्थान बनाता है ।

मनोवैज्ञानिकों ने प्रमाणित कर दिया है कि काम तत्त्व संसार के जड़ तथा चेतन प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है। मनुष्य चेतना प्रधान प्राणी होने के कारण इसकी अनुभूति करता है । यह काम तत्त्व प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विद्यमान रहता है। बालक उत्पन्न होते ही इस काम तत्त्व के कारण माता के प्रति आकर्षित होता है ।

काम भाव प्राणी को आत्म प्रदर्शन के लिए प्रेरित करता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है । आत्मप्रदर्शन का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है । शृंगार रस में डूबा व्यक्ति

(नायक अथवा नायिका)स्वयं आनन्दित होकर रह जाता है जबकि काम रस की अनुभूति प्राप्त नायिका किसी न किसी प्रकार प्रदर्शन करके अपने हृदय के भाव को प्रकट करती है ।

शृंगार रस के वर्णन में संस्कृत तथा हिन्दी कवियों ने विशेष रुचि दिखाई है, अतः नायक तथा नायिकाओं के गुण, अवस्था, रति तथा देश आदि के आधार पर भेद-प्रभेद बताए हैं ।

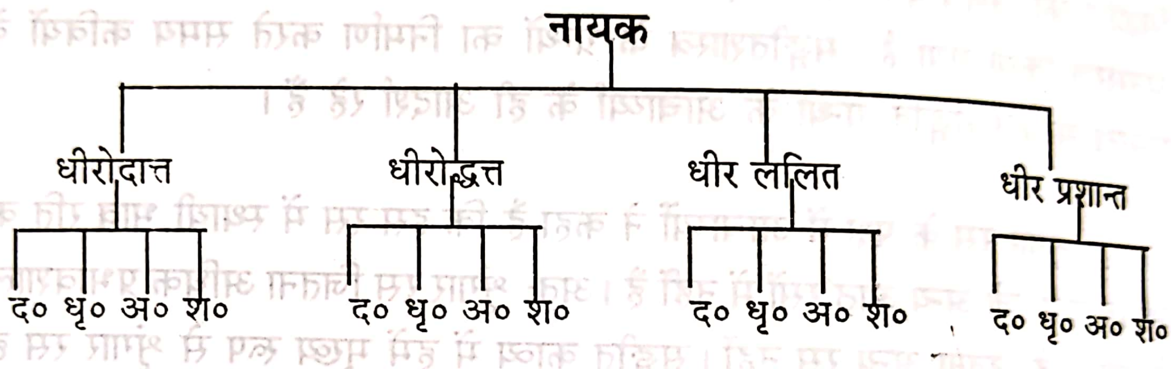

नोटः (द० -दक्षिण, धृ०- धृष्ट, अ०- अनुकूल, श०- शठ)

भारतीय मनीषियों ने नाटक अथवा महाकाव्य के नायक को अनुकरणीय, कुलीन, आदर्श और श्रेष्ठ माना है। इसीलिए महाकाव्यों एवं नाटकों का नायक कुलीन, आदर्श और इतिहास प्रसिद्ध होता है ।

प्रत्येक नायक को न तो दुःख में अधीर होना चाहिए और न सुख में बावला। इस दृष्टि से नायकों के चार भेद धीरोदात्त, धीरोद्धत्त, धीर ललित और धीर प्रशान्त हैं।

धीरोदात्त नायक

धीरोदात्त नायक अपनी प्रशंसा नहीं करता, क्षमाशील होता है। स्वभाव गंभीर और उसकी प्रकृति स्थिर होती है। वह अपनी बात का पक्का और मान का पूरा होता है। भगवान रामचन्द्र और महाराज युद्धिष्ठर धीरोदात्त नायक हैं।

Scanned with OKEN Scanner

धीरोद्धत्त नायक

धीरोद्धत नायक मायावी, प्रचण्ड, चपल, अभिमानी, शूर और अपनी प्रशंसा करने वाला होता है। भीमसेन धीरोद्धत नायक हैं।

धीर ललित नायक

धीर ललित नायक अत्यन्त निश्चिन्त, अति कोमल स्वभाव, नृत्य, गीत आदि कलाओं में निपुण होता है । प्रसिद्ध वीणावादक वत्सराज महाराज उदयन धीर ललित नायक है।

धीर प्रशान्त नायक

धीर प्रशान्त नायक त्यागी, प्रयत्नशील और शान्तिप्रिय होता है । भगवान बुद्ध और भगवान महावीर जैसे व्यक्ति धीर प्रशान्त कहलाते हैं ।

सामान्यतः इस प्रकार के नायक राजकुल अथवा राज्य परिवार से सम्बन्धित होते हैं। इन चारों नायकों के दाम्पत्य जीवन को देखते हुए इन चारों के चार-चार भेद किए जा सकते हैं। दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ।

अनुकूल नायक को केवल एक पत्नी में रत रहना पड़ता है। शठ अनेक स्त्रियों के साथ रहकर भी प्रेमिका को कपटी प्रेम करने वाला धृष्ट धृष्टता के साथ अनेक स्त्रियों के साथ एक साथ विहार करने वाला नायक होता है। दक्षिण नायक एक से अधिक प्रेमिकाओं को समान रूप से प्रेम करता है। सङ्गीत काव्य का नायक सर्वत्र दक्षिण नायक है। कृष्ण सभी गोपियों को समान भाव से प्रेम करने वाले हैं, अतः दक्षिण नायक हैं।राग नायक भी एकाधिक रमणियों के साथ आनन्द का उपभोग करते हैं। राग बसंत स्वयं कलाप्रेमी है और गायिका और नर्तकी तरुणियों के मध्य शोभित है ।

तन सुन्दर रूप अनूप ज्यौं पट पीत लसैं कर फूल हरी।
मधुरैं सुर गाय नचैं तरवनी सब प्रीतम के अनुराग भरी।
रितुराज बसंत विलोकत है, नव पल्लव वसु द्रुम कुंजहरी ।
'राग-रत्नाकर'—राधाकृष्ण

Scanned with OKEN Scanner

राग श्री भी कला में अत्यन्त 'प्रवीण' है, अतः 'तरुणी' को रिझाता है। मालव कौशिक भी कला में प्रवीण है और तरुणियों का मनोरंजन करता रहता है। यह स्वरूप धीर ललित, दक्षिण नायक का है। प्रत्येक राग नायक की पाँच-पाँच भार्या होने के कारण वह स्वतः दक्षिण नायक हो जाता है ।

नायक के धर्मानुसार भेद

धर्मानुसार नायक के तीन भेद माने गए हैं। पति, उपपति और वैशिक। इनमें से 'पति' के अपनी पत्नी के प्रति किए गए व्यवहार के आधार पर पाँच भेद माने गए हैं- (१) अनभिज्ञ, (२) दक्षिण, (३) अनुकूल, (४) शठ व (५) धृष्ट। उपपति के दो भेद हैं। (१) वचन चतुर (२) क्रिया चतुर। वैशिक नायक का कोई भेद नहीं होता है। इन सब के लक्षण इस प्रकार हैं—

१. अनभिज्ञ –जिस नायक को शृंगार की सरस क्रियाओं का लेशमात्र भी ज्ञान न हो वह अनभिज्ञ नायक कहलाता है ।

२. दक्षिण- अनेक पत्नियाँ होते हुए भी सबके प्रति समान अनुराग रखने वाला नायक 'दक्षिण' नायक कहलाता है। ऐसे नायक को सभी नायिकाएँ अपना ही प्यारा समझती हैं और कभी उससे मान नहीं करतीं।

३. अनुकूल- जो नायक अपनी विवाहिता स्त्री से पूर्ण रखता हुआ किसी अन्य स्त्री का कभी विचार भी नहीं करता उसे 'अनुकूल पति' कहते हैं।

४. शठ- जो नायक किसी अन्य स्त्री के प्रेमपाश में फँस कर अपनी धर्मपत्नी अथवा विवाहिता पत्नी से झूठ बोलकर अपना कुकृत्य छिपाए रखता है तथा अपनी कार्य्य-सिद्धि के लिए पत्नी से मीठी-मीठी बातें बनाकर उसके प्रति भी प्रेम प्रदर्शन करता रहता है, उसे 'शठ' नायक कहते हैं।

५. धृष्ट- जो नायक निरन्तर अपराध करने के उपरान्त भी निःश्शंक रहे और अनेक झिड़कियां खाने पर भी लज्जित न हो, किन्तु नम्र और निश्चल बना रहे तथा झूठ बोलने में जो तनिक भी संकोच न करता हो, वह 'धृष्ट' नायक कहलाता है ।

Scanned with OKEN Scanner

उपपति के भेद

परस्त्री में रमे रहने वाले पुरुष को 'उपपति' कहते हैं। वह जहाँ भी किसी सुन्दर स्त्री को देखता है वहीं उसको प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठता है । मधुमत्त भ्रमर के समान प्रत्येक कली का रसास्वादन ही इसकी वृत्ति होती है। उपपति के दो भेद बताए गए हैं—

१. वचन चतुर – जो उपपति वाकचातुरी से अपना कार्य्य सिद्ध करता है उसे 'वचन चतुर' कहते हैं।

२. क्रिया चतुर–छलकपट द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाला नायक 'क्रिया नायक' कहलता है ।

वैशिक नायक

जो नायक वेश्यानुरागी हो अर्थात वेश्यागमन करता हो, नि:शशंक तथा लज्जाहीन हो वह 'वैशिक नायक' कहलता है ।

अवस्थानुसार नायक भेद

अवस्थानुसार नायक के दो भेद माने गए हैं– १. मानी २. प्रोषित ।

१. मानी– अपनी प्रेमिका द्वारा किए गए अपमान से अप्रसन्न होकर मान करने वाला नायक 'मानी' कहलाता है ।

२. प्रोषित– प्रवास में जाकर अपनी प्रेमिका के विरह में व्याकुल नायक को 'प्रोषित नायक' कहते हैं।

नायकों के सहायक

पराक्रम में सहायक

जो व्यक्ति नायक की अपेक्षा गुणों से कुछ हीन हों परन्तु नायक की सहायता

Scanned with OKEN Scanner

करे उसे 'पीठ मर्द' कहते हैं। जैसे भगवान रामचन्द्र का सहायक 'सुग्रीव' पीठ मर्द है।

शृंगार में सहायक

स्वामीभक्त, वाक कुशल, विनोदी और कुपित वधू के मान को दूर कर सकने वाले सचरित्र लोग 'विट' (विलास में अपना धन लुटा देने वाले रसिक लोगों) 'चेट' (दासी पुत्र) और 'विदूषक' (मसखरे) शृंगार में सहायक होते हैं।

राजनीति में सहायक

स्वामीभक्त मंत्री, सेनापति, कोषाध्यक्ष इत्यादि राजकार्य्य में राजा के सहायक होते हैं ।

अंतःपुर में सहायक

राजमहल में रहने वाले बौने, नपुंसक इत्यादि अनुचर अंतःपुर में राजा के सहायक होते हैं।

नायकों के सात्विक गुण

शोभा , विलास, माधुर्य्य, गाम्भीर्य्य, धीरता, तेज, लालित्य और उदारता।

१. **शोभा**- शूरता, निपुणता, सत्य, उत्साह, अनुरागिता, नीच से घृणा और श्रेष्ठ से स्पर्धा ये आठ बातें मिलकर शोभा कहलाती है।

२. **विलास**- दृष्टि की धीरता, गति की विचित्रता और मुस्कराहट के साथ बोलना विलास कहलाता है।

३. **माधुर्य्य**-उद्वेग का कारण उत्पन्न होने पर भी उद्विग्न न होना माधुर्य्य है।

४. **गांभीर्य**-भय, शोक, क्रोध और हर्ष में भी निर्विकार रहना गांभीर्य है ।

Scanned with OKEN Scanner

५. **धीरता**-महान विघ्न होने पर भी प्रयत्न में विचिलित न होना धीरता है ।

६. **तेज़**-आक्षेप और अपमान आदि का कदापि सहन न करना तेज़ है ।

७. **लालित्य**-वाणी, वेष और शृंगार की चेष्टाओं में मधुरता लालित्य है ।

८. **उदारता**-मधुर भाषण के सहित दान तथा मित्र और शत्रु में समानता औदार्य्य है।

नायिका भेद

नारी और पुरुष के प्रेम का, कला के द्वारा वह चित्रण जो श्रोताओं और दर्शकों को तन्मय कर देता है शृंगार कहलाता है।

नायक की प्रेमपात्री नारी 'नायिका' कहलाती हैं। संबंध की दृष्टि से नायिकाएं **तीन प्रकार** की होती हैं—

स्वकीया-अपनी विवाहिता और गृहिणी पत्नी स्वकीया कहलाती है ।

परकीया- पराई स्त्री अथवा कन्या परकीया कहलाती है, जिस पर सामाजिक दृष्टि से नायक का कोई अधिकार नहीं होता है ।

सामान्या-६४ कलाओं में कुशल, रूपवती, गुणवती परन्तु पैसे पर बिकने वाली नारी सामान्या कहलाती है । इनको धन का लोभ होता है। इन्हें न तो गुण व सौन्दर्य से प्यार होता है और न तो मूर्खता व कुरुपता से चिढ़ होती है। ये सर्वजन भोग्या होती है अतः इन्हें गणिका या सामान्या कहते हैं।

राधा, स्वकीया नायिका के रूप में भी मिलती है और परकीया के रूप में भी। जहाँ दाम्पत्य भाव की प्रतिष्ठापना की गई है, वहाँ स्वकीया भाव दिखाया गया है। माधुर्य्य भाव की भक्ति में राधिका का परकीया रूप प्रसिद्ध ही है ।

केवल शृंगार ही वर्ण्य विषय होने के कारण **स्वकीया** के आयु भेद के तीन प्रकार हैं- मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा (प्रौढ़ा)

Scanned with OKEN Scanner

उपरोक्त तीनों के उपभेद धीरा, अधीरा और धीरा-धीरा हैं। इनमें भी अतीष्टा और इष्टा प्रभेद हैं।

परकीया के प्रमुख **दो** भेद परोढ़ा और कन्या हैं।

सामान्या के **तीन** भेद हैं -

सुरतिदुखिता, मानवती और गर्विता ।

अवस्था या स्थिति की दृष्टि से **आठ** प्रकार की नायिकाएँ हैं- स्वाधीन पतिका, खंडिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता, विप्रालब्धा, प्रौषितपतिका, वासकसज्जा और विरहोत्कंठिता

इनके भी उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा भेद दृष्टिगत होते हैं।

इस प्रकार नायिकाओं के ३८४ भेद होते हैं, जो निम्न तालिका से स्पष्ट हैं—

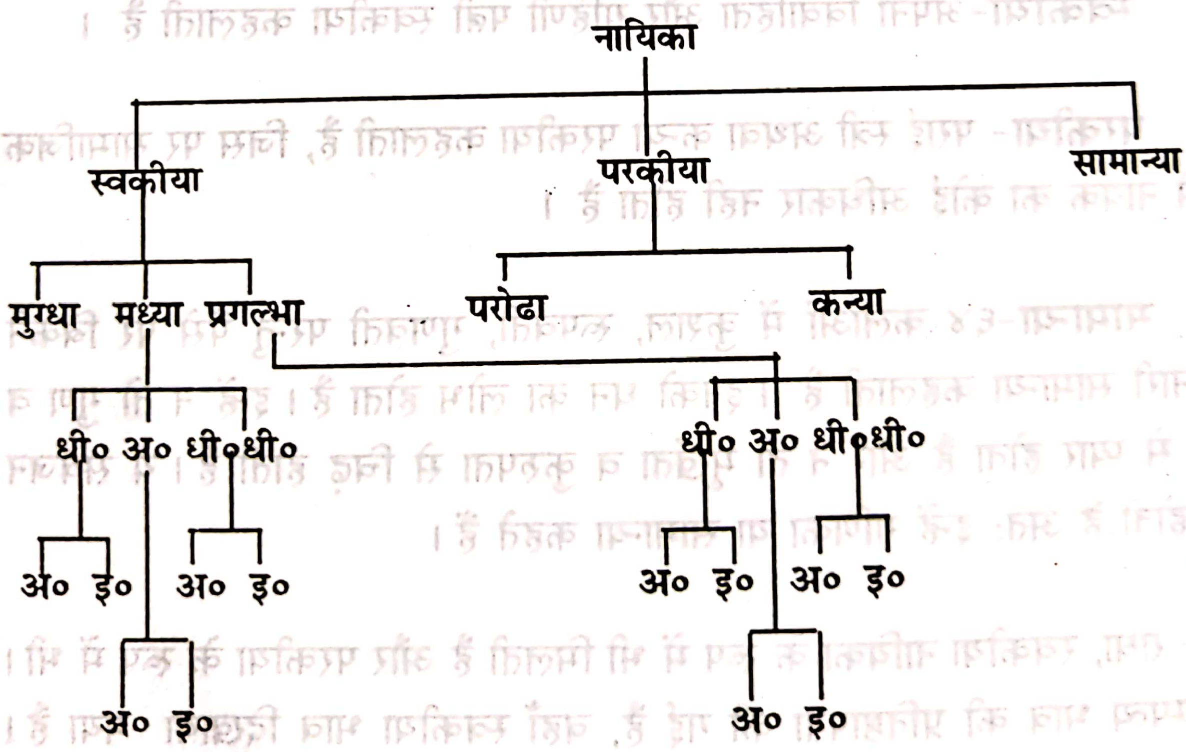

नोटः-(धी०-धीरा, अ०-अधीरा, धी०धी०-धीराधीरा,अ०-अतीष्टा, इ०-इष्टा)

सम्बन्ध की दृष्टि से १६ भेद

स्थिति की दृष्टि से ८ भेद
अतः कुल १६×८=१२८ भेद।
उत्तम, मध्यम और अधम
उपभेदों को मिलाकर कुल १२८×३=३८४ भेद

कथक नृत्य शिक्षा द्वितीय भाग (ले० डा० पुरुदधीचि)के पृ० २६९ पर नायिका भेद इस प्रकार दिए गए हैं—

नायिका भेद

धर्म्म, आयु, प्रकृति, जाति और अवस्था अर्थात परिस्थिति इन पाँच कारणों से नायिकाओं के अनेक भेद माने हैं—

१. धर्म्मभेद से -स्वकीया, परकीया व सामान्या
२. आयु विचार से- मुग्धा, मध्या व प्रगल्भा
३. जातिभेद से- पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी व हस्तिनी
४. प्रकृति के अनुसार - उत्तमा, मध्यमा व अधमा
५. अवस्थानुसार- खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीन पतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषितपतिका, आगतपतिका

मुग्धा

मुग्धा वह नायिका है, जिसमें नवयौवन का विकास अर्थात् काम-कलाओं का विकास पहले पहल प्रादुर्भूत हुआ हो। जिसके हृदय में लज्जा के कारण रति में झिझक और संकोन्च की मात्रा अधिक पाई जाती हो एवं जिसका मान अधिक समय तक स्थिर न रहे।

साधारणतः मुग्धा की चाल धीमी पड़ जाती है और अपने कमरे से बाहर निकलना उसे अच्छा नहीं लगता। कभी वह मन्द-मन्द मुस्कुराती है और कभी उसके मुख-मण्डल पर लज्जा एवं संकोच के भाव दिखाई देने लगते हैं। कभी-कभी कुछ गम्भीर वक्रोक्तियाँ उसके मुँह से निकल जाती हैं। वह हर क्षण प्रियतम की चर्चा करना और सुनना ही अपना ध्येय बना लेती है। नवयौवन विकास के समय मुग्धा के

Scanned with OKEN Scanner

स्वभाव में ही परिवर्तन नहीं होता बल्कि उसका शरीर भी बदलता हुआ दिखाई पड़ता है अर्थात् उसका बाल्यकालीन कटिप्रदेश तो पतला होने लगता है परन्तु नितम्बों में स्थूलता आ जाती है। उदर क्षीण होकर उरोज उभरने लगते हैं। चितवन में चाँचल्य और बाँकपन तथा चेहरे पर यौवन की उमंगों के प्रत्यक्षदर्शन होने लगते हैं। उदर पर नाभि से निकली रोम-राजि यौवन के आगमन की प्रतीक सी दिखाई देती है। मुग्धा अपने प्रियतम से मिलने के लिए सर्वदा उत्सुक रहती हुई भी झूठी झिझक के कारण अनिच्छा सी प्रकट करती रहती है।

मुग्धा-भेद

१. अज्ञात यौवना,
२. ज्ञात यौवना।

अज्ञात यौवना

जो नायिका मुग्धावस्था प्राप्त होने पर भी अपने भोलेपन के कारण यह नहीं जान पाती कि वह युवती हो गई है या जो अपने जीवन में एक विचित्र प्रकार के परिवर्तन के होते हुए भी उसका कारण नहीं समझ सकती, उसे अज्ञात यौवना कहते हैं।

ज्ञात यौवना

जिस नायिका को अपने अंकुरित यौवन का ज्ञान हो जाता है और जो अपने जीवन में एक नए प्रकार की झलक अनुभव करने लगती है उसे ज्ञात-यौवना की संज्ञा दी जाती है । ज्ञात यौवना कभी सकुचाती हुई सी इधर-उधर देखती है, कभी चंचलता पूर्वक चलती और कभी हाथ उठाती है। वह हर वक्त श्रृंगार की चेष्टा करती रहती है। उसे अपने अङ्गों का उभार देखकर बड़ा आनन्द आता है, परन्तु वही इस भाव को सखियों से छिपाए रखने की चेष्टा करती है।

ज्ञात-यौवना के दो भेद किए गए हैं- नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा।

नवोढ़ा-अत्यन्त भय और लज्जा के कारण जो नवविवाहता नायिका रति से

Scanned with OKEN Scanner

दूर रहना चाहती हो उसे 'नवोढ़ा' कहते हैं।

विश्रब्ध नवोढ़ा- जिस नायिका को अपने पति पर कुछ विश्वास तथा प्रेम और रति में अनुराग होने लगता है उसे 'विश्रब्ध नवोढ़ा' कहते हैं।

विवाह होकर नई पत्नी जब घर में आती है तब उस पर संकोच और भय का प्रभाव होता है। कभी-कभी तो संकोच से उसके मुँह पर लालिमा झलकने लगती है। प्रेमजनित लज्जा से उसके मुंह पर लालिमा आ जाना स्वाभाविक है। परन्तु ज्यों-ज्यों भय और लज्जा की मात्रा कम होती जाती है, त्यों ही त्यों उसमें प्रेमभाव और रति-अनुराग बढ़ता जाता है। वह नवोढ़ा से विश्रब्ध नवोढ़ा बनती दिखाई देती है।

इन भेदों के अतिरिक्त साहित्यदर्पणकार ने मुग्धा के ये पाँच भेद और बताए हैं— १. प्रथमावतीर्ण यौवना, २. प्रथमावतीर्ण मदन विकारा, ३. रतिवामा, ४. मानमृदु, ५. समधिक लज्जावती

मध्या

जिस नायिका के हृदय में लज्जा और कामेच्छा दोनों समान रूप से भरी रहती है, उसे 'मध्या' कहते हैं। मध्या नायिका में मुग्धा की तरह लज्जा की प्रबलता नहीं होती, जो वह प्रेम को प्रकट ही न होने दे। वह अपने पति के निकट आने पर शर्म से इधर-उधर छिपने की कोशिश नहीं करती प्रत्युत उसके पास ही बैठ जाती है। उस समय व झिझक के कारण रसीली बातों में आनन्द लेने में आनाकानी नहीं करती । एक ओर प्रेम का प्रभाव उसे पति के पास से उठने नहीं देता, दूसरी ओर लज्जा के कारण स्पष्ट रूप से हृद्‌गत भावों को प्रकट नही होने देती। प्रेम और लज्जा दोनों का पलड़ा समान बना रहता है, न पहला कम और न दूसरा अधिक। यह अवस्था बहुत सूक्ष्म और अचिर स्थायिनी होती है ।

मध्या भेद

साहित्यदर्पणकार ने मध्या के पाँच भेद बतलाए हैं- विचित्र सुरता, प्ररूढ़ स्मरा, प्ररूढ़ यौवना, ईषत्प्रगल्भवचना, मध्यमव्रीड़िता, किन्तु हिन्दी के कवियों ने मध्या के धीरा, धीराधीरा व अधीरा- ये तीन भेद ही माने हैं। इनके लक्षण इस प्रकार

Scanned with OKEN Scanner

हैं–

मध्या धीरा

पति के परकीया के पास जाने पर उसके कामकेलि सूचक चिन्हों को देखकर जो नायिका व्यंग द्वारा रोष प्रकट करती हुई भी पति के प्रति आदर भाव नहीं त्यागती वह 'मध्याधीरा' कही जाती है। यह नायिका नायक को उसकी अनुचित चेष्टा के लिए झिड़कती तो है परन्तु बातचीत में निरादर के भाव नहीं आने देती है। वह अपने पति से जानबूझकर पूछती है– कहिए, प्राणनाथ! आप कहाँ रहे? ऐसा क्या काम पड़ गया जो घर की सुध-बुध ही भूल गए। इस प्रकार की मीठी चुटकियों से वह पति को लज्जित कर देती है।

मध्या धीराधीरा

पति में परस्त्री के साथ की गई कामकेलि के चिन्ह देख रो-रो कर व्यंग्य वचनों द्वारा रोष प्रदर्शित करने वाली नायिका "मध्या धीराधीरा" होती हैं। जब नायक इस रूठी हुई नायिका को मनाता है, उसके निहोरे करता है, परन्तु वह रोती ही जाती है और बारबार व्यंगबाण छोड़ते हुए कहती है– मैं रोती हूं तो रोने दो। मेरे रोने से तुम्हें क्या होगा? मैं तुम्हारी कुछ लगती थोड़े ही हूँ, जो तुम्हें मेरा कुछ खयाल होगा।" इस प्रकार इस नायिका के कथन में कुछ प्रकट और कुछ गुप्त रोष होता है।

मध्या अधीरा

मध्या अधीरा नायिका नायक में रति-सूचक चिन्ह देखकर उससे एकदम रुष्ट हो जाती है और उसे कटुभाषणपूर्वक बड़े अनादर से भांति-भांति की झिड़कियां देने लगती है। जैसे– 'जाओ, जाओ जिस कुलटा से लगन लगी है उसी को प्रसन्न करो। मेरे समक्ष इस प्रकार की मुद्रा बनाने और धूर्तता दिखाने की आवश्यकता नहीं।'

प्रौढ़ा या प्रगल्भा

किंचित् लाज युक्त और सम्पूर्ण कामकला प्रवीण नायिका प्रौढ़ा या प्रगल्भा कहलाती है। प्रौढ़ा भय, संकोच और लज्जा को त्यागकर काम केलियों में समय

बिताना ही अपना ध्येय बना लेती है। उसके तन, मन और वचन में सदैव मदन–दुन्दुभी बजती रहती है। रात–दिन रति में रत रहने पर भी प्रौढ़ा की काम–वासना तृप्त नहीं होती ।

प्रौढा–भेद

प्रौढ़ा के धीरा आदि भेद के अतिरिक्त हिन्दी के रीति ग्रन्थों में 'रति–प्रीता' व 'आनन्द–सम्मोहिता' ये दो भेद और माने गए हैं।

रति–प्रिया

जो नायिका रति में अत्यन्त निरत रहती है, उसे 'रति–प्रिया' कहते हैं। रतिप्रीता नायक के बाहुपाश से एक क्षण के लिए भी अलग होना पसन्द नहीं करती। प्रातःकाल होने पर भी वह विविध बहाने बनाकर पति को यही भुलावा देना चाहती है कि अभी काफी रात बाकी है, तुम अभी से उठने की चिन्ता क्यों कर रहे हो।

आनन्द सम्मोंहिता

रति सुख से उत्पन्न आनन्द में निमग्न रहने वाली नायिका को 'आनन्द सम्मोहिता' कहते हैं। यह रति के आनन्द में इतनी विभोर हो जाती है कि इसे अपने तन बदन की भी सुध नहीं रहती । सम्भोग की अवस्था में सारा शृंगार जैसा अस्त–व्यस्त हो गया था वह वैसा ही दिखाई दे रहा है, परन्तु वह आँखें मूंदे सुरत–सुख की स्मृति में तल्लीन रहती है।

प्रौढ़ा धीरा

जो नायिका पति में परस्त्री–रति सूचक चिन्ह देख रतिक्रिया में मान सहित उदासीन रहे परन्तु पति के प्रति आदर भाव ज्यों का त्यौं बनाए रखे उसे 'प्रौढ़ा धीरा' या 'प्रगल्भा धीरा' कहते हैं। यह नायिका प्रियतम की इच्छा पूरी न कर बात को बड़ी चतुराई से उड़ा देती है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रौढ़ा धीराधीरा

प्रौढ़ा धीराधीरा व्यंग्य-वचनों द्वारा नायक की मानपूर्ण चुटकियाँ लेने तथा उसके प्रति तर्जन-ताड़न द्वारा क्रोध प्रकट करने में तनिक भी संकोच नहीं करती ।

प्रौढ़ा अधीरा

प्रौढ़ा अधीरा नायिका पति के शरीर पर अन्य स्त्री के साथ की गई रति के चिन्हों को देखकर उसे मानपूर्वक डांटती -डपटती और कभी-कभी उस पर प्रहार भी कर बैठती है ।

मध्या और प्रौढ़ा के अन्य भेद

स्वाभावानुसार मध्या व प्रौढ़ा के तीन अन्य भेद और बताए गए हैं, ये हैं- १. अन्य सुरत-दु:खिता, २-गर्विता, ३. मानवती। इनके लक्षण इस प्रकार हैं-

१. अन्य सुरत दु:खिता-किसी दूसरी स्त्री के शरीर पर अपने प्रिय से की गई रति के चिन्ह देखकर दु:खी होने वाली नायिका 'अन्य सुरत-दु:खिता' है ।

२. गर्विता- जो नायिका अपने रूप या प्रियतम के प्रेम का गर्व करती है और उसे वक्रोक्तियों के द्वारा प्रकट भी करती है उसे 'गर्विता' कहते हैं। शास्त्रों में इसके दो भेद बताए गए हैं- (अ) रूप-गर्विता, (ब) प्रेम गर्विता। कुछ लोग इसका एक भेद 'गुण गर्विता' भी मानते हैं। इन सब के लक्षण निम्नानुसार हैं।

(अ) रूपगर्विता- जो नायिका अपने रूप का गर्व करती है उसे 'रूप गर्विता' कहते हैं।

(ब) प्रेम गर्विता-पति प्रेम पर इतराने वाली नायिका को 'प्रेम गर्विता' कहते हैं।

३. मानवती- पति के अपराध से अप्रसन्न होकर मान करने वाली नायिका को 'मानवती' कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

स्वकीया के विशेष भेद

(अ) ज्येष्ठा-कनिष्ठा- जब किसी नायक के कई स्त्रियाँ हों तो उसकी सबसे अधिक प्यारी स्त्री 'ज्येष्ठा' तथा अन्य 'कनिष्ठा' कहलाती है ।

(ब) प्रौढ़ा के अन्य भेद- साहित्य-दर्पणकार ने प्रौढ़ा के छः भेद और भी बताए हैं जिनके नाम हैं- १. स्मरान्धा, २. गाढ़तारुण्या, ३. समस्त रति-कोविदा, ४. भावोन्नता, ५. दरव्रीड़ा, ६. आक्रान्त नायिका। हिन्दी के रीति ग्रंथकारों ने इन भेदों का उल्लेख नहीं किया है। इनके लक्षण इस प्रकार हैं-

१. स्मरान्धा- काम-केलि में अंधी होकर सुध-बुध बिसार देने वाली नायिका 'स्मरान्धा' है ।

२. गाढ़ तारुण्या- सविशेष तारुण्य युक्त नायिका 'गाढ़ तारुण्या' कही जाती है।

३. समस्त रति-कोविदा- रति के आसनादिक समस्त काम-कलाओं में निपुण नायिका 'रति कोविदा' है ।

४. भावोन्नता- भ्रू-कटाक्ष आदि संकेतों द्वारा रति विषयक मनोभाव प्रकट करने वाली नायिका 'भावोन्नता' कही जाती है ।

५. दरव्रीड़ा -जिसे काम-क्रियाओं में नाममात्र को लज्जा रह गई हो वह 'दरव्रीडा' नायिका है।

६. आक्रान्त-नायिका- सुरत के पश्चात् बिगड़े हुए शृंगारादि सँवारने के बहाने से नायक को पुनः रति-क्रीड़ा में प्रवृत्त कर मुग्ध होने वाली नायिका 'आक्रान्त' कही जाती है ।

परकीया नायिका

जो स्त्री छुप-छुप कर परपुरुष से प्रेम करे उसे 'परकीया' नायिका कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

परकीया के भेद

परकीया नायिका के दो भेद हैं- १. ऊढ़ा तथा २. अनूढ़ा परकीया। इनके लक्षण इस प्रकार हैं-

१. ऊढ़ा- जो विवाहिता स्त्री अपने पति से प्रेम न कर गुप्तरूप से परपुरुष से प्रेमपाश में फँसी रहती है वह 'ऊढ़ा परकीया' कहाती है।

२. अनूढ़ा- जो अपनी कौमारावस्था में ही गुप्त रूप से किसी पुरुष के प्रेमजाल में बंध जाती है उसे 'अनूढ़ा परकीया' नायिका कहते हैं।

ऊढ़ा-अनूढ़ा के भेद- उपर्युक्त ऊढ़ा व अनूढ़ा दोनों ही प्रकार की नायिकाओं के दो-दो भेद बताए गए हैं, जिनके नाम हैं - १. उद्‌बुद्धा, २. उद्‌बोधिता।

१. उद्‌बुद्धा- जो स्वयं अपनी ही इच्छा से प्रेरित होकर उपपति से प्रेम करती है वह 'उद्‌बुद्धा' कही जाती है ।

२. उद्‌बोधिता- जो स्त्री उपपति द्वारा प्रेरित होकर उसके प्रेम में प्रवृत्त हो जाती है उसे 'उद्‌बोधिता' कहते हैं।

परकीया के अन्य भेद

परकीया नायिका के अन्य छः भेद और माने गए हैं, जो इस प्रकार हैं- १. सुरत गुप्ता, २. विदग्धा, ३. लक्षिता, ४. कुलटा, ५. अनुशयाना व ६. मुदिता।

१. सुरत गुप्ता- परपुरुष के साथ की गई रति के चिन्हों को छुपाने वाली परकीया 'सुरत गुप्ता' कहलाती है।

यह सूरत गुप्ता नायिका तीन प्रकार की होती है- (अ) भूत सुरत संगोपना, (ब) वर्तमान सुरत संगोपना तथा (स) भविष्यत् सुरत संगोपना

(अ) भूत सुरत संगोपना- जो अपनी चतुराई से पिछली रति को छिपाती है उसे 'भूत सुरत संगोपना' कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(ब) वर्तमान सुरत संगोपना- वर्तमान रति को भी अपनी वाक्चातुरी व प्रत्युत्पन्न मति से छिपाने वाली नायिका 'वर्तमान सुरत संगोपना' हलाती है।

(स) भविष्यत् सुरत संगोपना- भविष्य के प्रेम-रहस्य को प्रकट न होने देने के लिए अभी से प्रयत्नशील नायिका 'भविष्यत् सुरत संगोपना' है ।

२. विदग्धा- चातुर्य और कौशल द्वारा छिपकर पर-पुरुष के साथ रति करने वाली नायिका को 'विदग्धा' कहते हैं। यह दो प्रकार की मानी गई है- (अ) वचन विदग्धा, (ब) क्रिया विदग्धा।

(अ) वचन विदग्धा- वाक् चातुरी से अपना कार्य्य साधने वाली परकीया नायिका को 'वचन विदग्धा' कहते हैं।

(ब) क्रिया विदग्धा- क्रिया चातुरी द्वारा अपना कार्य्य साधने वाली नायिका 'क्रिया विदग्धा' कहते हें।

३. लक्षिता- जिस परकीया का प्रेम-प्रसंग लक्षणों द्वारा लक्षित हो जाए उसे 'लक्षिता' कहते हैं।

कुछ लोगों ने लक्षिता के भी दो भेद किए हैं- (अ) हेतु लक्षिता व (ब) सुरत लक्षिता। हेतु लक्षिता में केवल परपुरुष से प्रेम ही लक्षित होता है किन्तु सुरत लक्षिता में काम-केलि के चिन्हों की भी स्पष्ट प्रतीति हो जाती है, जिससे सारा भेद खुल जाता है ।

४. कुलटा- जो स्त्री बहुत से नायकों से सुरत करके भी असंतुष्ट रहती है, उसे 'कुलटा' कहते हैं।

५. अनुशयाना- जो परकीया संकेत-स्थल नष्ट होने के कारण दुःखी होती है वह 'अनुशयाना' कहलाती है। इसके तीन भेद हैं- (अ) संकेत विघट्टना, (ब) भावी संकेत नष्टा, (स) रमण गमना। इन्हीं को क्रमशः प्रथमानुशायना, द्वितीयानुशयना व तृतीयानुशयाना भी कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(अ) संकेत विघट्टना- जो परकीया वर्तमान संकेत स्थान के नष्ट हो जाने से दु:खित होती है उसे 'संकेत विघट्टना' कहते हैं।

(ब) भावी संकेत नष्टा- जो नायिका संकेत-स्थल के भविष्य में नष्ट होने की आशंका से दु:खित रहती है उसे 'भावी संकेत नष्टा' कहते हैं।

(स) रमणगमना- जो परकीया प्रियतम के संकेत-स्थल पर पहुंच जाने का प्रमाण पाकर भी स्वयं वहाँ न पहुँच सकने के कारण दु:खी हो उसे 'रमणगमना' कहते हैं।

६. मुदिता- जो नायिका मनचाही साज-सज्जा तथा अन्य गतिविधियों को देखकर, अपनी अभिलाषा-पूर्ति के विचार से मन ही मन मुदित होती है उसे 'मुदिता' कहा जाता है ।

गणिका या सामान्या

गणिका या सामान्या वह स्त्री है जिसके जीवन का मुख्य लक्ष्य अपना रूप और यौवन बेचकर धन-संग्रह करना होता है। ये गणिकाएँ न जाने कितने प्रेमियों को अपने प्रपंच-पाश में फंसाती रहती हैं। कुछ लोगों ने गणिका दो प्रकार की मानी हैं- १. जननी आधीना, २. स्वतंत्रा। कुछ लोग 'नियमा' नाम से इसका तीसरा भेद भी मानते हैं।

१. जननी आधीना- जो गणिका माता के अधीन रहकर अपना व्यापार करे उसे 'जननी आधीना' कहते हैं।

२. स्वतंत्रा- जो गणिका स्वतंत्र रहकर अपना धंधा करती हो उसे 'स्वतंत्रा' कहते हैं।

प्रकृति के अनुसार नायिका भेद

प्रकृति के अनुसार नायिका के तीन भेद माने गए हैं- १. उत्तमा, २. मध्यमा व ३. अधमा।

Scanned with OKEN Scanner

१. उत्तमा–जो धर्मभावना युक्त उदार स्त्री पति द्वारा अपना अहित किए जाने पर भी उसका हित नहीं त्यागती और उसे दोषों को देखकर भी रोष नहीं करती बल्कि उन्हें छिपाती है तथा सदैव पति की सेवा में संलग्न रहती है उसे 'उत्तमा' नायिका कहते हैं।

२. मध्यमा– जो स्नेहशीला किन्तु शंकिता स्त्री प्रियतम के दोष देखकर कुछ कोप करती हुई व्यंग्य वचन सुनाती और दुःखी होती है तथा प्रिय के साथ व्यवहार नीति बरतती है उसे 'मध्यमा' नायिका कहते हैं।

३. अधमा– अकराण क्रोध करने वाली, दुष्ट प्रकृति, कटुभाषिणी, गुरु मानवती, पति के विरुद्ध आचरण करने वाली और उसके प्रेमपूर्ण व्यवहार के बदले उसका अहित व अपमान करने वाली नायिका 'अधमा' होती है ।

जाति के अनुसार नायिका भेद

जाति के अनुसार नायिका के चार भेद माने गए हैं– १. पद्मिनी, २. चित्रिणी, ३. शंखिनी, ४. हस्तिनी।

१. पद्मिनी– जो स्त्री अत्यंत सुन्दरी, सुकुमारी और अल्प रोमवती हो तथा जिसके शरीर से पद्मपुष्प (कमल) जैसी गन्ध आती हो जिसे सङ्गीत, नृत्य आदि कलाओं से लगाव हो उसे 'पद्मिनी' कहते हैं।

२. चित्रिणी– नृत्य गान व हँसी-मजाक में रुचि रखने वाली, शीलवती, अल्प लज्जायुक्त, विचित्र प्रकृति वाली स्त्री को 'चित्रिणी' कहते हैं। इसका मुखमण्डल चित्र के समान, शरीर मझोला, नाक तिल के फूल जैसी और नेत्र नील कमल जैसे होते हैं।

३. शंखिनी– जिस स्त्री का शरीर कृश, स्वभाव निर्लज्ज, घमण्डी और क्रोधी होता है उसे 'शंखिनी' कहते हैं। इसका कण्ठ शंख के समान तीन रेखा युक्त होता है।

४. हस्तिनी– जो स्त्री स्थूल शरीर, अधिक रोमों वाली, क्रोधिनी, उग्र स्वभाव, हाथी के समान झूम-झूम करन चलने वाली हो उसे 'हस्तिनी' कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

अष्ट-नायिका या अवस्थागत नायिका भेद

अवस्था (परिस्थिति) के विचार से नायिकाओं के आठ भेद बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं- १. प्रोषित पतिका, २. खण्डिता, ३. कलहान्तरिता, ४. विप्रलब्धा, ५. उत्कण्ठिता, ६. वासक सज्जा, ७. स्वाधीन पतिका और ८. अभिसारिका। ये ही आठ 'अष्टनायिका' के नाम से जानी जाती है किन्तु कुछ विद्वानों ने इसके दो भेद और माने हैं- प्रवत्स्यत् पतिका और आगत पतिका। इस प्रकार नायिका के अवस्थागत दस भेद हो जाते हैं। ये अवस्थागत भेद स्वकीया नायिका के मुग्धा, मध्या, प्रौढा अथवा परकीया या सामान्या सभी के हो सकते हैं।

१. **प्रोषितपतिका**- जो नायिका पति के परदेस चले जाने के कारण विरह व्यथित हो और केश-प्रसाधन आदि शृंगार न करती हो उसे 'प्रोषित पतिका' कहते हैं। यह पाँच प्रकार की मानी गई है- मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया व सामान्या प्रोषित-पतिका।

२. **खण्डिता**- जो नायिका अन्य नारी संभोग जनित रति-चिन्हों से युक्त पति को प्रात: समय घर आया देखकर उससे कुपित होती है उसे 'खण्डिता नायिका' कहते हैं । इसके भी मुग्धा आदि पाँच भेद हैं जो अपने अपने चरित्र के अनुरूप रोष प्रकट करती है ।

३. **कलहान्तरिता**- जो स्त्री पहले तो पति का अपमान करती है और फिर उसके चले जाने पर पीछे से पछताती है उसे 'कलहान्तरिता' नायिका कहते हैं। इसके भी मध्या आदि पांच भेद हैं।

४. **विप्रलब्धा**- जो स्त्री अपने प्रियतम को संकेत स्थान में न पाकर दु:खी होती है उसे 'विप्रलब्धा' नायिका कहते हैं। इसके भी मुग्धा आदि पांच भेद बताए गए हैं।

५. **उत्कण्ठिता**- जो नायिका संकेत-स्थान में पहुँच नायक को न पाकर उसके आने की प्रतीक्षा करती हुई चिन्तित होती है उसे 'उत्कण्ठिता' अथवा 'विरहोत्कण्ठिता' कहते हैं। इसके भी मुग्धा आदि पाँच भेद हैं।

Scanned with OKEN Scanner

६. **वासक सज्जा**- सुसज्जित भवन में सखियों के द्वारा सजकर, संभोग सामग्री सहित, समागम के लिए समुद्युत होने वाली नायिका 'वासक सज्जा' कही जाती है। इसके भी मुग्धादि पाँच उपभेद हैं।

७. **स्वाधीन पतिका**- जिसके रति-गुणों से वशीभूत होकर प्रियतम उसका संग नहीं छोड़ता, वह विचित्र विलासयुक्त नायिका 'स्वाधीन पतिका' या 'स्वाधीन भर्तृका' कही जाती है। इसके भी मुग्धादि पांच भेद माने गए हैं।

८. **अभिसारिका**- जो स्त्री काम के वशीभूत हो लज्जा त्यागकर संकेत-स्थान पर नायक को बुलाती या स्वयं वहाँ जाती है उसे 'अभिसारिका' नायिका कहते हैं। इसके मध्यमा आदि पांच भेदों के अतिरिक्त ये तीन भेद हैं- (अ) शुक्लाभिसारिका, (ब) कृष्णाभिसारिका, (स) दिवाभिसारिका। इन तीनों के लक्षण-उदाहरण इस प्रकार हैं-

(अ) शुक्लाभिसारिका- चाँदनी रात में उसके अनुरूप श्वेत वस्त्र धारण कर अभिसार के जाने वाली नायिका 'शुक्लाभिसारिका' है।

(ब) कृष्णाभिसारिका- जो नायिका अंधेरी रात में तदनुरूप काले या नीले वस्त्राभूषण धारण कर अभिसार के लिए निकले उसे 'कृष्णाभिसारिका' नायिका कहते हैं।

(स) दिवाभिसारिका- जो नायिका दिन में ही दिन के अनुरूप वस्त्राभूषण पहन कर अभिसार के लिए जाती है वह 'दिवाभिसाकिरा' है।

९. **प्रवत्स्यत् पतिका**- जो नायिका अपने प्रियतम के परदेस जाने का समाचार सुनकर व्याकुल हो उठती है उसे 'प्रवत्स्यत्पतिका' नायिका कहते हैं। इसके भी मुग्धादि पांच भेद माने गए हैं।

१०. **आगत पतिका**- जिस नायिका का हृदय प्रियतम के प्रवास से लौटने पर आनन्द से भर जाता है वह 'आगत पतिका' कही जाती है। इसके भी मुग्धा आदि पांच भेद हैं।

Scanned with OKEN Scanner

स्वकीया

जैनाचार्य्य पार्श्वदेव कृत 'सङ्गीतसमयसार' में नायक नायिका भेद का वर्णन बहुत विस्तार से किया गया है।

भारत के इतिहास का अध्ययन करने पर पता चलता है कि मुगल कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ कला को ऊंचा उठाने में कितनी सहायक सिद्ध हुई हैं। सङ्गीत-कला इस काल में अपनी चरम सीमा तक विकसित हुई। मुगल दरबारों में सङ्गीतज्ञों को एकत्रित किया जाता था। अबुल फ़ज़ल के अनुसार अकबर के दरबार में छत्तीस सङ्गीतज्ञ थे। अकबर की सङ्गीतप्रियता लोक प्रसिद्ध है। जहाँगीर के दरबार में भी सङ्गीतज्ञों के लिए अलग-अलग दिन नियुक्त थे। शाहजहाँ स्वयं गाता था और गायकों का आश्रयदाता था। औरंगजेब भी सङ्गीत समझता था। प्रत्येक आश्रयदाता अपने दरबारी गायक से रागमालाएँ लिखवा कर अपने दरबार की चित्रशाला अथवा पुस्तकालय में रखता था। परिणाम यह हुआ कि प्रतिभा कलाकारों के अधीन न होकर राजाओं के अधीन हो गई। दरबारी कवियों को अपने आश्रयदाताओं की आज्ञानुसार रचना करनी पड़ती थी। अतः राजाओं की रुचि सङ्गीत की और होने के कारण बहुत से सङ्गीतज्ञ कवियों ने रागमालाओं की रचना की, जिनमें रागों का वर्णन नायक और नायिका भेद के अनुसार शृंगार और रतिभाव से पूर्ण होता था। प्रत्येक राग नायक और रागिनी नायिका के रूप में वर्णित होता था। प्रत्येक सङ्गीत कवि अपनी रागिनी नायिका में किसी विशिष्टता और नवीनता का समावेश करता था और शैली में भी अलंकारिकता और चमत्कारिकता का अधिक से अधिक प्रयोग उसका लक्ष्य होता था।

रीतिकालीन युग में सङ्गीत आनन्द व मनोरंजन का साधन था। अत्यधिक शृंगारिकता के कारण कवियों ने नायक-नायिका भेद पर काव्यों की रचना की तथा सङ्गीतज्ञों ने राग-रागिनियों के पद भी नायक-नायिका भेद के आधार पर बनाए। गीतों में विलासमयी अभिव्यक्तियों को स्थान मिला। यों तो रागों का शृंगार वर्णन नायिका वर्णन के समान ही हुआ है परन्तु दोनों में एकता स्थापित करने की दृष्टि से ही बेनीराम जी ने रागमाला में चित्र खींचा है—

राग रागिनी रूप लषि मिटत जो जिय को भेद
पाते इनको समुझ के कहौ नाइका भेद।

Scanned with OKEN Scanner

यह सङ्गीत ग्रन्थ एक प्रकार से श्रृंगार ग्रन्थ है । रागों का नायक से और रागिनियों का नायिका से साम्य दिखाकर भैरव को अनुकूल नायक बताया है ।

स्वकीया वह पतिप्राण स्त्री है जिसने लज्जा को ही अपना आभूषण बना रखा है और जो विनय, सरलता, वाक्पटुता आदि गुणों से युक्त होकर घर-गृहस्थी के कार्य्यों में लगी रहती है। जिसे स्वप्न में भी परपुरुष की इच्छा नहीं होती तथा पति के प्रति अविनय और अवज्ञा के भाव जिसके हृदय में कभी उत्पन्न नहीं होते। "विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया" अर्थात् विनय, आर्जव (सरलता) आदि गुणों से युक्त, घर के कामों में लगी रहने वाली, पतिव्रता स्त्री स्वकीया नायिका है।

आयु के विचार में स्वकीया नायिका के तीन भेद किए गए हैं- १. मुग्धा, २. मध्या, ३. प्रगल्भा (प्रौढ़ा)। इस प्रकार भेद किए जाने का तात्पर्य यह है कि ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है त्यों-त्यों लज्जा की मात्रा कम और काम की मात्रा अधिक होती जाती है।

गायन शैलियों में परिवर्तन

जब ख़्याल का प्रचलन हुआ, जिसमें स्वर-आलाप, बोल-आलाप, तान, बोल-तान, मुर्की और मींड का महत्त्व गतों के शब्दों से अधिक बढ़ गया। इसके अतिरिक्त ठुमरी, तराना, टप्पा और होली आदि शैलियों का विकास हुआ। जिसमें शास्त्रीय पक्ष से अधिक कला पक्ष प्रबल था। ठुमरी अधिकतर श्रृंगार रस और भावों को लेकर गाई जाती है इसीलिए कृष्ण और राधा को लेकर अधिकतर ठुमरियां बनीं तथा कुछ रागों की रागनियाँ भी नायिका रूप में आईं।

रागिनी व नायिका रूप

गूजरी रागिनी वासक सज्जा नायिका है, जो अपने प्रिय के लिए सेज सजाकर तथा श्रृंगार करके बैठी है। रागिनी नायिका की एक विशेषता यह है कि वह 'वीना' लिए प्रतीक्षा कर रही है ।

विशेष रागों को उनमें निहित भागों के अनुसार विशेष प्रकार की नायिका से

सम्बद्ध किया गया है। उदाहरण के लिए भैरवी को शुक्लाभिसारिका के रूप में और राग पहाड़ी को 'मुग्धा प्रवत्स्यप्रेयसी' नायिका के रूप में कवियों ने देखा।

मनोविज्ञान की दृष्टि से इन नायक तथा नायिकाओं का अध्ययन करने पर बड़े विचित्र तथा रस के उपयुक्त संचारियों का परिचय प्राप्त होता है। प्रवत्स्यप्रेयसी वह नायिका है, जिसका पति विदेश जा रहा है। मुग्धा होने के कारण दुःखी होती है। दोनों नेत्रों से देखती रहती है पर कुछ कह नहीं पाती, केवल हाथों से चरण पकड़ लेती है। पहाड़ी रागिनी के स्वर-विस्तार में कुछ करुणा तथा पीड़ा के स्वर निकलते जान पड़ते हैं। इस मधुर रागिनी को कवि ने वियोग शृंगार के रूप में देखा है।

इस प्रकार नायक-नायिका भेद की दृष्टि से सङ्गीतकाल में पारम्परिक वर्णनों को छोड़कर मौलिक सामग्री बहुत अधिक है। नायक-नायिका भेद के आधार पर ही राग-रागनियों के रूप वर्णन किए गए हैं। इनका सङ्गीतिक महत्त्व बहुत है- राग-भाव का सुन्दर समनिवत रूप दृष्टिगोचर होता है। स्वर, भाषा, ताल और मार्ग का आश्रय लेकर ये गीत मानव की भावना को व्यक्त करते हैं। सङ्गीत का प्रयोजन सांसारिक चिन्ताओं से दबे हुए मानव को उन चिन्ताओं से मुक्त कराकर आलौकिक सुख की प्राप्ति कराना है।

खयाल - गायन में शब्दार्थ की उपेक्षा

स्व० भातखण्डे जी का कथन है — "खयाल-गान में शब्दों का विशेष महत्त्व नहीं रहता।"[१] रागदारी का सङ्गीत शब्द-प्रधान न होने के कारण अथवा शब्दोच्चारण तथा उसके अर्थ की ओर गायक का कोई ध्यान न रहने के कारण, साधारण श्रोताओं को वह रुचिकर नहीं होता ।[२] एक दूसरे महाराष्ट्रीय सज्जन कहते हैं— 'सङ्गीत के उभारने के साथ शब्दार्थ पीछे छोड़ दिया जाता है, छोड़ दिया जाना चाहिए। सङ्गीत को चाहिए कि उसे खा जाए और शब्दार्थ को भी चाहिए कि वह खाया जाए।'[३] भातखण्डे जी यह भी कहते हैं -—'आजकल शब्दों के अर्थ का ध्यान रखकर (खयाल) गानेवाला बिरला ही मिलेगा।'[४]

शब्दार्थ की और वही व्यक्ति ध्यान देगा, जो शब्दार्थ से अपरिचित न हो। जानबूझकर शब्दार्थ का भक्षण करनेवाला रसिक कोई बिरला ही होगा। भातखण्डे जी का विचार था —'शब्दार्थ को तथा राग को युक्तिपूर्वक सँभालकर यदि विस्तार हो सके, तो वह ठीक ही है तथा इस दृष्टि से भविष्य में सङ्गीत का विकास होना भी चाहिए।'[५] परन्तु एक सज्जन शब्दार्थ के विनाश को ही सङ्गीत के विकास और विलास का कारण मानते हुए व्यवस्था देते हैं— 'शब्दार्थ को भी चाहिए कि वह खाया जाए, तभी वह संङ्गीत 'सङ्गीत' के रूप में विकसित होगा।'[६]

भातखण्डे जी कहते हैं —'हिन्दुस्तानी सङ्गीत के स्वभाव में एक विशेष धीमापन, दरबारी शान, अलमस्ती, लचीलापन तथा शौकीनी है। यही गुण हिंदी भाषा में भी पाए जाते हैं। ' भातखण्डे जी का यह कथन अक्षरश: सत्य है। हिन्दुस्तानी सङ्गीत और हिन्दी भाषा में यह स्वभावगत समानता ही हिन्दी को ख़याल के लिए उपयुक्ततम भाषा सिद्ध करती है, अत: खयाल के द्वारा शब्दार्थ को खाए जाने की स्थिति आदर्श कभी नहीं कही जा सकती।

'आ'कार, 'ई'कार, 'ऊ'कार, 'ओ'कार में आलापों, तानों, पलटों और जमजमों के लिए भरपूर अवकाश है, अत: इन अक्षरों के रागानुसारी लुप्त उच्चारण से शब्दार्थ की हत्या संभव ही नहीं। विभिन्न स्वर-गुच्छ शब्द के अर्थ को ढंग

Scanned with OKEN Scanner

से उभारते और सजाते हैं— राग, भाषा, लय इत्यादि मिलकर एक अखण्ड आनंद की सृष्टि करते हैं। इसमें संदेह किसे है !

अब यह देखा जाए कि शब्दार्थ-भक्षण का इतिहास क्या है?

अपनी 'बंदिश' के चुरा लिए जाने के डर से अनेक गायक शब्दों का स्पष्ट उच्चारण नहीं करते थे, क्योंकि उन्हें राग की 'टेर' शब्दों से ही याद आती थी। स्वरज्ञान विहीन अनेक गायक अपनी बंदिश की स्वरलिपि नहीं कर सकते थे, राग के नियम-धर्म से, उनका परिचय नहीं था। बंदिश के बोल ही उन्हें राग की 'धुन' या 'टेर' याद कराते थे। अतः वे लोग शब्दों का उच्चारण स्पष्ट नहीं करते थे। यही शब्द उनका 'माल' थे।

कहा जाता है कि ख़याल-गायकी में बल व पेंच का काम मुबारक अली खाँ ने तान और पलटे का काम उनके पिता बड़े मुहम्मद खाँ ने और 'बोल-तान' का काम आगरे वाले नत्थन खाँ ने सम्मिलित किया। यह तो केवल सौ-डेढ़ सौ वर्ष के अंदर की बात हुई। महाराष्ट्र में ख़याल-गान के नाम पर यही कुछ पहुंचा है। सदारंग की मृत्यु हुए तो प्रायः सवा दो सौ वर्ष हो गए। उस समय नत्थन खाँ बड़े मुहम्मद खाँ और मुबारकअली खाँ नहीं थे, अतः ख़याल-गायकी का रूप भी शब्दार्थ-भक्षी न था। इस शताब्दी में भी स्व० फैयाज खाँ जैसे लोग शब्दार्थ के शत्रु न थे ।

दरबारों को गालियां देना आजकल 'फैशन' हो गया है, परन्तु दरबारों में साहित्य और सङ्गीत दोनों के मर्मज्ञों की कमी न थी। शिवा जी के पिता शाह जी ब्रजभाषा के सत्कवि थे और काव्य में अपना नाम 'मकरंद' रखते थे। उस समय के गायक साहित्य और सङ्गीत दोनों के ही ज्ञाता होते थे। 'सदारङ्ग' साहित्य और सङ्गीत, दोनों के ही मर्मज्ञ थे और 'अदारङ्ग' भी।

उन्नीसवीं शती ई० में जो भी 'उस्ताद' लोग महाराष्ट्र में, जाकर बसे, उन्हें आजीविका की खोज थी। वहां बंदिशों के भाषा-पक्ष की ओर ध्यान देने वाला उस युग में कोई न था। उन्होंने वहां के सङ्गीत--रसिकों को यह नारा दिया—'रागदारी सङ्गीत में शब्द 'राग का भोजन' है।'

Scanned with OKEN Scanner

भातखण्डे जी कहते हैं—'मराठी श्रोता मराठी शब्दों की दुर्गति देखकर नाक भौं सिंकोड़ने न लगेंगे।'[७] उन्हें यह भी समझना चाहिए कि हिन्दी की दुर्गति देखकर हिन्दी भाषियों को संतोष नहीं होगा।

कहा जाता है —'स्वर व लय, मात्र यही दो सङ्गीत की इकाइयाँ हैं और इन्हीं का लीला-विलास जिस गायकी में होता है, वही अभिजात (शास्त्रीय) सङ्गीत है।'[८] स्वर व लय तो सारंगी, बीन व बाँसुरी में भी है। परन्तु ये वाद्य बजते हैं, गाते नहीं। 'गाने' में व 'बजने' में अंतर यही है कि 'साज़' गूंगे हैं और गायक गूँगा नहीं हो सकता। आ, ई, ऊ, ए का उच्चारण गूंगे भी कर सकते हैं। यदि कोई गायक इन्हीं ध्वनियों को आधार बनाकर राग विस्तार करता रहे, तो पागल कहलाएगा। यह काम तो गूंगा भी कर सकता है।

कहा जाता है कि 'तराने' में तो भाषा नहीं होती, तो उसका उत्तर यह है कि तराना 'मिजराब' या 'जवे' से बजने वाले साजों की अनुकृति मात्र है—पूर्ण गायकी नहीं है। 'राग' नाद का 'स्वरवान्' रूप है और भाषा 'अभिधानवान्' रूप। 'गान' नाद के इन दोनों प्रश्नों का समन्वित रूप है ।

'आलप्ति' व्यंजनयुक्त भी हो सकती है और व्यंजनहीन भी। इसलिए भाषा राग के विस्तार में बाधक नहीं, अपितु भाव बोध में सहायक है। 'गेय' गूंगा है, 'वाक्' से वाणी मिलती है। यदि ऐसा नही तो 'गाने' को 'बजाने' और 'नाचने' की अपेक्षा उत्तम क्यों कहा जाता है ।

बंदिश करने का अधिकारी

एक आलोचक का कथन है —'सङ्गीत के लिए बंदिश बनाना कवि का क्षेत्र है ही नहीं। यह काम गायक का है, मुरब्बी गायक का।'[९] निस्संदेह बंदिश बनाना उस व्यक्ति का कार्य्य नहीं है, जो केवल कवि हो, परन्तु यह उसका भी कार्य्य नहीं है, जो सिर्फ 'गायक' हो। वाग्गेयकार कवि व नायक दोनों का समन्वित रूप होता है, इस बात को आज का युग भूल गया है।

भातखण्डे जी का दृष्टिकोण है—'गायक को किसी राग में एक छोटी सी स्वर-रचना सूझती है। उसको सुरक्षित रखने के लिए किसी न किसी शब्द-रचना

Scanned with OKEN Scanner

की आवश्यकता होती है। उस स्वर-रचना के योग्य काव्य सौंदर्य के झगड़े में विशेष न पड़ते हुए अपनी रुचि के अनुसारगायक शब्द रचना करता है।'[१०]

स्व० भातखण्डे जी बंदिश के शब्दों को श्रोताओं के लिए न मानकर उन्हें केवल 'स्वर रचना को याद रखने का साधन मानते हैं। यह सर्वथा मौलिक बात है । भरत मुनि ने तो ध्रुवगीतों पर एक स्वतंत्र अध्याय लिखा है। प्रश्न यह है कि भाषा राग की अभिव्यक्ति में कहाँ तक बाधक है।' निस्संदेह गान और वाचन एक बात नहीं, परन्तु यदि गायक को उच्चारण की शुद्धता और अर्थ का ज्ञान रहे, तो सङ्गीत को क्या हानि पहुँचती है!

यदि यह कहा जाए कि शब्दार्थ भक्षण को उचित ठहराने की व्यवस्था देने वाले ये समालोचक 'राग' के अत्यन्त प्रेमी हैं, तो ऐसी बात भी नहीं। पारंपरिक रागों के साथ स्वैराचार करने वाले एक गायक के विषय में ऐसे लोगों की उक्ति है—'सङ्गीत का धर्म ग्लानि ग्रस्त है और उससे उसे मुक्त करने के लिए यह श्री कृष्ण का अवतार ही हुआ है।'[११] यदि गोपी-चीरहरण और द्रौपदी-चीरहरण एक ही भावना के द्योतक हैं, तो हमें कुछ नहीं कहना, अन्यथा ऐसी उक्तियाँ समझदार पाठकों की दृष्टि में लेखक का सम्मानवर्द्धन नहीं करतीं। भाषा और राग, दोनों के ही भक्षण के पश्चात् कण्ठ स्वर के माधुर्य्य की भी चर्चा करना अधिक अप्रासंगिक न होगा।

स्व० अल्लादिया खाँ साहब की आवाज के विषय में कहा गया है— 'प्राकृतिक मिठास की दृष्टि से उनकी आवाज अन्य गायकों की तुलना में निकृष्ट श्रेणी की है।'[१२] (इनकी) गायकी अतिशय सूक्ष्म, विकट सर्वमान्य श्रोताओं के पल्ले न पड़ें, इतनी कठिन हो गई है।[१३] स्पष्ट है कि माधुर्यरहित आवाज में विकट और कठिन गायकी को सुनने का धैर्य मधुरता प्रिय कर्णों को न होगा। यदि ऐसी गायकी में शब्दार्थ भक्षण और सम्मिलित हो जाए तो कहना ही क्या है !

कुछ लोग रसीली आँख देखते हैं, कुछ लोग 'कानी आँख' में लगी हुई सुरमे की लकीर देखते हैं—पसंद है अपनी-अपनी! भाषा नेष्ट, उच्चारण भ्रष्ट, अर्थ मृत और माधुर्य अपहृत- यह सब कुछ होने पर भी विकरता तथा कठिनता का भार सहन करना हर एक के सामर्थ्य की बात नहीं।

संदर्भ

१. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ६, पृ० ४४
२. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ६, पृ० २६
३. अनुपरागविलास की भूमिका, ले० वा० ह० देशपांडे, पृ० १३
४. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ६, पृ० २७
५. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ६, पृ० २७
६. अनुपरागविलास की भूमिका, ले० वा० ह० देशपांडे, पृ० १३
७. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ६, पृ० २८
८. घरानेदार गायकी, प्राक्कथन, ले० वा० ह० देशपांडे, पृ० १९
९. अनुपरागविलास की भूमिका, ले० वा० ह० देशपांडे, पृ० १३
१०. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग ६, पृ० २९
११. अनुपरागविलास की भूमिका, ले० वा० ह० देशपांडे, पृ० ३०
१२. घरानेदार गायकी, प्राक्कथन, ले० वा० ह० देशपांडे, पृ० ७२
१३. घरानेदार गायकी, प्राक्कथन, ले० वा० ह० देशपांडे, पृ० ७६

Scanned with OKEN Scanner

रागों में स्वरों का सच्चा लगाव या प्रयोग

राग वर्गीकरण के सम्बन्ध में प्राचीन आचार्य्यों ने मूर्च्छना का तथा मध्ययुगीय आचार्य्यों ने मेला या ठाठ का आश्रय लिया है। यह प्रयत्न अपने आप में अत्यन्त स्थूल है। उपर्युक्त आधारों पर रागों का वर्गीकरण करने वाले आचार्य्य इस तत्त्व से भलीभांति परिचित थे और जानते थे कि विभिन्न स्वर सङ्गतियों के प्रभाव से विभिन्न रागों में विभिन्न स्वर अपने स्थान से केशाग्र अन्तर पर उतरे या चढ़ते हैं। भातखण्डे जी ने भी कहा है कि रागों के स्वरों का वास्तविक स्थान स्वर-सङ्गति के अधीन है। वर्तमान युग के क्रिया कुशल गुणी भी इस तत्त्व से परिचित हैं कि तोड़ी का गांधार मुलतानी के गंधार से उतरा हुआ है। अनुभवी कानों के आधार पर गुणी लोग ऐसा निश्चित करते चले आए हैं।

'स्वर सङ्गत्यधीनानि स्वर स्थानानि सर्वशः'

सर्वशः (सब प्रकार से) **स्वर स्थानानि** (स्वरों के वास्तविक स्थान) **स्वर सङ्गत्यधीनानि** (स्वरों की पारस्परिक संगति के अधीन होते हैं।)

सङ्गीत के विद्यार्थी भी जानते हैं कि षड्ज-पंचम चक्र के आधार पर हमें जो स्वर प्राप्त होते हैं उनकी अपेक्षा वे स्वर एक प्रमाणश्रुति उतरे होते हैं जो षड्ज-मध्यम चक्र से प्राप्त होते हैं । चक्रिक प्रक्रिया से, षड्ज-मध्यम चक्र और षड्ज-पंचम चक्र के द्वारा निम्नलिखित २४ स्वरों की प्राप्ति होती है ।

दोनों प्रक्रियाओं से प्राप्त स्वर

षड्ज-मध्यम भाव

स्वर	-	**सेवर्ट**
स	-	0
रे	-	23
रे	-	46

षड्ज-पंचम भाव

स्वर	-	**सेवर्ट**
स	-	0
रे	-	28
रे	-	51

Scanned with OKEN Scanner

ग	-	74	ग	-	79
ग	-	97	ग	-	102
म	-	125	म	-	130
मं	-	148	म	-	153
प	-	171	प	-	204
ध	-	199	ध	-	176
ध	-	222	ध	-	227
नी	-	250	नी	-	255
नी	-	273	नी	-	278
स	-	296	स	-	301

स्वरों में कुछ पारस्परिक संबंध इष्ट, कुछ अत्यन्त इष्ट और कुछ अनिष्ट होते हैं।

पंचश्रुति अथवा 74 सवेर्ट का अन्तर अनिष्ट होता है और **आठ श्रुति** या 102 सेवर्ट का अन्तर भी अनिष्ट होता है। गले से यह अनिष्ट अन्तर अप्राकृतिक होने के कारण कभी नहीं लगेंगे। यदि वाद्यों पर इन अनिष्ट अन्तरों को बजाया जाये तो ये सुनने में बुरे लगेंगे ।

जिन स्वरों में परस्पर इष्ट अन्तर होता है वे यदि क्रमशः लगाये जायें तो वे ठीक स्थान पर लगेंगे और सुन्दर प्रतीत होंगे ।

नौ श्रुति अथवा 125 सवेर्ट का अन्तर अत्यन्त इष्ट है और तेरह श्रुति अथवा 176 सेवर्ट का अन्तर भी अत्यन्त इष्ट है ।

सात श्रुति अथवा 97 सेवर्ट का अन्तर भी प्राकृतिक है इसी कारण अच्छे मिले हुए तंबूरे के मन्द्र षड्ज से सप्त श्रुति गांधार स्वयं सुनाई देता है।

इन अन्तरालों के अतिरिक्त षट् श्रुतिक, चतुःश्रुतिक और त्रिश्रुतिक अन्तर भी इष्ट है। कुछ **उदाहरणों** से उपरोक्त बात स्पष्ट होती है ।

	स	ग	प
श्रुति संख्या	०	७	१३
सेवर्ट	०	९७	१७६

७९ अंतर

स-ग में स्वाभाविक सप्तश्रुति अन्तर है और ग-प में छः श्रुति (७९ सेवर्ट) अन्तर है। यदि किसी तानपूरे पर ये स्वर मिलाकर छेड़ें जायें तो भले प्रतीत होंगे क्योंकि इनके पारस्परिक अन्तर प्राकृतिक और इष्ट हैं।

	स	ग	प
श्रुति संख्या	०	८	१३
सेवर्ट	०	१०२	१७६

७४अन्तर

उपरोक्त स-ग में आठ श्रुति का और ग-प में पांच श्रुति का अन्तर है जो कि अनिष्ट अन्तराल है और इन्हें कोई गले से लगाना चाहे तो असंभव होगा। जो स्थिति स - ग - प की है वही स्थिति या अन्तराल म - ध - सं में है ।

	म	ध	सं
श्रुति	९	१६	२२
सेवर्ट	१२५	२२२	३०१

९७ ७९

म-ध में सात श्रुति का तथा ध सं में छः श्रुति का अंतर है अतः ये इष्ट संवाद हैं। किन्तु इनका अंतर निम्न होने से अनिष्टता आ जायेगी ।

Scanned with OKEN Scanner

	म	ध	सं
श्रुति	९	१७	२२
सेवर्ट	१२५	२२७	३०१

१०२ ७४

ऊपर म – ध में आठ श्रुति अंतर है तथा ध सं में पांच श्रुति अंतर है जो कि अनिष्ट हैं।

जिन रागों में कोमल गांधार ७९ सेवर्ट का है उसमें कोमल धैवत २०४ सेवर्ट का और कोमल निषाद २५५ सेवर्ट का प्रयोग होगा, क्योंकि उनके अंतराल निम्न है। — ग ध नी के पारस्परिक सम्बन्ध स-म-प की प्रकार हैं-

	ग	ध	नी
श्रुति	६	१५	१९
सेवर्ट	७९	२०४	२५५

१२५ अंतर

१७६ अंतर

जिन रागों में अति कोमल ग (७४ सेवर्ट) लगेगा उसमें अति कोमल ध (१९९ सेवर्ट) और अति कोमल नी (२५० सेवर्ट) लगेंगे। क्योंकि ये ग – ध – नी भी स – म – प के बराबर हैं ।

तोड़ी का थाट

स्वर नाम	स	रे	ग	म	प	ध	नी	सं
श्रुति	०	२	५	११	१३	१५	२०	२२
सेवर्ट	०	२३	७४	१४८	१७६	१९९	२७८	३०१

तोड़ी के ग – प में १०२ सेवर्ट या आठ श्रुतियों का अंतर है इसीलिए

Scanned with OKEN Scanner

तोड़ी में पंचम अत्यन्त अल्प प्रयोग होता है और यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो वह च्युत पंचम (१७१ सेवर्ट) का प्रयोग होता है और गुणी लोग उस पर कभी ठहरते नहीं हैं क्योंकि यहां पर षड़ज के साथ पंचम का संवाद नहीं है ।

तोड़ी में अति कोमल ऋषभ से अति कोमल गांधार पर जाया जाता है। षड्ज से नहीं जायेंगे क्योंकि स – ग का अंतर पांच श्रुति या ७४ सेवर्ट का है जो अनिष्ट है । अनेक रागों में स्वरों के कम्पित रूप का प्रयोग होता है । ये कम्पन दो प्रकार का होता है। पहली अवस्था में स्वर अपने पूर्ववर्ती स्वर और अपने स्थान की अवधि में झूलता है। जैसे तोड़ी और दरबारी की गांधार का आंदोलन ऋषभ और गांधार के बीच में होता है। जबकि मुलतानी और भीमपलासी का गांधार अवरोह में झूलते हैं और उनके आंदोलन का क्षेत्र गांधार और मध्यम के बीच में होता है, यह दूसरा कंपन का प्रकार है ।

पंच श्रुति के अंतर पर होने के कारण तोड़ी में स-ग॒ संगति नहीं है । किन्तु गांधार के साथ धैवत, ऋषभ और मध्यम का संवाद है अतः गांधार अन्य सब स्वरों का स्थान निश्चित कर देता है। तोड़ी में न तो ग॒ – प की संगति होगी और न ही पंचम पर रुका जायेगा ।

मुलतानी का थाट

स्वर नाम	स	रे॒	ग॒	मं॑	प	ध॒	नी	सं
श्रुति	०	२	६	११	१३	१५	२०	२२
सेवर्ट	०	२८	७९	१५३	१७६	२०४	२७३	३०१

मुलतानी गाते समय तानपूरे पर पंचम मिलाया जाता है। इसको गाते समय ग – प की संगति होती है। अतः गांधार पंचम से ७ श्रुति पूर्व और षड़ज से ६ श्रुति ऊंचा लगेगा ।

ग॒ (७९) का संवादी ध॒ (२०४) है। ध॒ (२०४) का संवादी रे॒ (२८) हैं और रे॒ २८ का संवादी अति तीव्र मं॑ (१५३) है। इस दृष्टि से रे॒ ग॒ मं॑ प और ध॒ के स्वर-स्थान निश्चित हो गए ।

Scanned with OKEN Scanner

आरोह में पंचम से निषाद पर जाते हैं इसलिए निषाद २७३ लगता है और म-नी में १२० का अंतर है जो संवाद नहीं है अतः यह संगति नहीं लगेगी ।

बागेश्री का थाट

स्वर का नाम	स	रे	ग	म	प	ध	नी	सं
श्रुति संख्या	०	३	५	९	१३	१६	१८	२२
सेवर्ट	०	४६	७४	१२५	१७६	२२२	२५०	३०१

सब लोग यह जानते हैं कि बागेश्री गाते समय गुणी लोग तानपूरे के बायें तार को मध्यम में मिलाते हैं, क्योंकि शुद्ध मध्यम के स्थापित होने से बागेश्री में प्रयुक्त होने वाले प्राकृतिक स्वरों की प्राप्ति सहज रूप में हो जाती है ।

उपरोक्त स्वर मालिका में 'म ध' में सात श्रुति, 'म-नी' में नौ श्रुति तथा 'म सं' में तेरह श्रुति का अंतर है। ये तीनों अंतराल क्रमशः मध्यम-धैवत भाव, षड्ज-मध्यम भाव और षड्ज-पंचम भाव कहलाते हैं।

आलाप के मर्मज्ञ लोग 'नि स म ग म ग रे स' प्रयोग करते हैं अर्थात् आरोह में गांधार का प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि षड्ज के बाद यदि ग ७४ का प्रयोग किया जाये तो स से यह गांधार पांच श्रुति अंतर पर होने के कारण नहीं लगेगा और यह अनिष्ट है।

हर राग में मनमानी तानें मारने वाले लोग इस सूक्ष्मता को नहीं समझते हैं। यदि तानपूरे की बायें तार पर पंचम मिलाकर बागेश्री गायी जाये तो वह भयानक रूप से अनाकर्षक हो जायेगी क्योंकि ये बागेश्री के रे - ग - ध - नी के साथ पंचम का इष्ट संबंध नहीं है ।

ये बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि स्वरों के परिमाण में जब केशाग्र अंतर रहता है तब उस अंतराल पर रुका नहीं जाता। इसीलिए कैशिक कहलाने वाले स्वरों की गणना मेलों या मूर्च्छनाओं में नहीं होती। जो लोग सूक्ष्म विचारों से बचना चाहते हैं उनकी ही भाषा में संगीत में १२ स्वरों का प्रयोग होता है । अन्यथा चक्रिक प्रक्रिया द्वारा प्राप्त २४ स्वरों की प्राप्ति से यह स्पष्ट होता है कि स्वरों का परिमाण क्यों बदलता है और किन किन रागों में वे स्वर प्रयुक्त होते

Scanned with OKEN Scanner

हैं। यह बात निम्न तालिका से स्पष्ट है— षड्ज-मध्यम चक्र से प्राप्त स्वरों को 卐 स्वर चिन्हित किया गया है:-

स्वर	सेवर्टस	रागों में प्रयोज्य
१. षड्ज	० अथवा ३०१	स्वयं सिद्ध
२. अति कोमल ऋषभ	२३ 卐	
३. कोमल ऋषभ	२८	
४. भरत ऋषभ	४६ 卐	दरबारी, बागेश्री
५. कल्याण ऋषभ	५१	कल्याण
६. अति कोमल गांधार	७४ 卐	मालकौंस, तोड़ी, बिलासखानी
७. कोमल गांधार	७९	पीलू, भीमपलासी
८. स्वयं भू गांधार (अंतर ग)	९७卐	बिहाग
९. कल्याण गांधार	१०२	कल्याण, भोपाली
१०. शुद्ध मध्यम	१२५卐	मालकौंस
११. उत्कृष्ट मध्यम	१३०	भीमपलासी में कण रूप में प्रयुक्त
१२. तीव्र मध्यम	१४८卐	ललित, तोड़ी
१३. अति तीव्र मध्यम	१५३	मुलतानी, कल्याण
१४. च्युत पंचम	१७१卐	दरबारी
१५. पंचम	१७६	स्वयंभू षड्ज का संवादी
१६. अति कोमल धैवत	१९९卐	मालकौंस, दरबारी, तोड़ी
१७. कोमल धैवत	२०४	भैरव, मुलतानी
१८. भरत धैवत	२२२ 卐	बागेश्री
१९. तीव्र धैवत	२२७	भीमपलासी, कल्याण
२०. अति कोमल निषाद	२५० 卐	बागेश्री, मालकौंस
२१. कोमल निषाद	२५५	भीमपलासी
२२. काकली निषाद	२७३卐	बिहाग
२३. तीव्र निषाद	२७८	कल्याण
२४. च्युत षड्ज	२९६ 卐	बागेश्री में कण रूप में प्रयुक्त

Scanned with OKEN Scanner

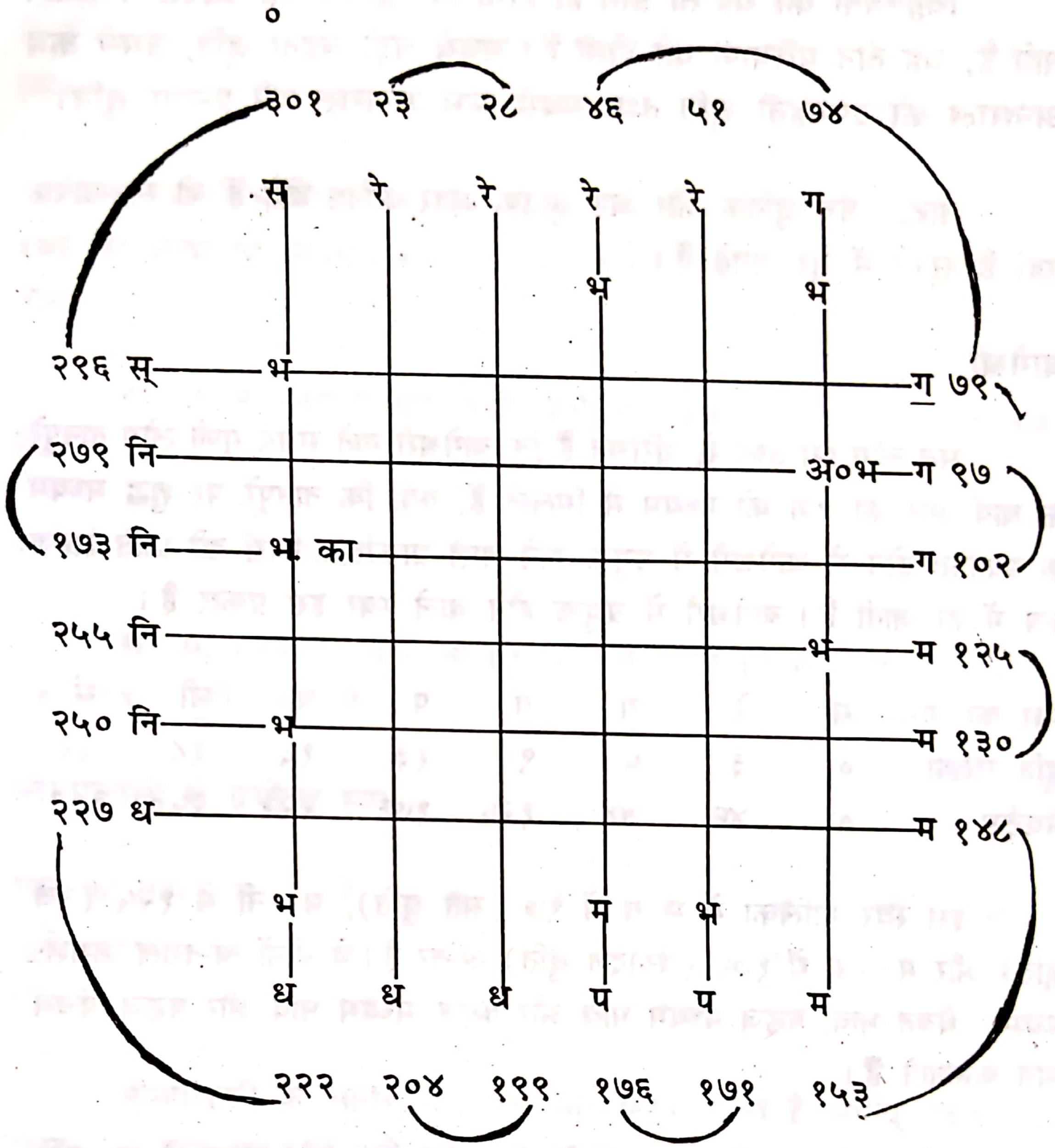

त्रिश्रुति	४६	एक श्रुति	२३ महती
चतु०	५१	एक श्रुति	१८ उपमहती
पंच	७४	एक श्रुति	५ प्रमाण श्रुति
षट्श्र	७९		
सप्त०	९७		
अष्ट श्रु०	१०२		
नव श्रु०	१२५		
त्रयोदश०	१७६		

Scanned with OKEN Scanner

विद्वज्जनों को यह तो ज्ञात ही होगा कि श्रुतियाँ भी आपस में समान नहीं हैं, यह तीन परिमाण की होती हैं। सबसे बड़ी महती श्रुति, उससे कम अन्तराल की उपमहती श्रुति तथा सबसे कम अन्तराल की प्रमाण श्रुति।

नोट:- पंच श्रुतिक और अष्ट श्रुतिक अंतर अनिष्ट होते हैं जो स्वाभाविक नहीं हैं सुनने में बुरे लगते हैं।

बागेश्री

सब लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि बागेश्वरी गाते समय गुणी लोग तानपूरे के बायें ओर की तंत्री को मध्यम में मिलाते हैं, क्यों कि तानपूरे पर शुद्ध मध्यम के स्थापित होने से बागेश्वरी में प्रयुक्त होने वाले प्राकृतिक स्वरों की प्राप्ति सहज रूप में हो जाती है। बागेश्वरी में प्रयुक्त होने वाले स्वर इस प्रकार है।

स्वर का नाम	स	रे	ग	म	प	ध	नी	सं
श्रुति संख्या	०	३	५	९	१३	१६	१८	२२
सेवर्ट्स	०	४६	७४	१२५	१७६	२२२	२५०	३०१

इस स्वर मालिका में म-ध में ९७ (सप्त श्रुति), म- नी में १२५ (नव श्रुति) और म - स में १७६ (त्रयोदश श्रुति) अन्तर है। ये तीनों अन्तराल क्रमशः मध्यम- धैवत भाव, षड्ज मध्यम भाव और षड्ज-मध्यम भाव और षड्ज-पंचम भाव कहलाते हैं।

बागेश्वरी में मन्द्र धैवत मध्यम से सात श्रुति ऊंचा और षड्ज से छः श्रुति (७९) नीचा है। इस प्रकार धैवत दोनों ओर से स्वाभाविक सम्बन्धों में बद्ध है।

इस धैवत का संवादी ऋषभ (४६ सेवर्ट) त्रिश्रुतिक है और अवरोह में प्रयुक्त होता है ।

बागेश्वरी में षड्ज-मध्यम (१२५ सेवर्ट) और मध्यम-निषाद (१२५+१२५=२५०) की संगति है। निषाद का संवादी गांधार (७४) अवरोह में प्रयुक्त होता है ।

Scanned with OKEN Scanner

आलाप के मर्मज्ञ लोग नि़ स म ग म ग रे स प्रयोग करते हैं अर्थात् आरोह में गांधार का प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि षड्ज के बाद यदि ग ७४ का प्रयोग किया जाये तो षड्ज के पश्चात् पंचश्रुतिक अनिष्ट अन्तर पर स्थित होने के कारण ग ७४ न लगकर ग ७९ लग जायेगा जिसके साथ मध्यम के संवादी निषाद २२५ का संवाद नहीं है क्योंकि ग ७९ और नी २५० में १७६ का संवादी अंतर न होकर १७१ का अन्तर रह जायेगा। यह अन्तर १३ श्रुतियों का न होकर १२ श्रुतियों का होगा।

हर राग में मनमानी तानें मारने वाले लोग इस सूक्ष्मता को नहीं समझते हैं।

बागेश्री में स्वर संगतियां

स- म, (१२५), म - नी (१२५), ग - नी (१७६), ग-ध (२२२-७४ =१४८) की संगति है ।

भीमपलासी में प्रयोज्य स्वर

स्वर का नाम	स	रें	ग	म	प	ध	नी	सं
श्रुति संख्या	०	४	६	९	१३	१७	१९	२२
सेवर्ट्स	०	५१	७९	१२५	१७६	२२७	२५५	३०१

भीमपलासी के आरोह में ऋषभ और धैवत वर्जित है अर्थात् षड्ज से गांधार पर जाना पड़ता है, जो षड्ज के पश्चात छह श्रुति अथवा ७९ सेवर्ट्स के अन्तर पर है। इसीलिए यह गांधार बागेश्वरी के गांधार की अपेक्षा एक प्रमाण श्रुति या ५ सेवर्ट चढ़ जाता है। उसी प्रकार पंचम १७६ के पश्चात् लगने वाला निषाद (२५५) पंचम से ६ श्रुति या ७९ सेवर्टस के अंतर पर होने के कारण बागेश्वरी के निषाद की अपेक्षा चढ़ जाता है ।

भीमपलासी में म १२५ और नि २५५ की संगति नहीं होती है क्योंकि म और नि २५५ में १३० सेवर्ट्स या १० श्रुतियों का अन्तर है जो अनिष्ट है ।

Scanned with OKEN Scanner

मध्यम और धैवत की संगति भीमपलासी में नहीं है क्योंकि भीमपलासी का धैवत अवरोह में नि २५५ से दो श्रुति या २८ सेवर्ट उएतर कर २२७ हो जाता है। म और ध २२७ में १०२ सेवर्ट्स या ८ श्रुतियों का विवादी अन्तर है। भीमपलासी का ऋषभ कोमल गांधार ७९ से २२ सेवर्ट या दो श्रुति उतरकर ५१ रह जाता है । इसीलिए वह बागेश्वरी के ऋषभ से एक प्रमाण श्रुति चढ़ जाता है । अब एक और दृष्टि से देखा जाए।

भीमपलासी गाते समय तानपूरे के बायीं ओर का तार पंचम (१७६) में मिलाया जाता है जिसका संवाद रे (५१) से है। ध २२७ रे ५१ का संवादी है।

दो सुरों में दो श्रुतियों का अन्तर अवश्य होना चाहिए इसीलिए ग ७९ रे ५१ से दो श्रुति ऊंचा है। इसी प्रकार नी २५५ भी ध २२७ से दो श्रुति या २८ सेवर्ट ऊंचा है ।

ग ७९ और प १७६ में ९७ में सेवर्ट का अंतर या सप्त श्रुति संवाद है इसीलिए भीमपलासी में ग – प की संगति होती है । बागेश्वरी के ग ७४ और प १७६ में १०२ सेवर्ट या अष्टश्रुति का विवादी संबंध है इसलिए न तो बागेश्वरी में ग – प की संगति होती है और न तो तानपूरे पर पंचम ही मिलाया जाता है।

यदि तानपूरे की बायें तार पर पंचम मिलाकर बागेश्वरी गायी जाये तो वह आकर्षक नहीं रह जायेगा क्योंकि ये बागेश्वरी के रे- ग- ध नी के साथ पंचम का इष्ट संबंध नहीं है ।

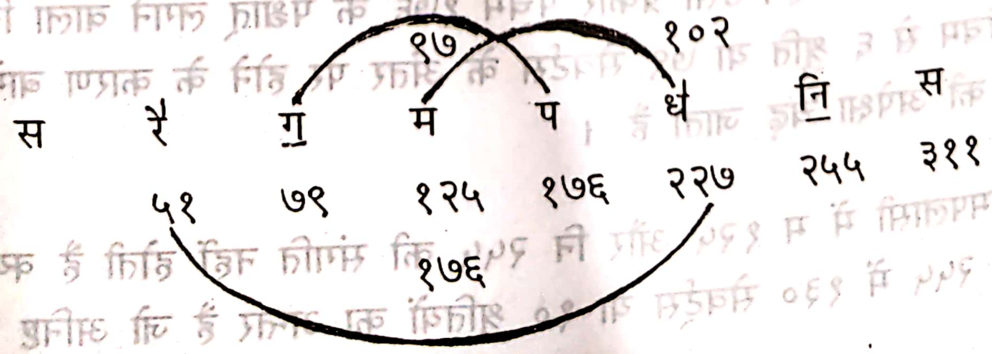

मुलतानी का थाट

७९ ९७ ९७

स्वर का नाम	स	<u>रे</u>	<u>ग</u>	मॅं	प	<u>ध</u>	नी	सं
श्रुति संख्या	०	२	६	११	१३	१५	२०	२२
सेवर्ट्स	०	२८	७९	१५३	१७६	२०४	२७३	३०१

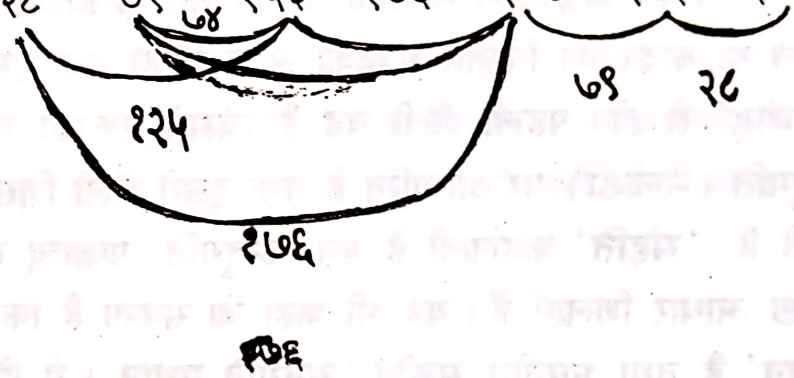

मुलतानी गाते समय तानपूरे पर पंचम मिलाया जाता है। इसको गाते समय ग – प की संगति होती है। अत: गांधार पंचम से ७ श्रुति पूर्व (१७६–९७ =७९) और षड्ज से ६ श्रुति (७९) ऊँचा लगेगा। <u>ग</u> ७९ का संवादी <u>ध</u> (२०४) है। <u>ध</u> २०४ का संवादी <u>रे</u> २८ है और <u>रे</u> का सम्वादी अति तीव्र मॅं १५३ है। इस दृष्टि से <u>रे</u> <u>ग</u> म प और <u>ध</u> के स्वर स्थान निश्चित हो गए ।

आरोह में पंचम से निषाद पर जाते हैं इसलिए निषाद २७३ लगता है क्योंकि वो पंचम १७६ से ९७ सेवर्ट (१७६ +९७ = २७३) है। मॅं– नी मेड्ड अंतर १२० सेवर्ट है जिसमें संवाद नहीं है।अत: यह संगति नहीं लगेगी ।

संहति और अनुगति
(HARMONY AND MELODY)

सम्पूर्ण सङ्गीत में सम्भवतः दो ही शैलियाँ विद्यमान हैं। एक वह है जिसमें गायन या वादन का विस्तार एकाकी स्वरों से हो तथा दूसरी जिसमें विस्तार स्वरों के जोड़ों से हो। पहली शैली वह है जिसमें एकाकी स्वर कार्य्य करते हैं, जो **अनुगति** (मैलोडी) पर आधारित है तथा दूसरी शैली जिसमें स्वरों के समूह कार्य्य करते है **'संहति'** कहलाती है एवं **'अनुगति'** पाश्चात्य् तथा भारतीय सङ्गीत की प्रमुख आधार शिलाएँ हैं। यह भी कहा जा सकता है कि पाश्चात्य सङ्गीत **'संहति प्रधान'** है तथा भारतीय सङ्गीत **'अनुगति प्रधान'**। ये दोनों शैलियाँ ही स्वयं में पूर्ण हैं। पहली शैली प्रमुखतः सारे यूरोपियन देशों में प्रसिद्ध है तथा दूसरी शैली पूर्वी देशों में तथा प्रमुखतः हिन्दुस्तान में ।

सङ्गीत में हार्मनी तथा मैलॉडी को दो ध्रुवों की दूरी पर मानना अनुचित है। यद्यपि दोनों परस्पर भिन्न व विरोध्वय हैं। विश्व की सभी सङ्गीत पद्धतियों सङ्गीत के लिए दो बातें स्वीकार की गई हैं— जब एक के बाद एक स्वरों का विस्तार इस प्रकार किया जाए कि स्वरों की रचना रसों व भावों को उद्दीप्त करती हुई मनमोहक हो, उसे मैलॉडी और जब दो या दो से अधिक स्वरों को एक साथ बजाया जाय तो कॉर्ड बनेंगे, इन कॉर्ड के कई लगातार टुकड़ें मिलाकर गाने को हार्मनी की संज्ञा दी जाएगी । परन्तु यह कॉर्ड्स कर्णकटु न होकर कर्णप्रिय होनी चाहिए।

हार्मनी का अर्थ

हार्मनी का साधारण अर्थ 'सङ्गति' तथा 'संहति' माना गया है जिसका अर्थ है, एक समय में कई स्वरों का उच्चारण। हार्मनी का शब्दिक अर्थ 'सम्वाद' है । पीयर्स एनसायक्लोपीडिया में हार्मनी शब्द का अर्थ है 'दो स्वरों को एक साथ बजाकर उसे सङ्गीतात्मकता प्रदान करना। यह क्रिया दो नादों का मधुर मिलन है।'

Scanned with OKEN Scanner

हार्मनी सङ्गीत आज पाश्चात्य देशों में सर्वत्र प्रचलन में है तथा अपने विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त की जाती है। एक समय में भिन्न-भिन्न संवादात्मक स्वरों का एक साथ उच्चारण हार्मनी कहलाता है अर्थात् जब एक समय में कम से कम तीन सम्वाद घटित स्वरों के द्वारा एक संघात या समूह बनाकर सङ्गीतोत्पत्ति की जाए, तो उसे हार्मनी कहेंगे। इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि एक समय में एक विशिष्ट स्वर के साथ उससे मेल खाते हुए अन्य स्वरों का उसी सप्तक में या अन्य सप्तक में गायन वादन करना हार्मनी है। यदि कुछ गायक अथवा वादक 'स, ग प' स्वर गा रहे हों तथा दूसरे गायक भी उसी के साथ-साथ 'प, नि, रें' स्वरों को गाएंगे या बजाएंगे । क्योंकि हार्मनी का नियम ही यह है कि विभिन्न सम्वादात्मक स्वरों को एक साथ उच्चारित किया जाए अन्यथा इसका स्वरूप ही नहीं बन सकता ।

हार्मनी का इतिहास

हार्मनी के जन्म् को लेकर भी कई बातें सामने आती हैं।

ऐसा माना जाता है कि भारतीय सङ्गीतज्ञ हार्मनी शैली से अपरिचित नहीं थे, परन्तु मैलोडी शैली में उन्हें अधिक व्यापकता व आनन्दानुभूति का क्षेत्र दिखाई दिया। इसलिए उन्होंने उस शैली को आत्मसात् कर लिया तथा इस शैली द्वारा ही आनन्द की चरम सीमा को प्राप्त किया ।

पहले पाश्चात्य देशों में सङ्गीत का प्रचार मैलोडी के रूप में ही होता रहा, तत्पश्चात् उन्होंने सङ्गीत को हार्मनी से सजाना आरम्भ कर दिया जिसका एक विशेष कारण गिरिजाघरों में प्रयुक्त गायन रहा। इन ईसाई गिरिजा घरों में सामूहिक गायन की प्रथा ईसाइयत के जन्म् के साथ ही चली आ रही है जिसमें पुरुष, स्त्रियां व बच्चे एक साथ सामूहिक प्रार्थना करते हैं तथा यह प्रथा आज भी चली आ रही है। इसी सामूहिक गान पद्धति के कारण पाश्चात्य सङ्गीतकारों ने भी इसे अपनाया तथा इसके ही आधार पर पाश्चात्य सङ्गीत उन्नति के शिखर पर पहुँचा। इसका जन्म् मध्यकाल माना जाता है। ईसाई गिरिजाघरों में जो प्राचीन सङ्गीत प्रयोग में लाया जाता है उसमें मैलोडी आज भी दिखाई पड़ती है । हजारों स्त्री-पुरुष इन सामूहिक गीतों को धार्मिक सङ्गीत मानकर एक साथ इन गिरिजाघरों में प्रार्थनाएँ गाने लगे। ये लोग एक साथ मिलकर यह गीत गाते थे, कोई मन्द्र स्वर में, कोई कुछ ऊपर

Scanned with OKEN Scanner

के स्वरों में तथा कोई तार सप्तक के स्वरों में यह गीत गाता था, कहने का तात्पर्य यह है कि गायन का यह रूप व्यवस्थित नहीं था, इसलिए यह शोर सा प्रतीत होता था। इसी कोलाहल में कुछ समय के पश्चात् एकसूत्रता स्थापित करने की आवश्यकता दिखाई दी, क्योंकि एक साथ अलग-अलग (अव्यवस्थित) स्वरों में गायन कर्णप्रिय नहीं था। यहीं से हार्मनी का जन्म् हुआ। कोई गायक मध्य षड्ज से, कुछ मध्य गान्धार से, कोई पंचम से तथा कोई तार षड्ज को आधार मानकर गाने लगे। अतः यह कहा जा सकता है कि सामूहिक सङ्गीत गायन के कारण ही हार्मनी सङ्गीत का जन्म् हुआ।

पाश्चात्य सङ्गीतकारों ने संस्कारित एवं सूक्ष्म एकल स्वरों के स्थान पर दो संवादित स्वरों को जोड़कर एक स्वर समूह बनाया। उन सम्वादी स्वर समूहों को जब विभिन्न गायकों अथवा वादकों द्वारा विभिन्न स्वर स्थानों (सप्तकों) में एक ही समय पर गाया बजाया जाये, तब हार्मनी का आविर्भाव होता है ।

हार्मनी पद्धति में चूँकि एक ही समय में कई सम्वादित स्वर प्रयोग में लाए जाते हैं, इसीलिए इस सङ्गीत में केवल एक मानव कण्ठ अथवा एक वाद्य के उपयोग से काम नहीं चल सकता। क्योंकि एक कॉर्ड (स्वर समुदाय) अथवा स्वर संघात गाने अथवा बजाने के लिए (जो कम से कम तीन स्वरों का होता है) कम से कम तीन मानवीय कण्ठ अथवा तीन वाद्य तो अवश्य ही चाहिए। यहाँ यह कहना भी अनुचित न होगा कि हार्मनी के अधिकांश प्रकारों में वाद्य-वादन की ही प्रधानता रहती है तथा अधिकांशतया गीत गौण ही रहता है। गीत के विशिष्ट स्वरों के साथ अन्यान्य सम्वादी स्वर समूहों के निर्माण के लिए गायकों के समूह की आवश्यकता होती है अथवा वाद्य समूह की । कण्ठ सङ्गीत की अपेक्षा विभिन्न वाद्यों पर स्वरोच्चारण अधिक सुविधाजनक होता है। हार्मनी में मूल स्वरों अथवा धुन के साथ जब तक तीन स्वरों के संघात नहीं बजाए जाएंगे तब तक उसका सही स्वरूप प्रस्तुत नहीं हो सकेगा।

हार्मनी के साधारणतः दो प्रकार ही माने जाते हैं। (१) सिंपल हार्मनी अर्थात् साधारण सङ्गति अथवा साधारण संहति तथा (२) काम्पलीकेडेट हार्मनी अथवा जटिल सङ्गति अथवा जटिल संहति।

Scanned with OKEN Scanner

१. सिंपल हार्मनी (Simple Harmony) अथवा सरल संहति

जैसा कि नाम से ही विदित है सिंपल हार्मनी समानान्तर होती है तथा सरल होती है। इस हार्मनी में दो गायकों या वादकों द्वारा गाए या बजाए जाने वाले स्वरों की परस्पर दूरी समान रहती है। एक गायक अथवा वादक मध्य सप्तक के स्वरों का प्रयोग करता है तो दूसरा उन्हीं स्वरों का प्रयोग तार सप्तक में करता है। जैसे-

स ग प ग रे स — प्रथम गायक व वादक द्वारा
सं गं पं गं रें स — द्वितीय गायक व वादक द्वारा

सिंपल हार्मनी भी दो प्रकार की मानी जाती है ।

(अ) मैगाडाइजिंग हार्मनी (MEGADISING HARMONY)

जब प्रयोग किए जाने वाले स्वरों का दूरी एक अथवा दो पूर्ण सप्तकों में होती है तो उसे मैगाडाइजिंग हार्मनी कहा जाता है ।

(आ) ऑर्गनाइजिंग हार्मनी (ORGANISING HARMONY)

जब गायकों अथवा वादकों द्वारा परस्पर स्वरों का सम्वाद जैसे- षड्ज-पंचम (स-प), षड्ज-गांधार (स-ग) आदि प्रयोग किए जाएं, तो वह ऑर्गनाइजिंग हार्मनी कहलाती है। जैसे-

सं सं ध प ग रे स रे ग — प्रथम समुदाय
प प ग रे नि़ ध़ प़ ध़ नि़ — द्वितीय समुदाय

२. कॉम्पलीकेटेड हार्मनी (MEGADISING HARAMONY) अथवा जटिल संहति

जब गायकों अथवा वादकों के स्वरों का परस्पर अन्तर घटता बढ़ता रहता है तब उसे कॉम्प्लीकेटेड हार्मनी कहा जाता है ।

जैसा कि सभी जानते हैं कि हार्मनी सङ्गीत सामूहिक रूप से गाया या बजाया जाता है इसलिए इसका स्वभाव भी सामूहिक रहता है। हार्मनी के स्वर

संघात निकालने के लिए एक गायक व वादक द्वारा काम नहीं चलाया जा सकता। हार्मनी की इस सामूहिक परम्परा के कारण ही इसे 'कोरल म्यूजिक' अथवा 'कोरल सिंगिंग' भी कहा जाता है। जो बाल्यावस्था से ही सामूहिक रहा तथा जिसका उद्भव स्थल चर्च ही रहा है। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि आदिम चर्च में जो सङ्गीत गाया बजाया जा रहा है उसका स्वरूप भी सामूहिक ही था। इसमें स्त्री, पुरुष तथा बच्चों की कण्ठ ध्वनियों से मेल खाते हुए विभिन्न वाद्ययंत्र भी प्रयोग में लाये जाते थे। अतः यदि मूल वर्ग (**Fundamental Tune**) टेनर कण्ठ वाले व्यक्ति मध्य सप्तक में गाते थे, तो उसी धुन अथवा उससे सम्वादित स्वरों अथवा स्वर समूहों को कुछ व्यक्ति 'बास स्केल' (मन्द्र सप्तक) और कुछ व्यक्ति 'सुप्रानो-स्केल' (तार-सप्तक) में एक साथ गाते थे। तभी से विभिन्न सम्वादात्मक ध्वनियों से हार्मनी का स्वरूप बना।

हार्मनी में स्थायी स्वर हमेशा स्थिर नहीं रहता, बल्कि बदलता भी रहता है। यह आवश्यक नहीं कि स्वर समुदाय 'सा' (सी) से आरम्भ हुई हो, उसके शेष स्वर उसी के साथ सम्बद्ध रहें। 'षड्ज' से बदलकर ऋषभ, गान्धार, मध्यम व पंचम इत्यादि स्वरों में से कोई भी आधार स्वर बन सकता है तथा अगली रचना उस नए आधार स्वर के अनुसार गाई जाती है। एक प्रकार से यहाँ षड्ज स्वर का परिवर्तन होता रहता है अर्थात् कभी षड्ज को आधार स्वर मानकर रचनाएँ बनाई जाती हैं, तो कभी ऋषभ को और कभी गान्धार स्वर आधार यानि मूलभूत स्वर मानकर उन्हीं स्वरांतरों से नवीन स्वरावली बनाई जाती है। इस प्रक्रिया के लिए गायकवृंद तथा वाद्यवृंद की आवश्यकता होती है। हार्मनी सङ्गीत कुछ विशिष्ट स्वर समुदायों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है तथा यह स्वर समूह तीन-तीन स्वरों के त्रिकों में होते हैं इन त्रिकों को ही पाश्चात्य सङ्गीत में **कॉर्ड्स** कहा जाता है। प्रत्येक भाग में प्रमुख स्वरावली (धुन) से सम्बन्ध रखने वाली अलग-अलग सम्वादित स्वरावलियां होती हैं। प्राकृतिक स्वर सप्तक 'स रे ग म प ध नि' में सा- म, सा-प, सा - सां आदि द्विकों में स्वाभाविक सम्वाद हैं, इन्हीं द्विकों को आधार मानकर स्वरसंघातों का निर्माण होता है तथा इनका स्वरूप त्रिकों में ही मिलता है। कार्ड्स दो प्रकार के होते हैं।— पहला मेजर कॉर्ड जो 'सा ग प' जैसे तीव्र स्वरों से बनता है तथा दूसरा माइनर कॉर्ड, जिसमें 'स ग़ प' अथवा 'ध' स्वर को आधार स्वर मानकर 'ध सां ग़' जैसे स्वरान्तरों से बनाया जाता है, जिसमें स्वरों का स्वरूप (फ्लैट) कोमल रहता है। विभिन्न त्रिकों (कॉर्ड्स) को लेकर हार्मनी के अलग-

Scanned with OKEN Scanner

अलग भाग (टुकड़े) बनाए जाते हैं । हार्मनी की विशेषता यह होती है कि इसमें मुख्य सङ्गीत-रचना के साथ सम्वाद का ध्यान रखते हुए अन्य कर्णप्रिय स्वर समुदायों की रचना की जाती है ।

काल की गति के साथ-साथ अब हार्मनी का क्षेत्र भी काफी विकसित हो चुका है। आज फिल्मी सङ्गीत में भी इसका प्रयोग खुलकर हो रहा है । भारत में गाए जाने वाले समूह गायन में विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में भी इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से हो रहा है। पहले-पहल इसकी काफी आलोचना भी हुई, परन्तु धीरे-धीरे लोग इसके अभ्यस्त हो गए तथा मान्यता प्राप्त गयी। हार्मनी में निम्न प्रकार भी हैं—

अ. (**DAITONIC HARMONY**) : जिसमें मेजर (शुद्ध) व माइनर (कोमल) स्वरों का प्रयोग होता है ।

आ. (**CHROMATIC HARMONY**) : जिसमें प्रमुख स्वर (आधार स्वरों अथवा 'की नोट्स') के अतिरिक्त दूसरे स्वरों का भी प्रयोग हो।

इ. (**OPEN HARMONY**) : इसमें कॉर्ड्स के स्वरों के रूप विस्तृत रहता है अर्थात स्वरों का परस्पर अन्तराल दूर-दूर होता है ।

ई. (**CLOSE HARMONY**) : इसमें स्वरों की स्थिति पास-पास रहती है।

उ. (**PROGRESSION HARMONY**) : एक स्वर से दूसरे स्वर तक जाना अथवा एक कॉर्ड से दूसरे कॉर्ड तक जाना प्रोग्रैशन हार्मनी कहलाता है ।

ऊ. (**TRAID HARMONY**) : तीन स्वरों के समुदाय को कहते हैं जो कि एकान्तर पर लिखे जाते हैं जैसे - स- ग- प, इसे निमर्क भी कहते हैं।

ए. (**ROOT OF THE CHORD**) : कॉर्ड का प्रारम्भिक स्वर,जिस पर कॉर्ड की रचना होती है तथा उसका अनुपात होता है जैसे स ग प में स को रूट नोट कहेंगे।

Scanned with OKEN Scanner

ऐ. (**BASS NOTE**) : कॉर्ड्स के स्वरों के क्रम में परिवर्तन हो जाने पर उसका सबसे नीचा स्वर बास नोट कहलाता है।

ओ. (**CONCHORD**) : जो कॉर्ड स्वयं सुनने में पूर्ण व मधुर हो।

औ. (**DISCHORD**) : जो सुनने में अपूर्ण लगे हों, जिसमें कानों को कुछ और सुनने की आवश्यकता महसूस हो।

अं. (**PASSING NOTES**) : कॉर्ड्स के मध्य में स्थित रहने वाले वह स्वर जो कॉर्ड में प्रयोग नहीं हों, उन्हें पासिंग नोट्स कहते हैं जैसे स-ग-प- के बीच में रे-म पासिंग नोट्स होंगे।।

अनुगति (MELODY)

यदि हम भारतीय सङ्गीत की बात करें तो मैलोडी (अनुगति) ही उसका आधार है अथवा रागदारी का दूसरा नाम ही मैलोडी है। इसमें आधार स्वर (षड्ज) बहुत महत्पूर्ण होता है। इसमें एक-एक स्वर की बढ़त की जाती है। न्यास का इसमें बहुत महत्व होता है। मैलोडी में संपूर्ण गायन व वादन आधार स्वर से जुड़ा रहता है।। इसमें एक-एक स्वर की बढ़त करते हुए राग का विकास किया जाता है तथा रसमय वातावरण उत्पन्न किया जाता है। मैलोडी को अभिव्यक्त करने के लिए गायन व वादन की विभिन्न शैलियों को माध्यम बनाया जाता है । ध्रुवपद, ख़याल तथा ठुमरी शैली इनमें मुख्य हैं। शास्त्रीय तथा उपशास्त्रीय सङ्गीत दोनों ही विधाओं में मैलोडी का प्रयोग किया जाता है। आलाप, तानें, गमक, मींड इत्यादि का प्रयोग इसमें सहायक होता हैं। वादी, सम्वादी, अल्पत्व, बहुत्व, आविर्भाव-तिरोभाव इत्यादि का प्रयोग इसमें आनन्द की प्राप्ति कराता है। आनन्द की सूक्ष्मता तक पहुंचना इसका धर्म होता है। यह स्वयं भी पूर्ण है। प्रयुक्त प्रत्येक स्वर स्वयं में पूर्ण आनन्द का प्राप्ति कराता है उसको किसी दूसरे स्वर की आवश्यकता नहीं होती।

मैलोडी प्रधान सङ्गीत का उद्देश्य एक समय में एक-एक स्वर की बढ़त करने में निहित है। एक-एक स्वर की पूर्णता एवं उस स्वर के सच्चे लगाव के

Scanned with OKEN Scanner

ए. (BASS NOTE) : कॉर्ड्स के स्वरों के क्रम में परिवर्तन हो जाने पर उसका सबसे नीचा स्वर बास नोट कहलाता है।

ओ. (CONCHORD) : जो कॉर्ड स्वयं सुनने में पूर्ण व मधुर हो।

औ. (DISCHORD) : जो सुनने में अपूर्ण लगे हों, जिसमें कानों को कुछ और सुनने की आवश्यकता महसूस हो।

अं. (PASSING NOTES) : कॉर्ड्स के मध्य में स्थित रहने वाले वह स्वर जो कॉर्ड में प्रयोग नहीं हों, उन्हें पासिंग नोट्स कहते हैं जैसे स-ग-प- के बीच में रे-म पासिंग नोट्स होंगे।।

अनुगति (MELODY)

यदि हम भारतीय सङ्गीत की बात करें तो मैलोडी (अनुगति) ही उसका आधार है अथवा रागदारी का दूसरा नाम ही मैलोडी है। इसमें आधार स्वर (षड्ज) बहुत महत्पूर्ण होता है। इसमें एक-एक स्वर की बढ़त की जाती है। न्यास का इसमें बहुत महत्व होता है। मैलोडी में संपूर्ण गायन व वादन आधार स्वर से जुड़ा रहता है।। इसमें एक-एक स्वर की बढ़त करते हुए राग का विकास किया जाता है तथा रसमय वातावरण उत्पन्न किया जाता है। मैलोडी को अभिव्यक्त करने के लिए गायन व वादन की विभिन्न शैलियों को माध्यम बनाया जाता है । ध्रुवपद, ख़याल तथा ठुमरी शैली इनमें मुख्य हैं। शास्त्रीय तथा उपशास्त्रीय सङ्गीत दोनों ही विधाओं में मैलोडी का प्रयोग किया जाता है। आलाप, तानें, गमक, मींड इत्यादि का प्रयोग इसमें सहायक होता हैं। वादी, सम्वादी, अल्पत्व, बहुत्व, आविर्भाव-तिरोभाव इत्यादि का प्रयोग इसमें आनन्द की प्राप्ति कराता है। आनन्द की सूक्ष्मता तक पहुंचना इसका धर्म होता है। यह स्वयं भी पूर्ण है। प्रयुक्त प्रत्येक स्वर स्वयं में पूर्ण आनन्द का प्राप्ति कराता है उसको किसी दूसरे स्वर की आवश्यकता नहीं होती।

मैलोडी प्रधान सङ्गीत का उद्देश्य एक समय में एक-एक स्वर की बढ़त करने में निहित है। एक-एक स्वर की पूर्णता एवं उस स्वर के सच्चे लगाव के

माध्यम से ही भारतीय सङ्गीतज्ञ सङ्गीत की पूर्णता का साक्षात्कार कराता है। यही उसकी विशिष्टता है। मैलोडी सङ्गीत में एक-एक स्वर का शृंगार किया है।

मैलोडी सङ्गीत सप्तक का प्रारम्भिक स्वर अर्थात षड्ज (सा), जो स्थाई स्वर भी कहलाता है सम्पूर्ण गायन अथवा वादन का केन्द्र बिन्दु होता है। बार-बार कलाकार को इस स्वर पर वापिस आना पड़ता है तथा यह सदैव गुंजित होता रहता है। मैलोडी सङ्गीत में गायन वादन के अन्तर्गत राग का विकास अथवा राग के स्वरों की बढ़त कुछ इस प्रकार होती है कि सभी स्वरों का सम्बन्ध स्थाई स्वर से स्वाभाविक रूप से रहतो है। विभिन्न स्वरों का महत्व इसी बात में है कि वह स्थाई स्वर के साथ सम्वाद बनाए रखें। इसी में राग का सौन्दर्य बना रहता है।

मैलोडी सङ्गीत की एक विशेष विशेषता यह है कि यह एकल सङ्गीत है, हार्मनी की तरह सामूहिक सङ्गीत नहीं। शास्त्रीय सङ्गीत (मैलोडी) में कलाकार पूर्णत: अपनी कल्पना की उड़ान से ही सर्वप्रथम स्वयं आनन्द प्राप्त करता है, तदुपरांत श्रोताओं को उस आनन्द की प्राप्ति कराता है। वह क्षण प्रतिक्षण राग के नियमों में बद्ध रहकर भी उन ही स्वरावलियों से नए-नए गुलदस्ते बनाता है। यही कारण है कि यदि एक ही राग अलग-अलग कलाकारों से सुना जाए, तो सुनने वाले का कुछ नया सुनने को मिलेगा। यही नवीनता मैलोडी सङ्गीत का जीवन है ।

कल्पना कीजिए, यदि कोई सफल साधक आपके सम्मुख किसी ऐसे राग की अवतारणा कर रहा है, जिससे करुणा फूटी पड़ती हो, कलाकार केवल आलाप कर रहा है, 'भाषा' का आश्रय उसने नहीं लिया है, वह अपने स्वर प्रयोग से ऐसी स्थिति ला देता है कि आप सुध-बुध खो देते हैं, स्वरों द्वारा अभिव्यक्त करुणा का 'सम्वाद' आपके हृदय में स्थित करुणा से होता है, वह जागती है। आपके नेत्रों में अविरल धारा बहने लगती है, ऐसी मानसिक स्थिति का निर्माण होता है, जिसमें चारों ओर से करुणा का समुद्र उमड़ता हुआ प्रतीत होता है, तब आपके हृदय में स्थित व्यक्तिगत राग द्वेष की ग्रन्थियाँ घुल जाती हैं तथा आप एक विशेष रसमय आनन्द में गोते लगाते हैं। यह आनन्द की अनुभूति ही मैलोडी है ।

आनन्द की इसी प्राप्ति को 'अलौकिक' कहा जाता है, इसकी अनुभूति

के समय मनुष्य अपनी व्यक्तिगत सीमाओं के बन्धन से छूट जाता है। उसका हृदय 'अपरिमित' हो जाता है और वह 'व्यक्ति' न रहकर 'मानव' बन जाता है ।

भारतीय मनीषियों ने कहा है कि 'गीत' (सार्थक वाक्य नहीं, नियमानुसार स्वरों के प्रयोग मात्र) के द्वारा श्रोताओं के हृदय में स्थित उनके व्यक्तिगत राग, द्वेष इत्यादि का शमन करके उन्हें आनन्दमात्र की अनुभूति कराई जा सकती है। उस समय श्रोताओं के हृदय में स्थित रजोगुण एवं तमोगुण सर्वथा दब जाते हैं तथा उनके अन्त:करण में 'सत्त्व' का उदय होता है। अन्त:करण की वह स्थिति स्वच्छ दर्पण के समान होती है। व्यक्तिगत राग द्वेष, चिन्ता, हर्ष, उत्सुकता इत्यादि के भार से मुक्त होने के कारण उस समय श्रोताओं की चेतना 'आनन्दस्वरूप' होती है। यह आनन्द अनिवर्चनीय है, यह रस की अनुभूति ही मैलोडी सङ्गीत है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है मैलोडी सङ्गीत एकल सङ्गीत है, इसके प्रदर्शन के लिए गायकों व वाद्यों के समूह की आवश्यकता नहीं होती। इसमें सफल साधक राग के नियमों में बंधकर भी अपनी कल्पना की उड़ान में उड़ने के लिए स्वतंत्र रहता है। तबला, मृदंग, पखावज जैसे तालवाद्य उसे लय प्रदान करते हैं। सारंगी, वायलिन जैसे वाद्य उसका अनुसरण कर उसके प्रदर्शन में चार चाँद लगा देते हैं।

मैलोडी सङ्गीत की विशेषताएं

१. इसमें षड्ज स्वर (आधार स्वर) का महत्व अकथनीय है तथा यह स्थिर रहता है। इसमें बदलाव नहीं लाया जा सकता। गायन अथवा वादन में प्रयुक्त अन्य स्वर भी स्थायी स्वर से निरन्तर सम्बन्ध बनाए रखते हैं। तानपूरा इसमें सहायता प्रदान करता है। सङ्गति करने वाले अन्य ताल वाद्य तथा स्वर वाद्यों का आधार स्वर भी वही होता है जो कलाकार का होता है। शहनाई तथा बाँसुरी वादन में भी षड्ज स्वर का अखण्ड वादन इस सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

२. यह एकल सङ्गीत है । इसमें साधक एक-एक स्वर को बढ़त राग के नियमों के आधीन रहकर अपनी कल्पना के आधार पर करता है। इसमें

Scanned with OKEN Scanner

कलाकार राग में प्रयुक्त प्रत्येक स्वर द्वारा सङ्गीत का ऐसा पवित्र तथा स्वार्गिक वातावरण प्रस्तुत करता है, जो स्वयं में अद्वितीय होता है, जिसमें कलाकार व श्रोता, दोनों ही विशेष रस का आनन्द प्राप्त करते हैं। इसीलिए भारतीय सङ्गीत का सम्बन्ध ब्रह्म से जुड़ा माना गया है तथा उसको मोक्ष का साधन माना गया है। मैलोडी (भारतीय) सङ्गीत में केवल एक स्वर (षड्ज) के द्वारा ही सफल साधक को स्वयं भी ब्रह्माण्ड के दर्शन हो जाते हैं तथा वह श्रोताओं को भी उसके दिग्दर्शन करा देता है। अपनी कला के प्रदर्शन से वह श्रोताओं को पूर्णानन्द का अनुभव करा देते हैं।

३. मैलोडी सङ्गीत को आलाप, मुर्की, तान, मींड, गमक, बोल-आलाप, बोल-बाँट, इत्यादि अलंकरणों से सजाया जाता है, जिससे पल-पल एक नवीनता का वातावरण कलाकार द्वारा उत्पन्न किया जात है ।

४. इसमें गायन की विभिन्न शैलियों जैसे ध्रुवपद, धमार, ख़याल (विलम्बित व द्रुत), तराना (शुष्काक्षर एवं ख़याल अङ्ग), ठुमरी (पूरब अङ्ग में - बनारस तथा लखनऊ) तथा पंजाब (अंङ्ग) टप्पा, दादरा, चैती, कजरी, इत्यादि का प्रदर्शन किया जाता है ।

५. लय की विभिन्नता (लयकारी) भी इस सङ्गीत की एक विशेषता है। यही लय इसके प्रदर्शन में गति (जीवन) प्रदान करती है। एक ही ताल में विभिन्न लय प्रयोग अथवा बाँट इसमें प्रतिपल नवीनता का संचार करती है ।

६. मैलोडी सङ्गीत के प्रदर्शन में इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि प्रयुक्त स्वरों का अन्तराल अधिक न हो, इस अन्तराल का प्रयोग कभी-कभी तो किया जा सकता है (सम्वाद नियम का ध्यान रखते हुए) परन्तु बारम्बार नहीं क्योंकि इसके प्रदर्शन में प्रत्येक स्वर की बढ़त पर ध्यान दिया जाता है ।

७. मैलोडी (भारतीय) सङ्गीत में रागों के समय सिद्धान्त का पालन करना आवश्यक होता है क्योंकि यदि राग का प्रदर्शन समयानुसार किया जाय

Scanned with OKEN Scanner

तो वह अधिक आनन्द प्रदान करता है; हालाँकि दक्षिण भारतीय ऐसा नहीं मानते ।

हार्मनी व मैलोडी में विभिन्नताएं

वैसे तो ऊपर दिए गए वर्णन में हार्मनी तथा मैलोडी में विभिन्नताएं काफी हद तक स्पष्ट हो ही गयी हैं परन्तु फिर भी इन्हें यहां पुनः दिया जा रहा है।

१. हार्मनी एक सामूहिक गायन शैली है जबकि मैलोडी एकल गायन है।

२. हार्मनी में स्थाई स्वर (षड्ज) अथवा आधार स्वर बदल भी सकता है, जबकि मैलोडी में यह असंभव है ।

३. हार्मनी में कम से कम तीन कण्ठ या वाद्य एक समय में आवश्यक होते हैं जबकि मैलोडी में ऐसा नहीं होता।

४. हार्मनी में स्वरों की दूरी अधिक होती है, जबकि मैलोडी में एक-एक स्वर की बढ़त वादी, सम्वादी तथा अनुवादी स्वरों का ध्यान रखकर बढ़त की जाती है।

५. हार्मनी में सभी गायक व वादक प्रदर्शन करते समय एक दूसरे पर आधारित रहते हैं अर्थात् उनका सम्पूर्ण प्रदर्शन स्वरलिपिबद्ध रहता है तथा समूह के किसी भी सदस्य स्वतंत्र रूप से कुछ भी करने की स्वतंत्रता नहीं होती जबकि मैलोडी में केवल राग की नियमबद्धता होती है, लेकिन कलाकार को कल्पना की स्वतंत्रता रहती है।

६. हार्मनी में सहायक वाद्य सङ्गीत के साथ-साथ चलते हैं जबकि मैलोडी में सहायक स्वर वाद्य कलाकार अनुसरण करते हैं।

७. हार्मनी में सम्पूर्ण प्रदर्शन पूर्वनियोजित होता है जबकि मैलोडी में कलाकार की कल्पना प्रदर्शन करते समय ही हर बार नये रूप में सामने आती है।

Scanned with OKEN Scanner

हार्मनी में एकरसता रहती है जबकि मैलोडी में विभिन्न गायन शैलियां ध्रुवपद, धमार, ख़याल, ठुमरी, चैती, कजरी, टप्पा इत्यादि अथवा स्थूल रूप में शास्त्रीय व उपशास्त्रीय शैलियां प्रचार में हैं।

८. हार्मनी का प्रभाव मानव मस्तिष्क को कुछ समय के लिए प्रभावित करता है जबकि मैलोडी मानव हृदय को प्रभावित करता है ।

९. हार्मनी में स्वर की सूक्ष्म अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है जबकि मैलोडी अर्थात्

१०. रागदारी सङ्गीत में संगीतज्ञ एक-एक स्वर के आकर्षक तथा पवित्र प्रभाव को इस प्रकार विकसित करता है तथा ऐसे नैसर्गिक वातावरण का सृजन करता है, जो स्वयं में विलक्षण होता है तथा जिसमें डूबकर कलाकार तथा श्रोता दोनों ही पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करते हैं ।

११. हार्मनी में सब कुछ कृत्रिम होता है जबकि मैलोडी में सब कुछ प्राकृतिक होता है।

१२. हार्मनी में अधिकांशतः वाद्य-वादन की प्रधानता रहती है तथा गीत गौण रहता है जब मैलोडी में ठीक इसका विपरीत होता है।

१३. हार्मनी को पूर्णतः लिपिबद्ध किया जा सकता है जबकि मैलोडी में ऐसा नहीं किया जा सकता ।

१४. हार्मनी का मूल आधार मैलोडी ही होता है तथा उसी के ऊपर विभिन्न स्वरों का प्रयोग कर हार्मनी का निर्माण किया जाता है ।

१५. हार्मनी सङ्गीत के प्रदर्शन में समय सिद्धांत का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता जबकि मैलोडी (रागदारी सङ्गीत)में समय सिद्धान्त का पालन आवश्यक है ।

१६. हार्मनी शैली में वृन्दवादन के कलाकारों स्वरलिपि द्वारा इस बात का स्पष्ट निर्देश साथ में दिया जाता है कि किस-किस वादक को कहां-कहां किन-किन स्वरों पर कितनी देर तक ठहरना है तथा किस स्वर समुदाय को कितनी बार बजाना है, जबकि मैलोडी शैली में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं होता।

Scanned with OKEN Scanner

हार्मनी का प्रयोग मैलोडी तथा मैलोडी का प्रयोग हार्मनी में उपयुक्त नहीं

हार्मनी तथा मैलोडी सङ्गीत की दो ऐसी विधाएँ हैं जिन्हें पूर्व तथा पश्चिम कहा जा सकता है। दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं, यदि इनमें से किसी एक विधा पर भी किसी दूसरी विधा पर थोपा जाएगा तो दोनों ही अपना-अपना सौन्दर्य खो देंगी। एक तरफ गाने तथा बजाने का सामूहिक प्रयास तथा दूसरी तरफ गायक व वादक की स्वतंत्र कला। दोनों का एक दूसरे में समावेश, यह तो सोचना भी असङ्गत है। यदि कोई कलाकार इस विषय में कुछ नया करने का प्रयास भी करेगा, तो वह अनर्गल होगा। एक तरफ सङ्गीत में कॉर्ड्स का प्रयोग तथा दूसरी राग पर आधारित सङ्गीत। चित्रपट सङ्गीत में इसका प्रयोग किया जा रहा है वह भी यदा कदा। फिल्म सङ्गीत के लिए रचित मैलोडी पर आधारित रचनाएँ आज भी गुनगुनाई जाती हैं। परन्तु पाश्चात्य सङ्गीत पर आधारित आधुनिक सङ्गीत रचनाएँ जल्द ही सुनने वालों की हृदय से दूर हो जाती हैं। कहाँ मैलोडी जैसा पवित्र आध्यात्मिक सङ्गीत तथा कहाँ हार्मनी जैसा कृत्रिम सङ्गीत। दोनों का आपस में मेल कदापि उचित नहीं ठहराया जा सकता ।

हार्मनी में मैलोडी का प्रवेश इसलिए भी नहीं हो सकता, क्योंकि मैलोडी संङ्गीत के सौन्दर्य का मुख्य आधार आलाप, तान, मींड, मुर्की, खटका, जमजमा इत्यादि का प्रयोग हार्मनी में नहीं किया जा सकता।

कुछ विद्वान हार्मनी तथा मैलोडी में समानताओं के लिए कुछ तर्क भी देते हैं। आईए अब उन तर्कों की ओर भी ध्यान दे लिया जाय हार्मनी पूर्णतः सम्वाद तत्व पर आधारित है तथा सम्वादी तत्व पर ही मैलोडी सङ्गीत भी आधारित है। इस सम्वाद तत्व का ज्ञान हमारे प्राचीन आचार्य्यों को आरम्भ से ही था। षड्ज-मध्यम सम्वाद तथा षड्ज-पंचम सम्वाद इस सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है । सम्वाद भी आधार स्वर पर ही आधारित होते हैं तथा आधार स्वर का मैलोडी में महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस प्रकार हार्मनी तथा मैलोडी में परस्पर सम्बन्ध है। दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि तानपूरा भी सम्वाद तत्व को ध्यान रखकर मिलाया जाता है जैसे प़ सा सा़ स अथवा म़ सा सा सा़ तथा यह प्रक्रिया भी हार्मनी सङ्गीत का ही एक अङ्ग है।

राग और भाव

कला के द्वारा प्राप्त वह आनन्द रस है जिसकी अनुभूति के समय श्रोता या दर्शक अपनी सुध बुध भूल जाते हैं, रस कहलाता है। सांसारिक संघर्षों में उलझे हुए मानव का मन पक्षपात और द्वेष से हीन नहीं होता। अत: उसके मन को स्वच्छ दर्पण नहीं कहा जा सकता । किन्तु किसी कथा के चरित्रों के प्रति उसका व्यक्तिगत राग द्वेष नहीं होता। इसलिए इन चरित्रों के श्रवण या देखते समय (अभिनय को) सहृदय व्यक्ति का मन पूर्णत: स्वच्छ होता है और उसके मन में सोये हुए स्वाभाविक स्थाई भाव रति (अनुराग), हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, विस्मय और वैराग्य विशुद्ध रूप में स्फुरित होते हैं। ये स्थाई भाव मनुष्य के मन में जन्म-जन्मांतर से बसे होते हैं। रस-परिपाक के चार तत्व हैं—

१. स्थाई-भाव
२. विभाव (आलम्बन और उद्दीपन)
३. अनुभाव
4. संचारी-भाव

विशेष रूप से मन को भावित करने वाले तत्व विभाव कहलाते हैं। राम के मन में सीता के लिए अनुराग का उदय हुआ, इसलिए राम का हृदय रति के उद्वेष का आश्रय है तथा सीता आलम्बन है। सीता के हृदय में राम को देखकर अनुराग उत्पन्न हुआ, इस अनुराग का आश्रय सीता है और आलम्बन राम है।

आश्रय में उदित भाव को उद्दीप्त करने अथवा उकसाने वाली वस्तुएँ उद्दीप्त विभाव है। प्रकृति व चारों ओर की परिस्थितियाँ जो प्रेम या विरह को उकसाती हैं उन्हीं उद्दीपन विभाव कहते हैं।

अनुभाव— पश्चात् उत्पन्न होने वाले भाव। राम की जिन चेष्टाओं से सीता के प्रति उनके प्रेम की अभिव्यक्ति होती है, वे अनुभाव हैं। ठंडी-ठंडी सांसें लेना, छुप-छुप कर देखना। स्थाई भाव की प्रतिक्रियाएं हैं।

Scanned with OKEN Scanner

संचारी भाव— आश्रय की क्रियाएँ जो अनेक रसों में पायी जाती हैं, उन्हें संचारी या व्याभिचारी भाव कहते हैं। इस दृष्टि से यह कहा जायेगा कि आलम्बन विभाव पर आलंबित उद्दीपन विभाव द्वारा, उद्दीपित अनुभावों द्वारा, अनुभावित और संचारी भावों द्वारा पारिपोषित स्थाई भाव द्वारा प्राप्त दर्शक के मन का वह चेतना रस है जिसकी अनुभूति होने पर सहृदय मानव कुछ क्षणों के लिए अपने व्यक्तित्व को सर्वथा भूल जाता है ।

कला — लौकिक सत्य का अभिनय आदर्श कला है, जैसे किसी वृद्धा का चित्र । मुख्य रस 4 हैं—

१. श्रृंगार
२. रौद्र
३. वीर
४. वीभत्स

१. श्रृंगार — श्रृंगार का अनुसरण हास्य है।

२. रौद्र — इसका परिणाम करुण रस की उत्पत्ति करता है। क्रोधान्ध व्यक्ति के क्रोध के शिकार व्यक्ति को देखकर करुणा उत्पन्न होती है ।

३. वीर— वीर रस का कर्म अद्भुत है।

४. वीभत्स — इसके दर्शन से भय उत्पन्न होता है, जैसे शमशान।

कुछ आचार्य्यों के मत से राग स्वर परिपाक करने में स्वयं समर्थ है। रस कौमुदीकार श्री कण्ठ ने कहा है कि काव्य, गीत एवं नाट्य स्वतंत्र रूप से रस परिपाक कर सकते हैं। आचार्य बृहस्पति का कथन है कि —

स्थाई स्वर पर आलम्बित उसके सम्वादी स्वर द्वारा उद्दीप्त, अनुवादी स्वरों द्वारा अनुभावित और संचारी स्वरों द्वारा पारिपोषित सहृदयों की वह चेतना विशेष 'रस' है जिसकी अनुभूति के समय सहृदय मानव तन्मय हो जाता है।

कृष्ण की मुरली के स्वर में डूब कर सब कुछ भूल जाने वाली गोपियाँ

Scanned with OKEN Scanner

और तंत्रीनाद में डूब जाने वाले मृग ऐसी अनुभूति का प्रमाण है।

भरत के गांधार स्वर की मूर्च्छना (वर्तमान कल्याण थाट से मिलते-जुलते स्वर) और निषाद की मूर्च्छना (वर्तमान बिलावल थाट के स्वरों से मिलते स्वर) को करुण रस के लिए, षड्ज की मूर्च्छना (वर्तमान काफी थाट से मिलते स्वर) और ऋषभ की मूर्च्छना (वर्तमान भैरवी थाट से मिलते स्वर) को वीर, अद्‌भुत व रौद्र के लिए, मध्यम की मूर्च्छना (खमाज थाट से मिलते स्वर) को संयोग, शृंगार और पंचमादि मूर्च्छना (वर्तमान असावारी थाट से मिलते स्वर) तथा धैवत की मूर्च्छना (आचार्य्य बृहस्पति के मेलदलन स्वर) को वीभत्स और भयानक रस के लिए उपयुक्त माना है ।

मुस्लिम प्रभाव से प्रचलित वर्तमान भैरव, तोड़ी, मारवा तथा तोड़ी थाट पीड़ा अथवा वैराग्य को व्यक्त करते हैं।

आचार्य कल्लिनाथ के समय स्वर और भाव तथा राग और रस के प्रयोग में अनियम हो गया था । भक्त लोग केवल राग के समय पर विचार करते थे और प्रचलित रागों में भक्ति का ही वर्णन करते थे। दरबारी अथवा राज्याश्रित कलाकार सभी रागों में शृंगार का वर्णन करते थे ।

राग व उनके ध्यान

अमूर्त बात को मूर्त करके दिखाना या बताना यह पुराणों की परम्परा है। इसे आगम परम्परा भी कहते हैं ।

'वृत्र' शब्द का अर्थ **बादल** 'इन्द्र' का अर्थ **वायु** है। 'वज्र' का अर्थ **बिजली** है। चारों ओर के क्षितिज तक छाया हुआ बादल पौराणिकों की दृष्टि में वृत्रासुर नामक राक्षस है, उसके नीचे का ओट पृथ्वी से और ऊपर का ओट आकाश से मिला हुआ है। उस बादल के फाड़ने वाली बिजली इन्द्र का वज्र है और उस बादल को छिन्न-भिन्न कर देने वाला वायु देवराज इन्द्र है अर्थात एक प्राकृतिक सत्य को पौराणिक काल में कथा का रूप दे दिया ।

Scanned with OKEN Scanner

इसी दृष्टिकोण के अनुसार विशेष राग के मूड को स्पष्ट करने के लिए समर्थ कवियों ने रागों के ध्यानों का निर्माण किया और अकबरी युग में उन रागों के ध्यान भी संस्कृत भाषा में बना दिए गए हैं, जो राग मुसलमान भारत में लाए थे। रस शास्त्र से अपरिचित गायकों के मन को राग के ध्यान के आधार पर रंग देने के लिए राग ध्यानों का आविष्कार किया गया और राग-रागनियों के परिवार की कल्पना की गयी। अन्ततोगत्वा इन रागों के ध्यानों के आधार पर उनके चित्र भी बना दिए गए।

षाड्जी जाति का ध्यान

षाड्जी जाति का ध्यान महाराज जगदेव मल्ल ने दिया है (११२४-११४५ई०)। इसका वर्णन इन्होंने अपने ग्रंथ सङ्गीत चूड़ामणि में दिया है। जो किसी अन्य प्राचीन ग्रंथ से उद्धृत किया हुआ प्रतीत होता है। आचार्य्य अभिनवगुप्त के एक गुरु का मत है कि नाट्यशास्त्र का निर्माण ब्रह्ममत, सदाशिवमत और मुनिमत के ग्रंथों की सामग्री के आधार पर किया गया है। सदाशिवमत ही आगम परम्परा है, जो अत्यन्त प्राचीन है। शैव लोगों की दृष्टि में भगवान शंकर के पाँच मुखों से पाँच रागों की सृष्टि हुई था छठे राग की जननी पार्वती है ।

राग रागिनी वर्गीकरण को सामान्यत: उत्तर भारतीय सङ्गीत की विशेषता माना जाता है परन्तु यह सत्य नहीं है। वारंगल के निवासी श्रृंगार शेखर ने अपनी रचना अभिनव-भूषण में पुरुष-रागों तथा स्त्री-रागों की चर्चा की है और उनकी पत्नियों की भी।

प्राचीन मुनियों ने श्रुतियों में ५ प्रकार के जाति भेद माने हैं (१) दीप्ता जाति (२)मध्या जाति (३) आयता जाति (४) मृदु जाति (५) करुणा जाति।

(१) तीव्रा (२) रौद्री (३) वज्रिका (४) उग्रा, इन चारों की दीप्ता जाति है ।

(१) छन्दोवती (२) रंजिनी (३) मार्जनि (४) रक्ता (५) रम्या तथा (६) क्षोभिणी इन ६ की मध्या जाति है ।

Scanned with OKEN Scanner

(१) कुमुद्वती (२) क्रोध (३) प्रसारिणी (४) रोहिनी और (५) संदीपनी, इन पांचों की आयता जाति मानी गई है ।

(१) मंदा (२) रक्तिका (३) प्रीति तथा (४) क्षिति इन चारों की मृदु जाति है ।

पूर्वोक्त श्रुति जातियों में शृंगारादि रसों का बीजरूप में सर्वदा निवास रहता है जो रागों के रस रूप निर्माण में ताल (मातृरज) लय (मात्र दुग्ध) से पोषण पाकर अपने अंग प्रत्यंगों का विकास करते हैं।

दीप्ता जाति की श्रुतियों में अद्‌भुत, वीर और रौद्र इन तीन रसों का बीज निहित होता है। आयता जाति में केवल हास्य रस का बीज गर्भित होता है। मृदु जाति की श्रुतियों में केवल सुशोभन आकार वाला शृंगार रस ही गर्भित होता है और मध्या जाति की श्रुतियों में हास्य और शृंगार इन दोनों रसों का आधान बीज रूप से निहित होता है। करुणा जाति की श्रुतियों में करुणा रस के साथ-साथ वीभत्स व भयानक रस का निवास रहता है। इस प्रकार श्रुति जातियों द्वारा रसों को पहचाना जा सकता है ।

साहित्य शास्त्र में नव रस माने गए हैं। किन्तु नाट्य एवं सङ्गीतशास्त्र में आठ रस माने गए हैं। श्रुतियों में बसे हुए रसों के रूप, रंग और आकारों का ठाठ प्राचीन सङ्गीतज्ञ मुनियों ने भली-भाँति देखा है तभी राग रागनियों के रूपों, रंगों और प्रभावों को उन्होंने चित्रित किया था।

वेदों में 'रसौ वैस:' कहकर रस को ईश्वर प्रतिपादित किया है। कुछ सज्जन रसरूपी ईश्वर को रूप रहित मानते हैं और अनेक ऋषि मुनि और सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्य्यगणों ने रसों का वर्णन रूप सहित किया है ।

आधुनिक चतुर संगीतज्ञ पुरुष मानते हैं कि नाद ब्रह्म अरूप है किन्तु जब ताल स्वर रसानुकूल लय को प्राप्त हो जाते हैं तब अनेक रागों के रूपक बहुविध

Scanned with OKEN Scanner

स्वरूप धारण करने लगते हैं । यह सत्य है कि केवल स्वर मात्र के सुनने से रूपों का रूपक नहीं बन सकता किन्तु यह भी सिद्ध सत्य है कि ताल और लय रूपिणी मातृ प्रकृति और पूर्ण नादमय पुरुष के संयोग द्वारा रूप बनने लगते हैं। माता पिता के संयोगजनित परिणामों से ही संसार के जीवन मात्र रूप धारण करते हैं, उसी प्रकार रसों के रूप, रंग, आकार, तालों और लयों द्वारा विकसित एवं पुष्ट होते हैं जिस रसमय नाद पुरुष का सम्बन्ध अपेक्षित होता है ।

पुराने युग में प्राचीन मुनियों ने रस और ताल के अनुरूप ही रागों के रूपों को प्रकटित किया था, वह विज्ञान शताब्दियों से नष्ट हो चुका है, अब आज का नवीन विज्ञान युग फिर से उसकी खोज करेगा तथा अवश्य खोज करके उसे सिद्ध करके दिखलायेगा।

गायन का आधार श्रुतियों पर अविलम्बित होता है और श्रुतियों में रस बीजों का अवलम्बन है, जिनके रूपमय रूपकों को प्राचीन युग के संगीतज्ञ वैज्ञानिकों ने लयों द्वारा प्रकट करके दिखला दिया था, गायन वाद्य और अभिनय त्रिविध संगीत श्रुतियों पर ही अविलम्बित है और वह कानों एवं नेत्रों द्वारा ग्राह है। रसानुकूल स्वरों और तालों के प्रयोगों द्वारा अनुकूल लय पाते हैं। रूप (दृश्य) प्रकट हो जाता है। यह तो सहृदय पुरुषों के लिए प्रत्यक्ष सिद्ध हो रहा है, इसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं है ।

आज का वैज्ञानिक युग पाँच प्रकार की ऐलीमेन्ट गैस मानता है, जिनका श्वासोच्छास से सम्बन्ध है। अन्दर जाने वाले श्वास में ऑक्सीजन अधिक होती है, बाहर निकलते वक्त कार्बन डाइऑक्साइड का प्रमाण अधिक होता है । तब सांस की अशुद्धि में गैस बनती है, गैस में रंग होते हैं जहां रंग है वहाँ तरंग वीचियां होती हैं। तरंग वीचियों में गति की झड़प होती है, जिस की नाप तोल भी हो सकती है। तद्नुसार रूप आकारों का बनना सम्भावित है। इस प्रकार आज के वैज्ञानिक युग में पाँच तत्व माने जाते हैं। वे गैस में रंग मानते हैं, लय साधन करने वाले घोर तपस्वी गायक के मुख अथवा अत्यन्त रगड़ खाये हुए वाद्य यंत्रों की मुखरित नाद वीचियों की खोज करने पर सत्यासत्य का निर्णय अवश्य होगा। श्रुति के अधीन

रस बीज को जब लय द्वारा पोषण मिलता है, उस समय रागों के रूपक लय धारण करने लगते हैं। जिसे प्रत्यक्ष करके ही प्राचीन मुनियों ने माना था ।

तालों को जननी माता का रज स्वरों को जनक शुक्र तथा रसों को आत्मा माना गया है। प्राचीन संगीतज्ञ मुनियों ने स्वरों को तार-तार करके गान किया था तभी उन्होंने रागों के रूपों में चमत्कारपूर्ण दैवी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं।

Scanned with OKEN Scanner

समप्रकृतिक रागों में अन्तर

राग-गायन का अर्थ क्या है?

किसी निश्चित स्वर-समूह को निश्चित क्रमानुसार उनके आपस के वज़न को कायम रखते हुए अर्थात् बहुत्व-अल्पत्व का ध्यान रखते हुए, उनके वैशिष्ट्य को कायम रखते हुए, परिश्रम से मंजी मंजायी आवाज़ में गाकर अथवा हस्तकौशल द्वारा वाद्य पर बजाकर अपनी स्वाभाविक प्रतिभा तथा अनुभव-प्राप्त कुशलता से अधिकतम आनंददायी बनाते हुए रस-निर्माण करने को ही 'राग-सङ्गीत' अथवा 'रागदारी-सङ्गीत' कहते हैं।

समप्रकृतिक रागों का अर्थ यह है कि जिन रागों में स्वर साम्य हों और उन्हें कुछ नियमों द्वारा भिन्न दिखाया जाये । वे साधन जिनसे परस्पर भिन्नता दिखाई जायें निम्नलिखित हैं—

थाट, स्वरों का महत्व, राग-जाति, वादी-संवादी स्वर, विस्तार-क्षेत्र, राग की प्रकृति, पूर्वराग या उत्तरराग, अल्पत्व-बहुत्व, तथा आविर्भाव-तिरोभाव आदि।

थाट

यह आधुनिक राग वर्गीकरण का एक प्रकार है। आधुनिक काल में किसी भी राग की पहली परख थाट से ही की जाती है। यदि दो रागों में स्वर साम्य हो किन्तु थाट भिन्न है तो दोनों ही रागों की प्रकृति में परिवर्तन हो जायेगा जैसे- भूपाली और देशकार रागों के स्वर समान हैं। एक ही जाति के राग हैं किन्तु दोनों ही राग दो पृथक थाटों के हैं। भूपाली कल्याण थाट का राग है उसमें तीव्र मध्यम व निषाद वर्ज्य होने पर भी भूपाली राग का चलन और उठाव कल्याण राग से मिलता-जुलता है। जब कि देशकार राग का चलन व उठाव बिलावल के सदृश्य होगा।

स्वरों का महत्त्व

दो रागों में समान स्वर लगते हुए भी अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं। कारण यह है कि प्रयुक्त होने वाले स्वरों को भिन्न भिन्न महत्व दिया जाता है। जैसे भूपाली में गांधार, ऋषभ स्वरों की प्रबलता है जब कि देशकार में धैवत स्वर की प्रबलता है। उसी प्रकार तोड़ी में गांधार स्वर की प्रबलता है तो गुर्जरी में ऋषभ स्वर की प्रबलता है। उसी प्रकार पूर्वी थाट के विभिन्न रागों में भिन्न-भिन्न स्वरों को महत्व देकर रागों के स्वरूप को अलग-अलग किया गया है जैसे- पूर्वी, पूरिया-धनाश्री, बसंत आदि।

राग-जाति : जो राग प्रत्यक्ष वर्ज्यावर्ज्य स्वरों से ही भिन्न है, उनकी परस्पर भिन्नता के सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं रहती ।

जैसे- एमन, मालश्री तथा हिंडोल।

एमन में सातों स्वर आरोहावरोह में प्रयोग होते हैं। मालश्री में रे ध वर्ज्य है।

हिंडोल में रे प वर्ज्य है।

भूपाली और जैतकल्याण दोनों रागों में गायक 'म नि' वर्ज्य मानते हैं। इनमें भिन्नता वादी स्वरों से पहचानी जाती है। जैत के अवरोह में रे तथा ध अति दुर्बल रहते हैं ऐसा भी एक भेद है।

राग आसावरी और जौनपुरी एक ही थाट के राग हैं, स्वर-साम्य भी हैं किन्तु जाति-भेद के कारण दोनों ही राग सम-प्रकृतिक होते हुए भी भिन्न हैं। आसावरी औडव-संपूर्ण जाति का राग है और जौनपुरी षाडव-संपूर्ण जाति का ।

शुद्ध कल्याण में म नि वर्ज्य मानते हैं अतः उसका भी प्रकार भूपाली जैसा दिखाई देना संभव है। उसमें फिर रे, ध स्वरों की अपेक्षा रे, प स्वर अधिक उपयोग में लाकर तथा मन्द्र स्थान में विशेष विस्तार करके और तानें ऋषभ स्वर पर छोड़कर भी दिखाते हैं। कोई प-ग व सं-ध ऐसी तानों में म - नि स्वरों का अंश दिखाकर शुद्ध कल्याण भूपाली से पृथक करते हैं। शुद्ध कल्याण में म, नि वर्ज्य करने के लिए राग-तरंगिणी में स्पष्ट सम्मति दी है —

Scanned with OKEN Scanner

गपौ धसौ सध पगा रिसाविति च सुस्वराः।
औडुवो गायक श्रेष्ठैः शुद्धकल्याण उच्यते।

तरंगिण्याम्।

वादी संवादी स्वर— भैरव, कालिंगड़ा, गौरी आदि राग समप्रकृतिक होते हुए भी वादी संवादी की भिन्नता होने के कारण अलग रहते हैं। भैरव में रे-ध का संवाद है तो कालिंगड़ा में ध-रे राग का संवाद।

विस्तार क्षेत्र— राग का विस्तार सीमित रूप से हो सकता है अथवा विस्तृत रूप में। किन्हीं-किन्हीं रागों का विस्तार तीनों सप्तकों में हो सकता है, किन्हीं-किन्हीं रागों का विस्तार केवल मन्द्र सप्तक में होता है या मध्य तार सप्तक में। जैसे- दरबारी- मन्द्र-मध्य सप्तक का राग है और अड़ाना तार सप्तक का राग है।

राग की प्रकृति— कोई राग गंभीर प्रकृति का होता है तो कोई चंचल प्रकृति का। जैसे दरबारी गंभीर रहता है और अड़ाना चंचल। ऐसा भी कहा जाता है कि दरबारी गायक दरबारों में राग दरबारी गाते समय तानों का प्रयोग नहीं करते थे तथा तानों को तैयारी दिखाने के लिए दरबारी के उपरान्त अड़ाना का द्रुत खयाल गाते थे।

पूर्वराग या उत्तर-राग— अधिकतर प्रातःकालीन राग उत्तर-राग प्रधान राग होते हैं और सायंकालीन राग पूर्वांग प्रधान पूर्वरागों का समय १२ बजे दिन से १२ बजे रात्रि तक का है जबकि उत्तर रागों का समय रात्रि १२ बजे से दिन के १२ बजे तक है। अक्सर मध्यम स्वर का प्रयोग समय बताने में सहायक होता है अतः मध्यम को अध्वदर्शक स्वर कहा गया है।

अल्पत्व-बहुत्व और आविर्भाव-तिरोभाव

स्वरों का महत्व उनके प्रयोग में है कि उनका अल्पत्व किया गया है अथवा बहुत्व। राग के वादी स्वर का हमेशा बहुत्व रहता है जब कि विवादी स्वरों का अल्पत्व।

दोनों मध्यम लिए जाने वाले कल्याण ठाठ के रागों का पृथक्करण करना कुछ कठिन है। इसका एक कारण यह है कि इनमें कई राग संपूर्ण हैं तथा कई का अवरोह 'सं नि ध प म प ध प ग म रे स' इस प्रकार होता है। किन्तु हमारे गुणी लोगों ने इन रागों को पृथक करने का जो साधन अर्थात् स्वर-विन्यास निश्चित किए हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. स रे स, ग मे ध, नि ध, सं, निध, प , मप धप, ग, म रे, गम धप, ग. म रे स । (हमीर)

२. स म, प ,मे प ध, प म , मे प ध प मे, प म स रे, स । (केदार)

३. ध, प रे, ग, म, प, म, ग, मरे, स, सं, धं, पं, पं, रे, रे, ग, म, प, म, ग, मं रे, सा (छायानट)

४. स, रे प, प ध, प , ग प म प, ग म रे स (कामोद)

५. स, रे, मे, प, प ध प , मे प धप, मरे, नि़ स, रे मे प, ग म रे, नि़, स। (श्यामकल्याण)

६. स, गरे, मग, प, मेप, धप, मग, रेग, रेमग, प रे, स = गौड़ सारंग

अब हम बिलावल थाट के समप्रकृतिक रागों को लेंगे। खानदानी गायक वादक बिलावल के सबेरे का कल्याण भी कहते हैं। उनका यह कथन ग़लत नहीं है। अधिकतर विद्वानों का मत यह है कि रात्रि के कल्याण के प्रकारों का मिश्रण बिलावल राग से होने से ये विभिन्न बिलावल के प्रकार बने हैं। जैसे- अल्हैया बिलावल, एमनी बिलावल, कुकुभ बिलावल, शुद्ध बिलावल, लच्छासाख, सरपरदा, देवगिरी, नटबिलावल आदि।

ये बिलावल के प्रकार रात्रि के तमाम रागों क प्रातर्गेय जवाब है- ऐसा अनेक गायकों के मुँह से हम सुनते हैं। अब प्रश्न है कि प्रत्येक बिलावल के प्रकार में रात्रि का कौन सा राग मिश्रित हुआ। यह प्रश्न प्रत्येक बिलावल प्रकार में स्वर-विन्यास पर अवलम्बित रहेगा।

समस्त बिलावल प्रकारों में एक निश्चित अवरोह दिखाई पड़ता है— 'सं नि ध, प, मग, मरे, सा'

Scanned with OKEN Scanner

अंतरे का उठाव अक्सर इस प्रकार होता है— 'प, ध निध, नि सं, रें सं'।

बिलावल प्रकारों के अंग वाचक स्वर-विन्यास निम्न हैं—

१. ग रे, ग प, निधनिसं, सं निध, नि धप, मग मरे, स। (अल्हैयाबिलावल)
२. स, रेग, रे, स, नि़ ध़ नि़, प़ ध़ नि़ स, ग, मग, पमप, म ग, मरेस। (एमनी बिलावल)
३. स, निध़, प़, ग, रे ग, रे, स, ग, प, धनिप, मग, मरेस। (देवगिरीबिलावल)
४. म रे प, नि ग, स ग। (शुक्लबिलावल)
५. स, ग, म, निधप, मप, मग स, ग, ग म, धनिसं, सं ध नि प, धम, गस, ग, ग म (कुकुभ)।

खमाज थाट के राग

तिलंग तथा खमाज सम-प्रकृतिक राग हैं, किन्तु तिलंग में रे ध स्वर आरोह तथा अवरोह दोनों में वर्जित है। अतः राग भेद स्पष्ट है ।

तिलंग का स्वरूप—

नि़स, गमप, नि प, संनिप, गमग, पग, मगस । नि, सं, नि प, गं मं, गं गंमं गं सं, सं निप, गमग, पगमग, सा।

खमाज थाट की दुर्गा और रागेश्री समप्रकृतिक राग है। यह दुर्गा बिलावल थाट की दुर्गा से भिन्न है। दोनों रागों में रे, प वर्जित है, परन्तु रागेश्री में थोड़ा सा ऋषभ लिया जाता है वह दुर्गा में नहीं लेते। यही दोनों में मुख्य भेद है।

दुर्गा स, नि ध, स , मग, मधनिध, मग, मध, निसं, गं मं, गं सं, संनिध, मग, धमग,ग–स

रागेश्री स, रेस, निध, नि़स, मग, मधनिध, मग, रेस, गमध, निसं, मंगं रें सं, निध, मधनिध, मगरेस।

Scanned with OKEN Scanner

देस और सोरठ

दोनों रागों को पृथक पहचानना व गाना अत्यंत कठिन होता है। इन दोनों रागों में मुख्य अन्तर गान्धार का है। देस में गांधार स्पष्ट है और सोरठ में वही असत्प्राय है। दोनों रागों में अन्तरा 'स, रे, म प, नि सं, सं, रें निध प' इस प्रकार शुरू होते हैं जिससे श्रोता भ्रम में पड़ जाते हैं। किन्तु दोनों को निम्न प्रकार से अलग करेंगे—

म
जैसे — रे , म प, नि धप, सं, नि ध प, पध प मग रे ग स

म
यह करने पर सोरठ कभी नहीं होगा और 'स रे, म प, नि सं, रें नि ध प, ध म रे, रे प म रे, रे स' यह प्रकार शुद्ध सोरठ है। म रे में गान्धार गुप्त हैं।

कानड़ा अंग के राग — नायकी, सूहा, सुघराई, शहाना, आभोगी, अड़ाना और दरबारी-कानड़ा।

मारवा थाट— मारवा, पूरिया, सोहनी।

पूर्वी थाट — पूर्वी, बसन्त, परज।

सारंग अंग के राग— (काफी थाट) — शुद्ध सारंग, मधमाद सारंग, वृन्दावनी सारंग, मिया की सारंग।

मल्लार अंग के राग (काफी थाट)— सूरमल्हार, रामदासी मल्हार, जयंत मल्हार, मियां की मल्हार, गौड़ मल्हार, मेघ मल्हार, मीराबाई की मल्हार, नटमल्हार, देसमल्हार, सारंग मल्हार।

धनाश्री अंग के राग (काफी थाट)— धनाश्री , धानी, भीमपलासी, हंसकिंकणी, प्रदीपकी।

Scanned with OKEN Scanner

उपरोक्त सभी सम-प्रकृतिक राग हैं, जो कि अल्प स्वर परिवर्तन से भिन्न होते हैं। समप्रकृतिक राग गाते समय एक राग में दूसरे राग की छाया आती है अतः वहां स्वतः थोड़ा बहुत तिरोभाव उत्पन्न होता है। परन्तु प्रस्तुत राग के अंग वाचक भाग यथा-स्थान लाकर उसका आविर्भाव किया जाए तो विसंगति उत्पन्न नहीं होगी, अपितु वैचित्र्य ही बढेगा।

तानपूरा एक : अध्ययन

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में स्वरित की संगति के लिए सबसे मुख्य वाद्य तानपूरा है। गायकों के लिए यह अनिवार्य वाद्य है । कुछ लोगों का मत है कि यह पौराणिक गायक तुम्बरू का आविष्कार है। किन्तु प्राचीन ग्रंथों में इसकी चर्चा नहीं पायी जाती। यह भी हो सकता है कि यह खुरासानी तम्बूर का ही (मुसलमानी काल में आया हुआ) रूपान्तर हो। परन्तु खुरासानी तम्बूर में वीणा की तरह ग्राम के स्वर बंधे होते हैं और इसलिए इसका उपयोग राग के लिए होता है, स्वरित की संगति के लिए नहीं। इससे तो यही मानना पड़ता है कि यह हिन्दुस्तानी संगीत का मध्ययुगीय आविष्कार है। इस वाद्य में जवारी का प्रयोग, जो प्राचीन वाद्यों के 'जीवा' का ही रूपान्तर है, इसकी भारतीयता को प्रमाणित करता है। इस यंत्र का प्रधान अंग लौकी का तूमा होता है। संभवतः है इसी से इस वाद्य का नाम तमूरा पड़ा हो। ऐतिहासिक दृष्टि से तमूरा एकतारे का विकसित रूप है। जिसका आज भी निर्गुण गाने वाले गोसांई स्वरित और लय के लिए व्यवहार करते हैं।

सबसे पहले लोक संगीत के साथ प्रयोग करने के लिए जो प्राचीन स्वरित-वाद्य बनाया गया उसका रूप धनुषाकार था जो कि एक गोल बर्तन से जोड़ा गया है और वह गोलाकार बर्तन नाद को अनुनादित करने का कार्य करता है। इस वाद्य का प्रयोग ड्रोन के हेतु किया जाता था जिसे तुनतुनी कहते थे।

इसी से बाद में एकतार का आविष्कार हुआ जिसमें एक छोटा गोल तुम्बा एक पतले डंडे में जोड़कर खूंटी से एक तार बाँध जाता है ।

तत्पश्चात् एक तार के स्थान पर चार तारों को समानान्तर बांधा गया है जिससे एक मधुर संवाद युक्त धुन या मेलडी सुनाई पड़ती है । इसका नाम तम्बूरा पड़ गया ।

तमूरे में चार तार होते हैं जिनमें पहला मन्द्र पंचम (प) में, चौथा मन्द्र षड्ज (स) में और बीच के दोनों तार मध्य षड्ज (स) में मिले होते हैं। इसे

Scanned with OKEN Scanner

(पंचम-मेल) कहते हैं। कभी-कभी 'प' वाले तार को 'म' में मिलाकर 'मध्यम-मेल' का उपयोग किया जाता है। पर ऐसा उपयोग उन्हीं रागों के साथ होता है जिनमें पंचम वर्जित हो और शुद्ध मध्यम का प्रयोग हो। व्यापक रूप से ऐसी अवस्था में भी पंचम--मेल का ही व्यवहार होता है क्योंकि (प़ स)योग मध्यम का ही संस्कार पैदा करता है ।

प्राचीन काल में प्रत्येक वीणा में जीवा का प्रयोग होता था। अब यह 'जवारी' के नाम से सिर्फ तमूरे में ही लगायी जाती है। तमूरे में चारों तार नीचे तूमे पर बैठायी हुई लकड़ी या हड्डी की घोड़ी पर होकर जाते हैं। इस घोड़ी (घुड़च) पर तारों के नीचे रेशम या ऊन के धागे लगा दिये जाते हैं जो तारों के लिए गद्दी का काम देते हैं। इस ऊन या रेशम के धागे को ही 'जवारी' कहते हैं। इसके कारण तार घोड़ी की कोर से कुछ उठ जाता है । परिणाम यह होता है कि जब तार छेड़ने पर काँपता है तो घोड़ी की कोर पर ठोकर खाता है अथवा ठोकर यदि तार में ठीक उस समय लगे जब वह कम्पन में अपनी दिशा बदलता है तो कम्पन का विस्तार बढ़ता जायेगा और ठोकर से बार-बार नयी शक्ति मिलते रहने से कम्पन देर तक होता रहेगा। इसे ही प्राचीन शास्त्रकारों ने स्वर का 'अनुरणनात्मकत्व' गुण कहा है। घोड़ी के सारे तल पर एक ही स्थान ऐसा है जहाँ जवारी ठीक बैठती है। तमूरा मिलाने वाले को जवारी धीरे-धीरे खिसका कर उस स्थान पर लाना होता है। उस स्थान पर जवारी के पहुँचते ही तार में झनझनाहट (झंकार) होने लगती है। जवारी न हो तो एक तार की ध्वनि बन्द होने पर ही दूसरे तार की ध्वनि सुनायी पड़ेगी। जवारी ठीक होने पर चारों तारों की ध्वनि एक में मिलकर 'संहति' का गुण पैदा करती है। जवारी के प्रयोग से तार की ध्वनि केवल तीन और लगातार ही नहीं होती बल्कि इसके आवर्त्तक बली हो उठते हैं। जवारी की क्रिया की विशेषता है कि इसमें जवारी की वजह से समकालीन अभिघात से मौलिक स्वरों के साथ-साथ उपस्वर भी तीव्र हो उठते हैं। विवेचनकार 'गुन्नैया', 'हेल्महोज' और 'पायथागोरस' के अनुसार जवारी के प्रयोग में सम और विषम सारे आंशिक स्वर तीव्र हो उठते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

तानपूरे का महत्व

(१) षड्ज और पंचम का इतना घनिष्ट संवाद है कि इन दोनों का साथ-साथ उच्चारण बड़ा ही इष्ट होता है। बल्कि, पंचम के कुछ नये आवर्त्तकों के कारण इस स-प संघात में नया रंग, नयी रोचकता आ जाती है ।

(२) सप्तक के पूर्वांग और उत्तरांग, दोनों के आदि स्वर स्वरित में स्थित रहने होने से दोनों अंगों का सामंजस्य और मेल बना रहता है। इस मेल का हिन्दुस्तानी संगीत में बड़ा मूल्य है।

(३) सभी आंशिकों के तीव्र होने से स्वतंत्र रूप से और अपने परिणामी स्वरों के द्वारा प्राकृतिक सप्तक के प्रायः सभी स्वर उत्पन्न कर देते हैं जिससे तमूरे में केवल स्वरित की संगति नहीं, बल्कि गले के सभी स्वरों की संगति होती है ।

तमूरे के चार तारों में दो तो जोड़े के होते हैं, इसलिए तीन ही स्वरों की 'संहति' होती है। स १/२, पृ ३/४ स१ ।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि प्रत्येक मौलिक ध्वनि के साथ उपस्वर होते हैं जो संगीतोपयोगी ध्वनि में मौलिक के आवर्त्तक हैं। अतः उपस्वरों में आवर्त्तक ग्राम के सभी स्वर मौजूद रहते हैं। पर इन आवर्तकों के अलावा इनके परिणामी स्वर बड़े प्रबल होते हैं, क्योंकि 'जवारी' की क्रिया से स्वरों की तीव्रता बहुत बढ़ जाती है। नीचे स्वरों का विवरण दिया जाता है :-

(१)	स-प	—	यौगिक -	१+३/४ =७/४	नी
			शैषिक -	१-३/४=१/४	अतिमन्द्र 'स'
(२)	स-स़	—	यौगिक -	१+१/२ =३/२	प
			शैषिक -	१-१/२ =१/२	स (मन्द्र)
(३)	प़-स़	—	यौगिक -	३/४+१/२ =५/४	ग
			शैषिक -	३/४-१/२ =१/४	स (अति मन्द्र)

इस प्रकार परिणामी स्वर स, प, ग और नी को पुष्ट करते हैं। यह हिन्दुस्तानी

Scanned with OKEN Scanner

गवैयों का अनुभव है कि सच्चे मिले हुए तमूरे में गान्धार साफ सुनाई पड़ता है। क्लेमेंट ने कहा है कि "सात्विक अन्तरालों अर्थात् सप्तम आवर्त्तक से बनु हुए स्वरों को जो महत्व दिया गया है उसने हिन्दुस्तानी संगीत को संगीत-कला के बौद्धिक विकास में सबसे ऊँचे स्थान पर पहुँचा दिया है ।"

ड्रोन के संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि ड्रोन कोई एक स्वर नहीं है अपितु अन्य स्वरों का जन्मदाता है। इससे उत्पन्न कुछ ध्वनियाँ जो कि सहायक नाद होती हैं गायक और वादक की सहायता करती हैं।

अत: तानपूरा भारतीय संगीत की आत्मा तथा मूलाधार है। इस वाद्य में आजकल कहीं-कहीं पांच, छ: तार और आठ तारों का तम्बूरा भी देखने में आता है।

तानपूरे की विशेषता

(१) यह भारतीय गायन संगीत का प्रमुख वाद्य है और गायन का प्रमुख एवं मार्गदर्शक अंग है ।

(२) इसका प्रयोग वादन एवं नर्तन संगीत में भी किया जाता है। इसमें षड्ज और पंचम की तारें स रे ग प नि तथा प ध नि रे म स्वरों का निर्माण अपनी मधुमय, रंजक एवं आकर्षक झंकार द्वारा करती है।

(३) भारतीय प्रत्येक वीणा का निर्माण इसी वाद्य के आधार पर किया गया था। इस वाद्य के तारों की झंकार किसी भी राग एवं उसके गीत और स्वर विस्तार के साथ ऐसे घुल मिल जाती है जैसे कि दूध में पानी अर्थात् दोनों में किसी भी प्रकार की पृथकता का अनुभव नहीं होता ।

(४) यह वाद्य वादन संगीत में प्रत्येक वाद्य का सहचर सिद्ध होता है और उस में रस एवं प्रभाव उत्पन्न करने में सहायता देता है।

(५) किसी भी चलचित्र अथवा नाटक के दृश्यों में पृष्ठ संगीत के रूप में यदि केवल इसी वाद्य का ही प्रयोग किया जाये तो भी यह उस दृश्य को अधिक प्रभाविक रूप प्रदान करता है ।

Scanned with OKEN Scanner

(६) किसी भी बड़े से बड़े कलाकार को अपने गायन प्रदर्शन के समय यदि तम्बूरा और तबला दो ही वाद्य दे दिये जाएं तो वह इनकी सहायता से अपनी कला का प्रदर्शन भली-भाँति कर सकता है ।

(७) वैज्ञानिक दृष्टि से इस वाद्य की एक तार अपनी झंकार द्वारा एक से पाँच सप्तकों तक के नाद ध्वनित कर सकती है क्योंकि तार के छेड़े जाने पर जब वह तार अपने निश्चित् स्थान से एक गुणा, दो गुणा, तीन गुणा, चार गुणा, पांच गुणा, छः गुणा आदि ऊपर तथा नीचे की ओर उठती है तो यह इतने ही अधिक और तेज़ आंदोलन उत्पन्न करती है। आंदोलनों की संख्या बढ़ने से तारता का विकास होता है और इसी प्रकार **षड्ज की तार** से स, रे, ग और प स्वरों की प्राप्ति होती है। **मन्द्र पंचम की तार** से रे, प, ध और नि स्वरों की प्राप्ति होती है। **मन्द्र मध्यम की तार से** म, प़, ध, स और ग स्वरों की प्राप्ति होती है ।

भारतीय साङ्गीतिक गूँज के सिद्धांत

आधुनिक भारतीय संगीत का विशेष रूप से उत्तरी संगीत का आधार 'स्वरित' है। इसे उत्तर के गवैये 'सुर' या 'खरज' (षड्ज) कहते हैं, दक्षिण के गवैये 'श्रुति' कहते हैं। हिदुस्तानी संगीत में स्वरित का अधिकार जितना प्रबल, स्पष्ट और अनिवार्य है उतना पाश्चात्य संगीत में नहीं। पाश्चात्य संहति-संगीत (Harmony) में स्वर-संघातों का प्रयोग होता है जिनकी रचना और गुण उन संघातों के (Chords) 'टॉनिक' या स्वरित पर निर्भर है। स्वर-संघातों के प्रयोग से तीन भिन्न भिन्न स्वरों का एक साथ ही उच्चारण होता है। इसलिए स्वरों के समूह में से स्वरित को चुन लेना इतना आसान नहीं होता। इसमें स्वरों का संबंध प्रत्यक्ष होने पर भी स्पष्ट नहीं होता। इसके विपरीत, जहाँ स्वरों का उच्चारण एक के बाद एक होता है वहाँ स्वरों के संबंध की अनुभूति स्मृति के द्वारा होने से परोक्ष होती है पर यह अनुभूति स्मृति के द्वारा होने से परोक्ष होती है पर यह अनुभूति बड़ी ही स्पष्ट है और यह स्पष्टता स्वरित के हठ संस्कार पर ही निर्भर है। हार्मनी की पद्धति में स्वरितान्तर की युक्ति का प्रयोग होने से आधार स्वरित की प्रधानता नहीं रहने पाती। इसलिए मुख्य स्वरित को चैतन्य रखने के लिए आधार स्वर-संघात का बार-बार उपयोग होता है। भारतीय संगीत में यह उपद्रव नहीं होता। इसमें तो स्वरित का उच्चारण लगातार होता रहता

Scanned with OKEN Scanner

है जिससे न तो स्वरित भ्रष्ट होने पाता है और न दूसरे स्वर अपने उपयुक्त स्थान से विचलित होने पाते हैं। स्वरित के सतत चैतन्य रहने से अन्य स्वरों का स्वरित से संबंध भी बहुत ही स्पष्ट बना रहता है ।

स्वरित की ऐसी दृढ़ धारणा भारतीय संगीत की विशेषता है। इसका विकास भरतकाल से ही होता चला आया है। प्राचीन युग में जैसे-जैसे स्वरित की धारणा प्रबल होती गई वैसे वैसे स्वर का अर्थ और ग्राम का संस्थान भी बदलता गया। ग्राम के प्रथम स्वर की 'षड्ज' संज्ञा से ही संगीत के आदिकाल में भी स्वरित के अस्तित्व का पता चलता है। प्राचीनकाल से ही संगीत शिक्षा की यह प्रथा है कि शिक्षार्थी अपनी आवाज़ को एक स्थान पर बाँध कर लगातार स्वर का उच्चारण करता है जिससे धीरे धीरे वह स्वर उसके गले में बैठ जाता है। वही स्वर या 'षड्ज' उसके कण्ठ का स्वरित होता है।

ड्रोन

इसका शाब्दिक अर्थ है 'गूँज' । भारतीय संगीत में प्रारंभिक स्वर को या 'षड्ज' को ही ड्रोन कहेंगे जो कि समस्त स्वरों का केन्द्र बिन्दु है और सदा गुंजारित होता रहता है। चार सौ वर्षों से भारतीय संगीत में बहुत परिवर्तन होते गए हैं। १६०० ई० पू० हमारे संगीत की रूपरेखा बिल्कुल भिन्न होती थी। प्राचीन संगीत ग्राम व मूर्च्छना पर आधारित था जिसका अवरोहात्मक रूप था जबकि आधुनिक संगीत एक ही शुद्ध सप्तक पर आधारित है जो आरोहात्मक रूप में है। प्राचीन संगीत में षड्ज व पंचम अपने स्थान से च्युत भी हो सकते हैं किन्तु आज हमारे सप्तक में षड्ज, पंचम अचल स्वर है। प्राचीनकाल में षड्ज अपनी चौथी श्रुति पर स्थापित था जबकि आज षड्ज पहली श्रुति पर रक्खा गया है। प्राचीनकाल में स्वरों के परस्पर संबंध का महत्व था जबकि आजकल प्रत्येक स्वर का संबंध षड्ज से देखा जाता है।

भारतीय संगीत में ड्रोन के तीन कार्य्य

१. आधार स्वर की लगातार गूँज से एक संगीतमय वातावरण की पृष्ठभूमि बन जाती है जिसकी सहायता से गायक या वादक किसी भी राग को

सुविधानुसार गा सकता है या बजा सकता है। आधार स्वर की गूँज को राग में प्रयुक्त स्वरों के सच्चे लगाव में सहायता करती है।

२. हम किसी राग को सुनते समय उसमें प्रयुक्त स्वरों को अलग-अलग नहीं सुनते बल्कि उनके सामूहिक रूप से जो एक भाव या रस उत्पन्न होता है उसको सुनते हैं। सभी स्वरों का आधार स्वर से या षड्ज से क्या संबंध है -और इस संबंध से जो बाह्य नाद-गुण बनता है वही राग का रूप बनाता है और उसमें विविधता आती है। हम बिना किसी तानपूरे की सहायता से भी गा सकते हैं फिर भी आधार स्वर या टॉनिक स्वर की आवश्यकता होती है।

३. ड्रोन का स्वर गायक अथवा वादक का विश्राम स्वर है। जिस स्वर से किसी भी राग अथवा धुन का प्रारंभ और समाप्ति कर सकते हैं।

अत: आधार स्वर या ड्रोन का महत्व राग-गायन में कितना है यह उपरोक्त तीन कार्य्यों से स्पष्ट होता है ।

विभिन्न वाद्यों में ड्रोन का प्रयोग

षड्ज एक ऐसा स्वर है जो सभी वाद्यों में हमेशा रहता है, कुछ ऐसे वाद्य भी हैं जिनमें षड्जस्वर के लिए विशेष तार लगे रहते हैं। जैसे- तानपूरा, सितार, सारंगी, वायलिन आदि। गान हो या वाद्य, आधार स्वर की लगातार गूंज आवश्यक है। शहनाई या बाँसुरी का वादन करने वालों के साथ भी एक सुर भरने वाला हमेशा रहता है। यहां तक कि तबला या पखावज भी सुर में मिले रहते हैं जो कि ड्रोन का कार्य्य करते हैं। गायन के साथ तानपूरे की संगति प्रमुख आवश्यक है। सितार में बाज के पास वाला तार जोड़कर तार षड्ज में मिला होता है जिसे थोड़ी देर बाद वादक बजाकर स्वरों की शुद्धता को परखते रहते हैं। चिकारी में सात स्वर बजते हैं फलस्वरूप षड्ज की ध्वनि बराबर मस्तिष्क में गूँजती रहती है। तानपूरा बिना पर्दे का वाद्य है। किन्तु इसकी गूँज की सहायता से ही गायक संपूर्ण गायन करता है जिसमें रागों के वादी, संवादी, विवादी स्वरों का संबंध दिखाकर तथा तुलनात्मक अध्ययन कराकर संवाद बनाये रखता है इसलिए तानपूरे को ड्रोन का वाद्य माना जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

ड्रोन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

रामात्य के पश्चात् संगीत आचार्य्यों ने मध्यम ग्राम का लोप होना बताया है। पुंडरीक (१६१०ई०) ने कहा है कि सभी राग 'षड्जग्राम' पर आधारित है। 'षड्ज' को सभी रागों का ग्रहस्वर (प्रारम्भिक) कहा है। उसने वीणा में स्वरित के तारों का वर्णन किया है। सोमनाथ (१६ई०) ने निश्चयात्मक रूप से कहा है कि यद्यपि प्राचीन संगीत में च्युत षड्ज व पंचम होते थे किन्तु उसके समय के देसी संगीत में इन स्वरों को निषाद व मध्यम का ही मिश्र रूप समझा जाता था। श्रीनिवास अॅार अहोबल (१७ई०) के समय मध्यम ग्राम को कोई भी नहीं समझता था। मूर्च्छना की परिभाषा में परिवर्तन हो चुका था। मूर्च्छना केवल आरोहावरोह को कहने लगे।

इन सब तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि १५ वीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी के मध्य हुए आचार्य्यों ने संगीत में बहुत परिवर्तन देखे और यही संभवतः कारण है कि १७वीं शताब्दी के अंत तक 'ड्रोन' संगीत का एक अभिन्न अंग बन गया और १८वीं शताब्दी के अंत तक प्राचीन पद्धति का लोप हो गया और उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में मुखारित मेल के स्थान पर बिलावल को शुद्ध सप्तक मान लिया गया।

Scanned with OKEN Scanner

नाद और उसका रूप

ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो बिना शब्द के प्राप्त हो सके । ज्ञान मात्र शब्द से ही अनुविद्ध है । इसीलिए शब्द को ब्रह्म कहा है। शब्द ही इहलोक और परलोक का आधार है। पंचभूतों में आकाश सबसे सूक्ष्म है। आकाश का गुण नाद है। वास्तव में नाद ही, शब्द ही इस संसार के जन्म् का कारण है। वेद भगवान् इस सत्य की साक्षी होते हैं:—

वागेव विश्र्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत।
स सर्वममृतं यच्च मर्त्यमिति श्रुतिः॥

अर्थात् वाणी से ही यह सारा विश्व उत्पन्न हुआ है। ये समस्त भुवन गिरा से ही जन्म पाये हैं। इस अमर और मर्त्य संसार की जनयिता वाणी ही है। इसी से संसार को नाद या शब्द का परिणाम कहा गया है।

नाद की इसी सत्ता के कारण आत्मा को चेतन माना जाता है। आत्मा निष्क्रिय है और उसके अन्तर का नाद सक्रिय । जिसने तप के द्वारा इस नाद तत्त्व का मूल अथवा सार प्राप्त कर लिया है वह संसार में रहते हुए भी मुक्त है।

मतङ्ग ने कहा है —

नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनः।
नादरूपा पराशक्ति नादरूपो महेश्वरः॥

नाद के दो प्रकार हैं- (१) आहत और (२) अनाहत। जो नाद हमें कानों से सुनाई पड़ता है उसे 'आहत' कहते हैं और जो कानों से सुनाई नहीं पड़ता उसे प्रचार में 'अनाहत' कहते हैं। यह अनाहत नाद ही समस्त आहत नाद का कारण है । आहत नाद में मन को एकाग्र करने तथा जीव को आनन्द प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है। किसी-किसी नाद से पशुओं के मन्त्रमुग्ध होने की कथाऐं

Scanned with OKEN Scanner

भी हम सुनते हैं। अतः अलौकिक शक्ति वाला यह आहत नाद लोकरंजक है। अनाहत नाद कानों से सुनाई नहीं पड़ता अतः वह लोकरंजक नहीं । किन्तु उसकी मधुरता और आनन्द प्रदान करने की शक्ति के विषय में साधकों ने जो उक्तियाँ कही हैं वे आश्चर्यजनक हैं। उनका कहना है कि अनाहत नाद कानों से नहीं सुना जा सकता, वह केवल अनुभव होता है, किन्तु आहत की अपेक्षा आनन्द देने की शक्ति उसमें हज़ार गुनी अधिक है। वह लोक के लिए रक्तिदायक नहीं, किन्तु मुक्तिदायक है। नानक, कबीर, मीरा, सूर तथा अनेक शब्द साधकों ने उसी मुक्ति-दायक नाद का आश्रय लिया है।

उदाहरण—

सत गुरु सबद लखाया अंसारी, ध्यान लगाया धुन में।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में॥

× × × ×

भक्त सतगुरु पुरुष सोई, जिस हर प्रभु भाना भावये।
आनन्द अनहद बजें बाजे, हर आप गल मेलावये॥

— श्री गुरु ग्रन्थ साहब

× × × ×

अनहद शब्द उपज्यो मों घट में, ताको ध्यान करु अष्ट जाम।
खरज रिषभ गांधार मध्यम पंचम धैवत, निषाद पावै ज्यौं अति अभिराम।

— तानसेन

पाश्चात्य् साधकों में कीट्स के वाक्य भी विचारणीय हैं- जिनमें एक स्थान पर उसने कहा है—

" Heard melodies are sweet but those unheard are sweetest."

अर्थात् - जो धुनें सुनाई पड़ती हैं, वे मधुर हैं, किन्तु जो अश्रुत हैं वे मधुरतम हैं।

Scanned with OKEN Scanner

शब्द साधना

बिना साधना के कोई भी कला प्राप्त नहीं होती है। कोई ईश्वर की प्राप्ति हेतु साधना करता है, कोई साहित्य की तो कोई सङ्गीत की साधना करता है। इन सबमें सङ्गीत साधक का स्थान सबसे ऊंचा है । सङ्गीत द्वारा आनन्द प्राप्ति के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। तानसेन व बैजूबावरा जैसे गायक अपने गायन से पशु-पक्षियों को भी मंत्रमुग्ध कर देते थे और आनन्द की सरिता बहा देते थे। यह उनकी जीवनपर्यन्त की साधना का ही परिणाम था। सङ्गीत में शब्द-साधना का महत्त्व बहुत है। शब्द के बिना विचार का कोई अस्तित्व नहीं रहता।

नाद के दो रूप हैं। एक वर्ण रूप, दूसरा स्वर रूप। वर्ण रूप नाद के सम्बन्ध में व्याकरण शास्त्र में विस्तृत चर्चा की गई है और स्वररूप नाद की विवेचना सङ्गीत-शास्त्र का निजी विषय है ही। दोनों ही रूप सुनने में भिन्न हैं किन्तु वास्तव में दोनों का आधार एक है। भाव या विचार प्रगट करने के लिए दोनों ही नाद के आश्रित हैं।

सङ्गीत में शब्द साधना से तात्पर्य शब्दों के सही अभ्यास से और ठीक उच्चारण से है । ध्वनि यंत्र में अगणित ध्वनियों को उत्पन्न करने की शक्ति होती है। ध्वनियों का वर्गीकरण दो तत्त्वों पर आधारित है- १. स्थान, २. प्रयत्न।

१. स्थान

स्थान में ध्वनि यंत्र के जिन अवयवों से सहायता ली जाती है उन्हें उन ध्वनियों का स्थान कहते हैं।

२. प्रयत्न

ध्वनि यंत्र के विभिन्न अवयवों द्वारा ध्वनियों के उत्पन्न करने में जो विशेष प्रयत्न किए जाते हैं उन्हें 'प्रयत्न' कहते हैं। मानव के विभिन्न अंग उसके प्रयत्न में सहायक रहते हैं। जैस मुख, जिह्वा, नाक आदि। इन विभिन्न अंगों को कार्यशील करने के लिए मस्तिष्क स्वयं प्रयत्न करके कार्यशील रहता है ।

Scanned with OKEN Scanner

सामान्य रूप से ध्वनियों का वर्गीकरण दो भागों में किया गया है। स्वर और व्यंजन। सङ्गीत में इन दोनों की साधना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझी गयी है ।

शब्द नाद का सहोदर है। स्वरूप में विभिन्नता होने पर भी दोनों का संगठन इतना सुदृढ़ है कि एक का जीवन दूसरे का प्राण है। स्वर स्वतंत्र रूप से रस का उत्पादक नहीं है। अत: शब्द साधना से ही गीतों के बोल स्पष्ट रूप में कहे जा सकते हैं। श्रोतागण उन बोलों को सुनकर ही शब्दों के अर्थों और भावों का रसास्वादन करते हैं। शब्द साधना न करने वाले गायकों के उच्चारण में अनेक त्रुटियां होती हैं। शास्त्रीय सङ्गीत गायकों के शब्दोच्चारण का मज़ाक बहुधा लोग किया करते हैं अत: वे कहते हैं कि वे फलां उस्ताद लोग ऐसे ही गाते हैं। अशुद्ध उच्चारण की परिपाटी यदि किसी घराने में चल पड़े तो उस घराने के अनुयायी भी उन अशुद्ध उच्चारित शब्दों को कहते हैं। आजकल भी अनेक ऐसे शब्द पाये जाते हैं जिनका उच्चारण लोग ठीक से नहीं करते हैं। जैसे 'चन्द्र' को चौन्द्र, 'मन्द्र' को 'मौन्द्र' आदि कहते हैं। उनमें भाषा ज्ञान न होना भी एक कारण है। यद्यपि विभिन्न प्रान्तों की विभिन्नता भी इसका कारण है। अत: सङ्गीत में बहुत से शब्दों का उच्चारण गलत किया जाता है। कई शब्दों का उच्चारण शुद्ध न होने से उनका ग़लत दूसरा ही रूप बन जाता है और कभी-कभी वे शब्द निरर्थक हो जाते हैं। कुछ इस प्रकार के शब्द पुस्तकों में भी प्रकाशित हो चुके हैं तथा लोगों ने उन गलत शब्दों को गा-गा कर उनका प्रचार कर दिया है। बहुधा पढ़े लिखे शिष्यों द्वारा उन भ्रष्ट शब्दों का अर्थ पूछे जाने पर उस्ताद उन्हें यह कह कर शांत कर देते हैं कि यह रचना हमारे उस्ताद ने ऐसी ही सिखाई है। उदाहरणार्थ कल्याण का एक ख्याल पुस्तक में इस प्रकार दिया गया है—

लंगर तुर्क जिन छुओ मोरि गागर,

इस ख़्याल को देश के बड़े बड़े गायक गाते भी हैं, किन्तु विचार करने की बात यह है कि ब्रजभाषा में 'लंगर' छोटे बालक को कहा गया है और बहुधा इसका अर्थ 'कृष्ण' जी से जोड़ा गया है। 'तुर्क शब्द का अर्थ मुसलमान है। अत: 'लंगर' और 'तुर्क' का मेल ठीक नहीं है । यह ग़लती शब्द साधना की अज्ञानता के कारण हुई है ।

ख़्याल गायकों में बहुधा लोग अधूरे शब्दों का भी उच्चारण करते हैं। जो कभी-कभी बहुत ही हास्यास्पद तथा सङ्गीत में भावाभिव्यक्ति के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं। जैसे- मालकंस ख़याल में 'पग लागन दे' को बहुधा लोग 'पगला, पग ला, कहकर छोड़ देते हैं। जिससे गीत की सुन्दरता नष्ट होती है और श्रोतागणों पर विपरीत असर होता है । उसी प्रकार मियां की मल्लार का ख़याल 'करीम नाम तेरो' को गायक 'करीम ना', करीम ना कहते जाते हैं। उसी प्रकार मीरा का पद 'जोगी मत जा ' को गाते समय जा जा जा कह कर दुहराते हैं। इस प्रकार शास्त्रीय सङ्गीत में शब्दोच्चारण भ्रष्ट करके गायक गाते हैं जिसमें सुधार होना अति आवश्यक है। निरर्थक शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। प्राचीन एक ध्रुवपद में सङ्गीत के चार अवयवों पर महत्व दिया है—'सुध सुर, सुध लय, सुध मुद्रा, सुध वाणी।'

कुशल गायक और शिक्षक शब्दोच्चारण पर विशेष ध्यान देते हैं तथा अभ्यास के समय शब्द-साधना को भी अवश्य करते हैं। सुगम सङ्गीत और फिल्मी सङ्गीत इसी कारण शीघ्र प्रसिद्ध हो जाते हैं क्योंकि उसमें शब्दों को महत्त्व दिया जाता है ।

गायक के लिए शब्द साधना आवश्यक है क्योंकि कण्ठ सङ्गीत में शब्दों का प्रयोग भाव और रसोत्पत्ति में सहायक होते हैं।

स्वर

शब्द साधना में सबसे पहले अ इ ई उ ओ ए में से 'ओंकार' की साधना करनी चाहिए। उसके बाद अन्य स्वर और व्यंजन की साधना उपयुक्त होगी। यद्यपि स्वर की ध्वनियों के उच्चारण में किसी प्रकार का गतिरोध नहीं होता तथापि जीभ की स्थिति और होंठों का स्वरूप से उच्चारण में भिन्नता आ जाती है । कण्ठ साधना के प्रमुख तत्त्वों का यहां पर ध्यान रखना पड़ेगा ।

नासिक्य या अनुनासी

जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा अति मध्य में स्थित होती है जिसके कारण श्वास वायु, मुख और नासिका दोनों में से निकलती है उसे नासिक्य कहते

Scanned with OKEN Scanner

हैं। जैसे न, म, अं, शा आदि अक्षरों का उच्चारण। होंठों द्वारा कुछ ध्वनियों के उच्चारण में होंठों का कार्य होता है जैसे- पवर्ग के शब्दों में से प, फ और ब का प्रयोग।

दन्त्य

जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक और दांतों की पंक्ति से शब्द को रोका जाए- जैसे च, छ, ज आदि।

वत्स्र्य

दांत और तालू के मध्य भाग के प्रयोग से उच्चारण जिन स्वरों का हो, जैसे- क ख ग आदि।

शब्दों का ठीक उच्चारण गायक के गायन को आकर्षक बनाता है और शास्त्रीय सङ्गीत की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित होता है।

Scanned with OKEN Scanner

सौन्दर्य

सौन्दर्य का अर्थ

सौन्दर्य शब्द की सीमाओं का छोर अनन्त है। न जाने कितने विद्वानों ने सौन्दर्य को शब्दों में बांधने का प्रयास किया, परन्तु इसकी परिभाषा पूर्ण न हो सकी। सौन्दर्य के लिए दी गई प्रत्येक परिभाषा से नवीन प्रश्नों ने जन्म् ले लया। यह शब्द सरल तो इतना है कि कोई भी व्यक्ति सहज रूप से अपने अनुसार सौन्दर्य को देखकर अनायास ही उसकी प्रशंसा कर देता है, किन्तु, यह शब्द स्वयं में उलझा हुआ है— जो एक व्यक्ति के लिए सुंदर है, दूसरा उसके प्रति उदासीन है। फिर भी सामान्यतम परिभाषा में जो सुखद तथा रुचिकर लगे, वह सुंदर है, किन्तु यह परिभाषा सिर्फ साधारण बोलचाल में प्रयुक्त होती है।

'वाचस्पत्य कोष' में 'सुन्दर' शब्द की व्युत्पत्ति - सु +उन्द् +अरन्। 'सु' का अर्थ है सुष्ठु अथवा भली प्रकार से, 'उन्द्' का अर्थ है आर्द्र करना, 'अरन्' कृर्तृ वाच्य प्रत्यय है।[१] अतः सुन्दर का अर्थ है— भली-भाँति आर्द्र करने वाला। 'सु' (उपसर्ग) अर्थात् भली-भाँति और नन्दयति अर्थात् प्रसन्न करता है, वह सुंदर है। सुन्दर का आर्द्र करने वाला अथवा आनन्द प्रदान करने वाला गुण ही सौन्दर्य कहलाता है। अतः सौन्दर्य भाव वाचक संज्ञा है। सौन्दर्य का व्यत्त्पत्तिमूलक अर्थ है— सुन्दर+ष्यम-अर्थात् सुन्दर होने का भाव, सुन्दरता ।[२]

अंग्रेजी में सौन्दर्य का पर्याय है ब्यूटी तथा ब्यूटी का अर्थ है —

'Any of those attributes of form, sound, colour, execution, character, behaviour etc, which gives pleasure are gratification to the senses or to the mind, a person or thing possessing this.'[३]

अर्थात् कोई आकृति रूप, ध्वनि, रंग, प्रस्तुतिकरण, चरित्र, व्यवहार आदि जो इन्द्रियों अथवा मन को आनन्द तथा संतोष प्रदान करे अथवा ऐसे गुण से सम्पन्न

Scanned with OKEN Scanner

कोई व्यक्ति या वस्तु ।

'आक्सफोर्ड डिक्शनरी' (Oxford Dictionary) में भी ब्यूटी (सौन्दर्य) का अर्थ—

Combinatious of qualities as shape, proportion, colour, in human face or form or in other objects that delights the sight- the moral sense or the intellect.[४]

अर्थात् 'मनुष्य के मुख अथवा आकार में अथवा किसी वस्तु के आकार में रूप आकृति, अनुपात तथा रंगों जैसी विशेषताओं का ऐसा संयोजन जो दृष्टि, हृदय, बुद्धि तथा नैतिक चेतना शक्ति को आनन्द प्रदान करे।

शब्दकल्पद्रुम में 'सुन्दरम' का अर्थ सौम्यम, भ्रदकम, बन्धुरम, वामम्, रामम्, अभिरामम्, पेशलम्, नन्दितम्, सुमनय, स्वरूपम्, दिव्यम् आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है।'[५]

ऋग्वेद में सौन्दर्य को 'श्री' नाम से सम्बोधित किया गया है[६] उसके अतिरिक्त श्रेष्ठ, श्रिय आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।[७] इसमें 'सु' (उपसर्ग) अनेक बार 'सुन्दर' के लिए प्रयुक्त हुआ है।[८] सौन्दर्य के मानस रूप की भी वैदिक ऋचाओं में मुक्त स्वीकृति मिलती है—'सौन्दर्य प्रीतिकर है—मधुर है, स्फूर्तिप्रद है। चिरनवीन है, पवित्र है और दिव्य है।'[९] वैदिक कवि जहां सङ्गीत के लौकिक और दिव्य, ऐन्द्रिय तथा आत्मिक दोनों रूपों के रसिक थे, वहीं उपनिषद् के कवि की दृष्टि केवल आत्मा के सौन्दर्य के प्रति ही उन्मुख थी।[१०]

सौन्दर्य की विवेचना की दो स्थापनाओं के प्रति विचार करना आवश्यक है— कुछ विचारक सौन्दर्यशास्त्र को ललित कलाओं के रूप में अभिव्यक्त होने वाले सौन्दर्य तक ही सीमित समझते हैं तथा कुछ विचारक कला तथा प्रकृति दोनों में सौन्दर्यानुभूति की मान्यता देते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रकृति का सौन्दर्य ही ललित कलाओं में स्थापित हुआ है। प्रकृति के रूप को देखकर चेतना आनन्द से अविभूत होती है। कलाविदों का तर्क है कि प्रकृति का आकर्षण ऐन्द्रिक है जिसमें कल्पना तथा भावना को जगाने की क्षमता होती है, किन्तु उसमें पुनःसर्जना

Scanned with OKEN Scanner

सम्भव नहीं है, अभिव्यंजना नहीं हो सकती। दूसरा अत्यन्त प्राचीन तर्क यह है लौकिक पदार्थों के अनुभव की रसानुभूति भिन्न होती है, क्योंकि साक्षात अनुभव कुरूप तथा क्षोभकर भी हो सकते हैं, जबकि कला में उनकी अभिव्यक्ति सौन्दर्य हो जाती है। वास्तव में प्रकृति के अरुचिकर रूप भी कला के सांचे में ढलकर सुन्दर हो जाते हैं। यदि विचार किया जाय तो सौन्दर्य के जो प्रतिमान कला में स्थापित किए गए हैं, वे अपने मूल रूप में कहीं न कहीं उद्भूत हुए होंगे। यदि प्रकृति में लय अथवा प्रवाह की अनुभूति न हुई होती, तो कदाचित् कला में भी उसकी स्थापना न हुई होती। शुभ्र चाँदनी, प्राकृतिक वनों की छटा, समुद्र की अपार जलराशि में सूर्योदय अथवा सूर्यास्त की छटा, चाहे, साक्षात हो अथवा कला द्वारा प्रदर्शित की जाए, उसका प्रभाव समान ही होगा। जब उन सांसारिक वस्तुओं का चित्रण किया जाता है, जिसके प्रति हम कभी सचेष्ट नहीं होते, तब सौन्दर्य कलाकार की अभिव्यक्ति में होता है। युद्ध की विभीषिका को जगाने वाला चित्र सुन्दर होगा, धूप में उभरी नसों की मांसपेशियों से पसीना बहाते मजदूर का चित्र सुन्दर होगा तथा इसी प्रकार अपने बच्चे के प्रति एक पागल स्त्री की ममता अभिव्यक्त होकर सौन्दर्यमयी हो जाती है ।

चाक्षुष सौन्दर्य के विवेचन में दोनों ओर साथ-साथ ध्यान रखना आवश्यक है- वस्तु का मूल गुण तथा उसके द्वारा जगाए गए मनोभाव। यह तो स्वीकार किया ही जायेगा कि मनोभावों के अभाव में वस्तु के गुण का उद्घाटन नहीं हो सकता, अतः सौन्दर्य के विश्लेषण के लिए मनोभावों का विश्लेषण आवश्यक है। सौन्दर्य की अनुभूति देश, काल, समुदाय, व्यक्ति, परम्परा आदि पर निर्भर करती है। व्यक्ति की सुरुचि तथा स्तर अनुभूति के लिए महत्वपूर्ण मानक हैं। चारों ओर के अनन्त रूपों में हमारी सौन्दर्य की भूख को तृप्त करने वाले रूपों के गुणों के बीच में से वह मूल सूत्र ढूंढा जा सकता है, जिससे सौन्दर्य का मार्ग बन सकता है। परम्परा, समुदाय, काल तथा व्यक्ति इन सभी के बीच से सौन्दर्य गतिशील और लचकीला होकर प्रत्यक्ष होता है ।

Scanned with OKEN Scanner

सौन्दर्य की पाश्चात्य अवधारणा

आत्मवादी दृष्टिकोण—

सौन्दर्य शब्द का अंग्रेजी पर्य्याय ब्यूटी (Beauty) है जिसमें - रूपाकर्षण, लालित्य तथा प्रीति के भाव निहित होते हैं। सुकरात ने मूलतः सौन्दर्य का लक्षण प्रीति बताया । प्लेटो ने सौन्दर्य को सार्वभौमिक माना और चेतना का सौन्दर्य कहा। प्लेटो ने सौन्दर्य को चार स्तरों पर रखा— जिसमें शुद्ध बुद्धि के सौन्दर्य को चरम सौन्दर्य माना । प्लेटो के आत्मवादी सौन्दर्य चिन्तन का बाद के विचारकों में विस्तार हुआ जिसमें से प्लोटिनस, आगस्टीन, एक्विनस, कांट व हीगल के नाम उल्लेखनीय हैं। प्लोटिनस ने कहा कि अनुराग में सौन्दर्य है। आगस्टीन तथा एक्विनस मसीही सन्त थे उन्होंने ईश्वर को चरम और शुद्ध सौन्दर्य का प्रतीक बताया। सौन्दर्य को आगस्टीन ने रंगों के आकर्षणयुक्त अंशों का समानुपात माना। आधुनिक युग के विचारक कांट तथा हीगल ने व्याख्याओं को विस्तार दिया। कांट ने सौन्दर्य को दो भागों में विभाजित किया— १. निरपेक्ष सौन्दर्य, २. सापेक्ष सौन्दर्य। निरपेक्ष सौन्दर्य शुद्ध रूपगत होता है, सोद्देश्य नहीं होता जब कि सापेक्ष सौन्दर्य की पृष्ठभूमि में कोई प्रयोजन होता है, कोई सार्थकता होती है, कोई जीवन मूल्य स्थापित होता है। हीगेल ने सौन्दर्य की परिभाषा करते हुए उसे दिव्य चेतना की चाक्षुष अभिव्यक्ति माना। उनके अनुसार सौन्दर्य के दर्शन कला में होते हैं, प्रकृति तो सौन्दर्य के प्रति संकेत मात्र करती है।

वस्तुवादी दृष्टिकोण—

विचारकों का दूसरा समूह **वस्तु में सौन्दर्य** की सत्ता का प्रतिपादन करता है। इनके अनुसार सौन्दर्य वस्तु के आकार, रूपाकृति, राग आदि का विषय है। अतः रूप के संयोजन में अनुपात, सममति, संतुलन, वर्ण-योजना आदि सौन्दर्य के तत्व हैं। वास्तव में आत्मवादी तथा वस्तुवादी दोनों विचारक सौन्दर्य के इन आधार-तत्त्वों को तो स्वीकारते हैं किन्तु आत्मवादी इन्हें परम सत्ता से जोड़ते हैं तथा वस्तुवादी विचारकों के अनुसार कलाकृति का अपना रूप-संसार ही उसका सौन्दर्य है।

Scanned with OKEN Scanner

भाववादी दृष्टिकोण—

विचारकों का एक तीसरा वर्ग काम अथवा इच्छा को सौन्दर्य का मूल मानता है। इन्होंने मनोवैज्ञानिक रूप से सौन्दर्य को लौकिक अथवा अपने परिवेश की अनुभूति ही माना। रिचर्ड्स ने अंत:वृत्तियों के परितोष को कलाकृति के मूल्यांकन का मानक माना। मनोविश्लेषक फ्रायड ने सौन्दर्य को काम अथवा रीति-भावना से जोड़ दिया। इन विचारकों ने रागात्मकता की अभिव्यक्ति एवं तृप्ति में सौन्दर्य माना। भावोद्रेक और रागात्मकता को सौन्दर्य से जोड़ने वाले दार्शनिकों में स्पिनोजा, नीत्शे, शापेनहावर और मानवतावादी साहित्यकार टाल्सटाय का नाम उल्लेखनीय है ।

सौन्दर्य—वस्तुनिष्ठ या व्यक्तिनिष्ठ

यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि सौन्दर्य वस्तु का गुण है या द्रष्टा की दृष्टि। वस्तुवादी विचारक वस्तु की संरचना के तत्वों के समन्वय में सौन्दर्य मानते हैं तथा आत्मवादी विचारक भावना तथा प्रतीति को प्रधानता देते हैं। वास्तव में समन्वयवादी विचारकों का मत अधिक सार्थक प्रतीत होता है। उनका कहना है कि वस्तु तथा दृष्टा के बीच प्रतीति की आवश्यकता है अर्थात् वस्तु का वह रूप जो दर्शक की चेतना द्वारा जाना जाता है, सौन्दर्य है । सौन्दर्य वस्तु तथा दृष्टा की चेतना का संवाद है। अत: सौन्दर्य की अनुभूति के ये दो पक्ष हैं और दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं।

सौन्दर्य की भारतीय अवधारणा

सौन्दर्य के पर्य्यायवाची शब्द

सुन्दर शब्द का प्रयोग भारतीय साहित्य में बहुत प्राचीन नहीं है किन्तु उसके पर्यायवाची शब्द—रुचिर, ललित, शोभन, रमणीय, मनोरम, कान्त आदि का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। इन शब्दों से निम्न भाव स्पष्ट होते हैं:—

१. सौन्दर्य का सम्बन्ध दृष्टि से है, वह चाक्षुष है ।
२. सौन्दर्य वस्तु का गुण है जो दृष्टा की चेतना से जुड़ा हुआ है।
३. सौन्दर्य का सम्बन्ध आकर्षण तथा प्रेम की भावना से है।

Scanned with OKEN Scanner

४. वैदिक साहित्य में सौन्दर्य को मूलतः ऐन्द्रिय माना है और कांति, वर्ण तथा ऊर्जा को उसका अंग माना है ।

रामायण काव्य में सुन्दर शब्द के पर्याय के रूप में —रमणीय, सुरम्य, शोभन, रुचिर, चारु, प्रियदर्शन आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है । महाभारत महाकाव्य में लगभग उन्हीं शब्दों का प्रयोग हुआ है जो रामायण काव्य में प्राप्त होते हैं। जिनमें १. दृष्टिगोचर स्वरूप को उभारने वाले- शोभन, सुदर्शन, रूपवान आदि २. मन तथा इन्द्रिय दोनों के समन्वय को व्यक्त करने वाले रुचिर, मनोहर, कांत प्रियदर्शन आदि हैं। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि सौन्दर्य का सम्बन्ध चाक्षुष माध्यम से चेतना को आनन्द प्रदान करता है। वस्तु के सौन्दर्य के साथ दृष्टा की ऐन्द्रिय चेतना के सामंजस्य का अर्थात् उसकी चित्त-वृत्ति का जुड़ना आवश्यक है। संस्कृत साहित्य तो सौन्दर्य वर्णन का अगाध भण्डार है। साहित्य के अतिरिक्त भारतीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं में सौन्दर्य तत्व की मीमांसा प्रस्तुत की गई है। इस सन्दर्भ में रूप गोस्वामी रचित 'उज्ज्वल नीलमणि' के दो श्लोक दृष्टव्य हैं—

अंगप्रत्यंगकानां यः सन्निवेशो यथोचितम्।
सुश्लिष्ट संधिबन्धः स्यात्तत्सौन्दर्यहिमितीर्यते॥

अंगान्यभूषितान्येव केनचिद्भूषणा दिना ।
येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिति कथ्यते॥

पहले श्लोक में अंग-प्रत्यंग के यथोचित सन्निवेश के साथ एकता की जकड़ को महत्व दिया गया है। दूसरे श्लोक में कहा गया है कि बिना अलंकरण के अंग- प्रत्यंग जिस दैहिक आकर्षण से अलंकृत लगते हों वह रूप है ।

सौन्दर्य की अनुभूति

सौन्दर्य की अनुभूति वस्तु से प्रारम्भ होकर व्यक्ति की रस दशा से परिणित हो जाती है। वेद में कवि की वाणी को दिव्य चेतना से युक्त, प्रीतिकर, मंगलकारी तथा पवित्र भावनाओं की प्रेरणादायी माना है। वास्तव में सौन्दर्य की अनुभूति को अलौकिक मानते हुए उसे कल्याणकारी भी मानते हैं। चित्त को आनन्द प्रदान करने में उल्लास का भाव भी समाहित है। कालिदास के अनुसार सौन्दर्यानुभूति सात्विक

Scanned with OKEN Scanner

होती है । भारतीय दर्शन में सौन्दर्य चैतन्य का आनन्द है और आनन्द, आत्मा का अङ्ग है। चित्रकला में यह स्वीकार किया गया कि चित्र को देखने से सहृदय का चित्तानुरंजन होता है। विषयानन्द इंद्रियों की तृप्ति का सामान्य सुख होता है। कला का सौन्दर्य आत्मसंतोष देता है, पवित्र होता है। कुछ विद्वानों ने तो अपना निश्चित मत निर्धारण कर दिया कि जो कल्याणकारी नहीं है वह सुन्दर नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो कर्म सौन्दर्य को सर्वोच्च स्थान देते हैं क्योंकि उनके सामने लोक मंगल की भावना का आदर्श सर्वोच्च उपलब्धि है।

सौन्दर्यशास्त्र

सौन्दर्यशास्त्र हिन्दी में 'एस्थेटिक्स' का पर्य्याय बनकर प्रचलित हुआ है। कुछ लोग इसे 'नन्दनशास्त्र' भी कहते हैं। किन्तु सौन्दर्यशास्त्र के वास्तविक रूप को भलीभांति समझने के लिए 'एस्थेटिक्स' शब्द पर विचार करना परम आवश्यक है। यह शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है, जिसका मूल रूप है—'Atatiko's'। यही ग्रीक शब्द बाद में 'Aesthesis' बन गया, जिसका अर्थ होता है 'ऐन्द्रिय सुख की चेतना।' तदुपरान्त इस Aesthesis से 'ऐस्थेटिक' शब्द बना। बाद में इस शब्द का बहुवचन रूप 'एस्थेटिक्स' प्रचलित हुआ।

अर्थ विकास में परिवर्तन निम्न प्रकार से हुआ—

१. पाश्चात्य देशों में 'ऐस्थेटिक' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जर्मनी के वाम गार्रटन द्वारा रसालोचना के रूप में १७८९ ई० में सम्वेदनशील ऐन्द्रियबोध के शास्त्र के अर्थ में किया गया ।

२. हीगेल ने इस शब्द का प्रयोग ललित कलाओं के दर्शन के अर्थ में किया।

३. तद्नन्दर, इसका सामान्य प्रयोग सौन्दर्य (काव्य का सौन्दर्य निरूपण) के अर्थ में होने लगा।

४. अब इस शब्द का अर्थ है— ललित कलाओं के तत्वों का सैद्धान्तिक-निरूपण तथा उसके आधार पर कलाकृतियों का मूल्यांकन।

कुछ विद्वानों ने १८३० ई० में इस शब्द का प्रयोग इन्द्रियज्ञान, बुद्धि तथा चेतना प्राप्ति के लिए किया। १८३१ ई० में सौन्दर्य के प्रोत्साहन एवं आलोचना

Scanned with OKEN Scanner

के रूप में इस शब्द का प्रयोग किया गया । १८३६ ई० में इसे रस के लिए प्रयोग किया गया, इसके पश्चात् इसे रस मनोविज्ञान अथवा सौन्दर्य-बोध हेतु प्रयोग किया गया। श्री ह्यूम के अनुसार सौन्दर्य को परखने के लिए पहले हृदय का सुन्दर होना आवश्यक है ।

कालान्तर में 'एस्थेटिक्स' उस शास्त्र को कहा जाने लगा, जो ऐन्द्रियबोध से प्राप्त सौन्दर्य भावना के हार्दिक आनन्द का विश्लेषण करता है।

दो बातें आवश्यक हैं—

१. इस आनन्द की प्राप्ति में नेत्र व कर्णेन्द्रिय की प्रमुखता रहती है।

२. तीन प्रकार के सौन्दर्य पर विचार होता है— ऐन्द्रिय सौन्दर्य, विधानगत सौन्दर्य और अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य। इन तीनों की प्रधानता रहती है ।

सौन्दर्यशास्त्र सभी ललित कलाओं का शास्त्र है। भारतीयों की दृष्टि में इस शास्त्र का तात्पर्य्य आनन्द और रस की धारणा है जिसकी प्रारम्भिक सीमा नाट्य शास्त्र है। महर्षि भरत की यह उक्ति प्रसिद्ध है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिना दृश्यते॥

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में तीन ही कलाओं को महत्व दिया गया है—स्थापत्य (मूर्तिकला और चित्रकला), सङ्गीत और काव्य । सभी कलाओं का परस्पर अंतःसम्बन्ध होता है। सङ्गीत श्रव्य कला है, कुछ विद्वानों की दृष्टि में सूक्ष्मता कला है। सङ्गीत कला के क्षेत्र में हमें स्वर-संतुलन, स्वरों के आरोह-अवरोह का परस्पर संयोजन तथा स्वर-दोनों की घनता का स्पष्ट निर्वाह मिलता है। जबकि स्थापत्य कला में स्थूल वस्तुओं का प्रगटीकरण होता है ।

जब वस्तु अपने स्वाभाविक स्तर को प्राप्त कर लेती है तो वह सुन्दर कहलाती है, यही विचार एक सौन्दर्यशास्त्री ने इस प्रकार व्यक्त किए हैं—

" A creation is beautiful when it has reached the light of the natural development"

Scanned with OKEN Scanner

हमारी भावनाओं के प्रत्यक्ष दर्शन ही सौन्दर्य कहलाते हैं अर्थात भाव जब अपने वास्तविक रूप में व्यक्त किए जाते हैं, तो सौन्दर्य कहलाते हैं। सौन्दर्य कभी मापा नहीं जा सकता, क्योंकि इसका कोई मापदण्ड नहीं होता। शैक्सपीयर के अनुसार–

" Beauty and god are the samething"

क्रोचे के अनुसार—

"Aesthetics is the science of the expresions acitivity"

"Aesthetics is the philosophy of the beauty"

जब हम किसी सुन्दर दृश्य को देखते हैं अथवा कविता का पठन करते हैं या उत्कृष्ट सङ्गीत का श्रवण करते हैं, तब हम कहते हैं कि यह सुंदर है अर्थात् सुन्दर वह है जो सभी अन्य प्रकारों के आनन्द से भिन्न प्रकार के आनन्द की प्राप्ति कराती है इसीलिए कहा गया है —

"A thing of beauty is a joy forever."

रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार–

"The thing which gives us joy without any sense of utility is the sense of beauty"

कलाकार जब अपनी कला में खोकर एकाकार हो जाता है, तब वास्तविक सौन्दर्य का अनुभव होता है, इसीलिए यह कहा गया है—

"Truth is beauty, beauty is truth."

कला में वास्तविकता

कलाकार अपनी कला से जिस आनन्द की प्राप्ति करता है, वही आनन्द दूसरों को भी देता है, जैसे ताजमहल के कारीगरों की कला आज भी संसार के लोगों को आनन्द देती है। उसी प्रकार अच्छा सङ्गीत सुनकर श्रोतागण भी मोहित हो जाते हैं जैसे- महान गायक तानसेन के लिए यह प्रसिद्ध है उसके गाने पर

हिरन आ जाते थे, दीपक जल जाते थे (चाहे यह आतिशयोक्ति ही सही), वास्तव में यह मानसिक आनन्द सौन्दर्य की अनुभूति ही है। मल्हार राग गाने से वर्षा होने लगती थी, वर्षा वास्तव मे होती थी या नहीं, यह तो ईश्वर जाने-परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह राग जब गायन द्वारा अपनी श्रेष्ठता की पराकाष्ठा पर पहुँचता होगा तो वर्षा होने की अनुभूति श्रोता के हृदय में उत्पन्न होती होगी यही अनुभूति वास्तविक आनन्द अथवा वास्तविक सौन्दर्य है।

भारतीय कविताओं में राधाकृष्ण की प्रेम गाथाओं के वर्णन ने चित्रकला को प्रभावित किया। पन्द्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के मध्य मुगल, कांगड़ा, बसौली, गढ़वाल, बिलासपुर, राजस्थान, जौनपुर आदि स्थानों से प्राप्त चित्र है जिनको देखने से यह ज्ञात होता है कि जिस प्रकार जयदेव, विद्यापति, चंडीदास, मीराबाई, कृष्णदास, सूरदास कवियों ने कविताओं के माध्यम से कृष्ण कथा द्वारा भारतीय काव्य को प्रभावित किया है, उसी प्रकार कृष्ण कथा ने भारतीय चित्रकला पर भी अपना प्रभाव डाला, जैसे कांगड़ा शैली के चित्र। सबसे पहला सङ्गीत ग्रन्थ 'गीतगोविन्द' जयदेव का है, जो आज भी घर-घर में भक्तिभाव से गया जाता है । यह चौबीस अष्टपदियों का एक शृंगार-काव्य है ।

काव्य और सङ्गीत दोनों ही श्रव्य कलाएँ हैं। इन दोनों की निकटता सर्वव्यापी है। कविता का नाद सौन्दर्य, भाव-प्रकाश बहुत दूर तक कवियों की सङ्गीत चेतना और लय निर्वाह पर निर्भर करता है। शब्द और स्वर की घनिष्ठता दोनों कलाओं के अंतः सम्बन्ध को बताती है। अतः भारतीय परम्परा में वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के हाथ में वीणा है। दोनों के संयोग से आकृति की व्यंजना निखर उठती है तथा कविता आत्मा का मुखर सङ्गीत बन जाती है।

नाट्य, काव्य व सङ्गीत तीनों ही स्वर-रूपेण सहृदयों को रसानुभव कराने में समर्थ हैं। नाट्य में केवल आङ्गिक चेष्टाएं, काव्य में केवल भाषा तथा सङ्गीत में केवल 'नाद' साधन है। इन तीनों कलाओं का पृथक-पृथक स्वतंत्र अस्तित्व है, इसीलिए इनमें से कोई भी एक कला रसानुभव कराने में पूर्णतः समर्थ है। यदि इन तीनों कलाओं की 'त्रिवेणी' में स्नान किया जाए, तो क्या ही बात है। तीनों कलाएं हमें सांसारिक चिन्ताओं से मुक्ति देने के साथ ही साथ हम में नवीन प्राणों का संचार करते हैं तथा हम में नवीन शक्ति का संचार करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

रस से सम्बन्ध

पाश्चात्य सौन्दर्य विज्ञान भारतीय रस शास्त्र का प्रतीक है, जिस प्रकार भारतीय रस शास्त्र का प्रयोग करके विभिन्न वातावरण तथा भावों की व्यंजना करते हैं, उसी प्रकार पाश्चात्यों द्वारा सौन्दर्य विज्ञान का प्रयोग सौन्दर्य को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। भारतीय रस सिद्धान्त सम्पूर्ण विज्ञान है, जो नव रसों, इसके स्थाई भावों, अनुभावों तथा विभावों के माध्यम से प्रत्येक प्रकार का आनन्दात्मक वातावरण उत्पन्न करने तथा व्यक्त करने में समर्थ हैं। वास्तविकता यह है कि सौन्दर्यानुभूति तथा सौन्दर्य सृष्टि की चेष्टा मानव जाति की उत्पत्ति के साथ ही उत्पन्न हो गयी थी। इस सौन्दर्य रूपी वृक्ष की दो शाखाएँ हैं—प्रकृति तथा कला। इन दोनों का उद्देश्य एक ही है आत्मिक आनन्द तथा आत्मसंतुष्टि। किसी भी कला की सत्यता, उसका कल्याणकारी रूप तथा सुन्दरता उसका एक आवश्यक तत्व है। प्राकृति तथा कला एक दूसरे के पूरक हैं। प्रकृति ईश्वरीय प्रसाद है तथा कला मानव निर्मित।

प्रकृति और सौन्दर्य

श्याम घन में विद्युत छटा, प्रभात-कालीन सूर्य की लालिमा तथा किरणों का कलोल, चन्द्रमा का बादलों के मध्य अकस्मात् दर्शन, मुक्त आकाश में पक्षियों का कलरव, तारों से जगमग करता आकाश, यह सब प्रकृति के सुन्दरता के उदाहरण हैं। इसी सौन्दर्य को तूलिका तथा रंगों के माध्यम से प्रस्तुत करना अथवा वाणी के माध्यम से प्रस्तुत करना ही कला है।

कला व सौन्दर्य

कला भावों की उस अभिव्यक्ति को कहते हैं जो मानव हृदय को तीव्रता से स्पर्श करे। कला सुन्दरता का अविष्कार है। कलाएं पाँच प्रकार की हैं। १. चित्रकला, २. मूर्तिकला, ३. काव्यकला, ४. वास्तुकला तथा ५. सङ्गीत कला। इन सब कलाओं में सङ्गीत को श्रेष्ठ माना गया है। गायन, वादन तथा नर्तन, इन तीनों कलाओं का समावेश सङ्गीत कला में है तथा यह तीनों अपने आप में सम्पूर्ण कलाएं हैं तथा मानव के अतिरिक्त पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों तक को प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं।

Scanned with OKEN Scanner

सङ्गीत में सौन्दर्य (आनन्द) की अनुभूति

इस विषय पर आधुनिक काल के प्रसिद्ध वाग्गेयकार स्व० आचार्य्य बृहस्पति का कथन है—

इन्द्रियों से हम जो कुछ अनुभव करते हैं, उसका प्रभाव हमारे मन पर पड़ता रहता है। अनुभव क्षणिक होता है, परन्तु उसका प्रभाव या संस्कार हमारे मन पर सर्वदा के लिए अंकित हो जाता है। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, विस्मय और विरक्ति ऐसे ही संस्कार हैं, जो मानव के मानस पटल पर अनुभव परम्परा के प्रभावरूप में अंकित है।

भारतीय दार्शनिकों का कथन है कि संस्कार जन्म-जन्मान्तर तक जीव के साथ रहते हैं और जीव के मन में बस जाते हैं, इसलिये इन संस्कारों या भावों को 'स्थायी भाव' कहा जाता है।

लोक-जीवन में ये भाव स्वतंत्र रूप से प्रकट नहीं हो पाते और हमारे व्यक्तिगत राग द्वेष के कारण पिंजरे में बन्द पक्षी की भांति फड़फड़ाते हैं। विवाह का मंगल-कृत्य है, जिसका परिणाम "प्रसन्नता" होना चाहिए। अपने या अपने पुत्र के विवाह पर हम प्रसन्न होते हैं, परन्तु शत्रु के लड़के का विवाह यदि ठाठ बाट से हो, तो हमें प्रसन्नता नहीं, ईर्ष्या होती है। यदि हम किसी आवश्यक कार्य्य से जा रहे हैं, हमें कहीं जल्दी पहुंचना है और रास्ते में यदि कोई लम्बी बरात मिल जाये, जिसने रास्ता रोक लिया हो, तो हमें 'झुंझलाहट' होती है ।

'मृत्यु' एक दुःखद घटना है। यदि कोई रेल-दुर्घटना हो जाये और हमारा कोई सगा-सम्बन्धी उसका शिकार हो जाये तो हमें अपार 'शोक' होता है, यदि मृतकों की सूची में हमारा कोई परिचित तक नहीं है, तो हम उस दुर्घटना को कुछ बहुत महत्व नहीं देते और यदि वह दुर्घटना हमारे किसी शत्रु देश में हुई हो, तो हम कहें या न कहें, हमें कुछ प्रसन्नता सी होती है।

हत्यारा 'घृणा' का पात्र है। यदि हत्यारा हमारा शत्रु या उसका समर्थक है, तो हम उसके प्रति दूसरों की भी 'घृणा' उभारने की चेष्टा करते हैं, उसे दण्ड

Scanned with OKEN Scanner

दिलाने के प्रयत्न में कोई कसर नहीं छोड़ते, परन्तु यदि वह हमारा कोई मित्र सम्बन्धी या सुहृद है, तो हमें उससे सहानुभूति होती है और हम उसे अदालत से बेदाग छुड़ाने के लिए एड़ी चोटी का पसीना एक कर देते हैं।

तात्पर्य्य यह है कि प्रसन्नता, शोक, घृणा इत्यादि मनोभाव लौकिक जीवन में स्वच्छन्दता-पूर्वक प्रकट नहीं होते। हमारे 'राग-द्वेष' उन्हें बलपूर्वक जिधर चाहे, हांकते रहते हैं। अपनी सुविधा और सुख हमें वांछनीय होते हैं और शत्रु का सुख हमें नहीं सुहाता। मित्रों का हम समर्थन करते हैं और शत्रु का विरोध। शत्रु से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति भी हमें सह्य नहीं होते। यही 'राग-द्वेष' हमारे मन पर निरंतर भार बने रहते हैं, हमसे 'न्याय' नहीं होने देते ।

राग-द्वेष से मुक्त होकर समदृष्टि हो जाने पर मनुष्य को चिर-शान्ति मिलती है, सनातन सन्तोष प्राप्त होता है और वह ब्रह्मानन्द में मग्न हो जाता है। योगियों या मुमुक्षुओं का लक्ष्य यही है ।

योगियों या मुमुक्षुओं की बात छोड़कर यदि अन्य दृष्टि से विचार किया जाये, तो ऐसे व्यक्तियों को भी राग-द्वेष-युक्त स्थिति प्राप्त होती है। जो सहृदय है, उन्हें भी राग-द्वेष से मुक्त होकर एक ऐसा आनन्द अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त होता है, जो योगियों को अनुभूत होने वाले आनन्द से मिलता-जुलता है ।

सहृदयों के व्यक्तिगत 'राग-द्वेष' को दबा कर, उनके लौकिक जीवन की चिन्ताओं को भुलाकर, उनके अन्तःकरण को रजोगुण एवं तमोगुण के भार से कुछ समय के लिए ही सही मुक्ति दिलाकर उनको एक ऐसी आनन्दमय स्थिति में ले आना भी सम्भव है, जिसमें वे भूल जाएं कि वे कौन हैं, कहाँ बैठे हैं और उन्हें अपनी सुध-बुध न रहे। सहृदयों को प्राप्त होने वाली यही चेतना 'रस' है ।

'रस' के रूप, अभिव्यक्ति एवं अनुभूति की प्रक्रिया पर केवल भारतीय मनीषियों ने विचार किया है । नाट्य, काव्य और संगीत तीनों ही स्वतंत्र रूपेण सहृदयों को रसानुभव कराने में समर्थ हैं।

जैसा कि सभी विद्वज्जन जानते हैं कि —'नाट्य' में केवल 'आङ्गिक' चेष्टाएं, काव्य में केवल 'भाषा' और 'सङ्गीत' में केवल 'नाद' साधन है। इन तीनों

Scanned with OKEN Scanner

कलाओं का पृथक-पृथक् स्वतंत्र अस्तित्व है, इसीलिए इनमें से कोई भी एक कला रसानुभव कराने में पूर्णतया समर्थ है। यदि इन तीनों कलाओं की 'त्रिवेणी' में स्नान किया जाये, तो क्या ही कहना है।

सांसारिक चिन्ताओं से मुक्ति पाने के लिए, कुछ व्यक्ति, भांग, गांजा, चरस, शराब इत्यादि का सेवन करते हैं, परन्तु इस प्रवृत्ति का परिणाम जीवन का विनाश है। नाट्य, काव्य, या संगीत हमें सांसारिक चिन्ताओं से मुक्ति देने के साथ ही साथ हम में मानो नवीन प्राणों का संचार करते हैं, हम में नई जीवनी शक्ति भर देते हैं।

यह कहा जा चुका है कि पूर्वोक्त तीन कलाएं हमें व्यक्तिगत राग-द्वेष से मुक्ति दिलाती है। कल्पना कीजिये कि आप कोई नाटक देख रहे हैं, उसमें कोई अबला किसी अत्याचारी का शिकार हो रही है, आपके मन में अत्याचारी के प्रति क्रोध उत्पन्न होता है। यदि आपका कोई शत्रु भी नाटक देख रहा है उसके मन में वही भाव उदित होगा, जो आपके मन में हुआ है, आप दोनों की सहानुभूति अबला की ओर होगी, उस समय आप दोनों केवल 'मानव' हैं। यह सम्भव नहीं कि आपका शत्रु यदि किसी पात्र से सहानुभूति प्रकट कर रहा है, तो वह पात्र आपके 'क्रोध' का पात्र हो जाये, क्योंकि आपके शत्रु को उससे सहानुभूति है। कारण यह है कि नाटकीय पात्र के प्रति दर्शक के हृदय में यदि घृणा या सहानुभूति जागती है, तो उसका कारण पात्र के साथ दर्शक का कोई व्यक्तिगत राग-द्वेष नहीं। ऐसी स्थिति में दर्शक के हृदय में जागने वाले भावों को अभिव्यक्त होने का स्वतंत्र अवसर मिलता है। वे स्वच्छन्द पक्षी की भांति उड़ते हैं, वे 'राग-द्वेष' के पिंजरे में बन्दी नहीं होते। हृदय में सदा रहने वाले भावों की यह उन्मुक्त अवस्था ही दर्शक को आनन्दानुभव कराती है।

मान लीजिए कि आप कोई अत्यन्त करुणापूर्ण नाटक देखकर आये हैं, जिसे देखते समय आपके नेत्रों से निरन्तर अश्रुप्रवाह होता रहा है, आप कहते हैं कि बहुत अच्छा नाटक था, कल फिर देखेंगे। इस तथ्य से यह सिद्ध है कि नाटक में जो आपका अश्रुप्रवाह हो रहा था, उसका कारण करुणा थी, जिसे नाटक ने जगा दिया था। करुणा की उस अभिव्यक्ति से आपको एक 'आनन्द' मिला और आप उस आनन्द को पुनः प्राप्त करने के लिए अगले दिन फिर नाटक देखने जाना

चाहते हैं। पैसे खर्च करके फिर रोना चाहते हैं, क्योंकि उस रोने में 'आनन्द' है। यदि पड़ौस में कोई जवान और होनहार जवान लड़का विवाह के दूसरे दिन ही मर जाये, नव-वधू की चूड़ियाँ तोड़ी जा रही हों, लड़के की मां छाती पीट-पीट कर रो रही हो, बूढ़े बाप की दशा देखी न जाती हो, तब भी आप रोयेंगे, परन्तु उस रोने के कारण की तथा उस दुःखद घटना की पुनरावृत्ति कभी न चाहेंगे, क्योंकि उस स्थिति में आपके आंसुओं का कारण लौकिक दुःख है। मनुष्य दुःख की पुनरावृत्ति नहीं चाहता। यही दृश्य यदि नाटक में आया हो, तब भी आप रोयेंगे और यदि अभिनेताओं ने इस दृश्य को सफल रूप में प्रस्तुत किया है, तो आप उसे बारम्बार देखना चाहेंगे।

रामचरितमानस के अयोध्या काण्ड में 'राम-वन-गमन' एवं 'दशरथ-मरण' के अवसर को लोग निरन्तर सुनते हैं, भावमय होते हैं, रोते हैं, फिर सुनते हैं, फिर रोते हैं। यह रोना सम्मुख घटित होने वाली करुण स्थितियों से उत्पन्न रोदन से भिन्न है ।

कल्पना कीजिए, कोई सफल साधक आपके सम्मुख किसी ऐसे राग की अवतारणा कर रहा है, जिससे करुणा फूटी पड़ती है, कलाकार केवल 'आलाप' कर रहा है, 'भाषा' का आश्रय उसने नहीं लिया है, वह अपने स्वर-प्रयोग से ऐसी स्थिति ले आता है कि आप अपनी सुधबुध खो देते हैं, स्वरों के द्वारा अभिव्यक्त करुणा का 'संवाद' आपके हृदय में स्थित 'करुणा' से होता है वह जागती है। आपके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है, ऐसी मानसिक स्थिति का निर्माण होता है, जिसमें चारों ओर से करुणा का समुद्र उमड़ता हुआ प्रतीत होता है, तब भी आपके हृदय में स्थित व्यक्तिगत राग-द्वेष की ग्रन्थियां घुल जाती हैं।

कलाओं द्वारा प्राप्त इस आनन्द को 'अलौकिक' कहा गया है, इसकी अनुभूति के समय मनुष्य अपनी व्यक्तिगत सीमाओं के बन्धन से छूट जाता है, उसका हृदय 'अपरिमित' हो जाता है और वह 'व्यक्ति' न रहकर 'मानव बन जाता है।'

Scanned with OKEN Scanner

साङ्गीतिक-सौन्दर्योत्पत्ति के नियम

सङ्गीत सौन्दर्य है, सङ्गीत सौन्दर्य की अनुभूति है, सङ्गीत जीवन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। सङ्गीत जीवन का आधार है। सङ्गीत ईश्वर है, सङ्गीत एक वास्तविकता है, सङ्गीत दुःखभंजन हैं। सङ्गीत का सौन्दर्य अमर है। सङ्गीत के स्वरों में मधुरता है। सङ्गीत द्वारा प्राप्त रस की अनुभूति भी अमर है। यह एक साधना है। वैसे तो सङ्गीत अपने प्राकृतिक रूप में ही अत्यन्त सुन्दर है, परन्तु इसके सौन्दर्य को स्थिरता प्रदान करने के लिए कुछ नियमों का पालन यदि किया जाये तो इसमें चार चाँद लग जाते हैं।

१. सङ्गीत का अभ्यास करते समय एकाग्रचित्त होकर गाना चाहिए। अपनी कला का प्रदर्शन भी एकाग्रचित्त होकर करना चाहिए।

२. प्रदर्शन से पहले अपना प्रमुख वाद्य तथा सहायक वाद्यों को भली-भाँति आधार स्वर पर मिलना चाहिए।

३. प्रदर्शन करते समय भारतीय समय सिद्धांत का ध्यान रखते हुए, गाया बजाया जाने वाला राग समयानुसार लिया जाना चाहिए क्योंकि यह वातावरण को सुखमय तथा सङ्गीतमय बनाने में सहायक सिद्ध होता है। समय-सिद्धांत का निर्माण मानव की रुचि के अनुकूल ही किया गया है ।

४. प्रदर्शित किए जाने वाले राग का सम्पूर्ण ज्ञान भी सङ्गीतज्ञ के लिए आवश्यक है।

५. प्रदर्शन करते समय राग के नियमों का पालन करना भी आवश्यक है।

६. बन्दिश के शब्दावली सरल तथा सुन्दर होनी चाहिए ताकि शब्दों को समझने में श्रोता को कष्ट न हो ।

७. छन्द शास्त्र का ज्ञान भी प्रदर्शन-कर्त्ता के लिए आवश्यक है, जिससे आलाप करते समय गायक शब्दार्थ की उपेक्षा न करे।

८. कला प्रदर्शन करते समय स्वरों का सच्चा लगाव करना चहिए जिससे श्रोता स्वर का वास्तविक आनन्द प्राप्त कर सके।

९. प्रदर्शन करते समय स्वस्थान नियमों का पालन होना चाहिए।

१०. आलाप द्वारा शान्त, बोल आलाप द्वारा भावुक, तानों द्वारा तीव्रता, बोल-

Scanned with OKEN Scanner

तानों द्वारा लय की चपलता तथा सम्पूर्ण प्रदर्शन में मर्यादित आचरण द्वारा आनन्दात्मक भावों की अभिव्यक्ति करनी चाहिए।

११. प्रस्तुत किया जाने वाला राग किस रस से सम्बन्ध रखता है, यह ज्ञान भी गायक व वादक के लिए आवश्यक, ताकि वह उस राग के साथ न्याय कर सके।

१२. गायकी के गुणों का ध्यान रखते हुए, मुखमुद्रा, वेशभूषा, बैठक, हाव-भाव स्वरों पर नियंत्रण, शुद्ध स्वर तथा शब्दोच्चारण इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए।

१३. यदि गायक की वाणी धीर गम्भीर हैं तो उसे प्रदर्शन के लिए ऐसे रागों का चयन करना चाहिए जिनका अधिक विस्तार मन्द्र स्थान तथा मध्य स्थान (सप्तक) में होता हो, परन्तु यदि गायक की वाणी चंचल अथवा बारीक हो तो उसे प्रदर्शन के लिए ऐसे रागों का चयन करना चाहिए, जिनका विस्तार मध्य स्थान व तार स्थान में होता है ।

संदर्भ

१. वाचस्पत्य कोष भाग ६, पृ० ३१४

२. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का तात्विक विवेचन एवं ललित कलाएं,पृ० २३

३. कान्टम्प्रेरी डिक्शनरी, पृ० ६३

४. आक्सफोर्ड डिक्शनरी चौथा संस्करण,पृ० १०२

५. शब्द कल्पद्रुम- पांचवा संस्करण ,पृ० ३८३

६. ऋग्वेद (सौन्दर्य),पृ. १५९

७. ऋग्वेद संहिता, चतुर्थ भाग, पृ० ३४४

८. ऋग्वेद भाषाभाष्यम् द्वि० भाग०, पृ० १

९. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र, पृ० ३५

१०. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र, पृ० ३६

Scanned with OKEN Scanner

सङ्गीत-सम्बन्धी कुछ किंवदन्तियाँ और वास्तविक इतिहास

महापुरुषों के साथ अपनी-अपनी परम्परा का सम्बन्ध जोड़ने की प्रवृत्ति नवीन नहीं है। यह प्रवृत्ति भाँति-भाँति की कपोल-कल्पनाओं और किंवदन्तियों को जन्म देती रही है। धीरे-धीरे ऐसी किंवदन्तियां श्रद्धा का विषय बन जाती हैं और लोग इसी को इतिहास मानने लगते हैं।

उदाहरण के रूप में तानसेन के धर्म को लीजिए। इनकी एक तथाकथित कब्र ग्वालियर में है, वहाँ प्रति वर्ष एक सङ्गीत-सम्मेलन होता है। सामान्य व्यक्ति के लिए इस सम्बन्ध में विचारणीय कुछ नहीं है, परन्तु सङ्गीत के इतिहास का शोध करने वाले विद्यार्थी के सम्मुख इस सम्बन्ध में अनेक प्रश्न आते हैं-

(१) तानसेन यदि मुसलमान हो गए थे, तो उनका मुस्लिम नाम क्यों नहीं रखा गया ?

(२) यदि तानसेन ग्वालियर में गाड़े गये, तो इस तथ्य का उल्लेख 'अकबरनामा' में क्यों नहीं है, जबकि तानसेन की मृत्यु-तिथि और उनकी शवयात्रा का उल्लेख है ।

(३) शैख मुहम्मद ग़ौस अकबर के कोप भाजन थे,[१] बैरम खाँ ने उनकी गिरफ़्तारी का आदेश दिया था। साथ ही साथ शैख मुहम्मद ग़ौस की परम्परा में संगीत एवं वर्जित वस्तु है, अतः तानसेन की समाधि शैख़ मुहम्मद ग़ौस के मक़बरे के पास कैसे हो सकती है ?

(४) अकबर के दरबारी इतिहासकार शैख़ अबुलफ़ज्ल और मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूँनी ने तानसेन के मुसलमान होने का उल्लेख क्यों नहीं किया ?

(५) संगीत का विरोधी फक़ीर एक गवैये का पीर कैसे हो सकता है?

Scanned with OKEN Scanner

(६) चिश्ती परम्परा में सङ्गीत ग्राह्य है। अक़बर के पीर शैख सलीम चिश्ती तानसेन का गाना प्रतिदिन सुनते थे। अपनी मृत्यु के दिन भी उन्होंने तानसेन का गाना सुना था,[२] ऐसी दशा में तानसेन पर सूफियों को चिश्ती परम्परा के अतिरिक्त किसी अन्य परम्परा का प्रभाव हो ही कैसे सकता था?

(७) तानसेन की इस तथाकथित ग्वालियर वाली क़ब्र और शैख मुहम्मद ग़ौस के साथ तानसेन के किसी भी सम्बन्ध की चर्चा मुहम्मद करम इमाम ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मअदन्-उल-मूसिकी' (रचना-काल १८५४ ई०) में क्यों नहीं की?

इस तथ्य से बहुत कम लोग परिचित हैं कि जहाँगीर के युग में भी एक 'तानसेन' हुए हैं, जिनकी चर्चा जहाँगीर ने स्वयं की है। ये तानसेन भी कलावन्त ही थे और १६१८ ई० में जीवित थे[३], जबकि अकबरी दरबार के तानसेन की मृत्यु २६ अप्रैल १५८९ ई० को हो चुकी थी। सम्भव है ग्वालियर वाली समाधि तानसेन द्वितीय की हो।

शाहजहाँ के आदेश पर संकलित 'सहसरस' नामक ग्रन्थ की भूमिका में कहा गया है कि स्वर और वाणी की देवी भारतीयों की दृष्टि में 'सरस्वती' है, जिसके द्वारा सब को वाणी की स्फूर्ति और गीत गान की शक्ति प्राप्त होती है। तानसेन उस वाणी के विलास थे, जो उनके कण्ठ का आभरण थी, इसीलिए अकबर ने तानसेन की 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि दी।[४]

ये समस्त शब्द तानसेन को हिन्दू धर्म्मावलम्बी सिद्ध करते हैं। तानसेन के ध्रुवपदों से भी यह तथ्य सिद्ध है कि सूफ़ी प्रभाव में आने के पश्चात् भी ये पुनर्जन्मवादी रहे,[५] कोई भी मुसलमान पुनर्जन्मवादी नहीं होता।

शौक़ी नामक गायक को जहाँगीर ने 'आनन्दखाँ' उपाधि दी थी[६], लाल खाँ को शाहजहाँ ने 'गुनसमन्दरखाँ' उपाधि दी[७] तथा खुशहालखाँ को औरंगजेब ने 'गुनसमन्दरखाँ' उपाधि दी।[८]

ये तथ्य सिद्ध करते हैं कि मुगल बादशाह मुसलमान गुणियों को जो उपाधि देते थे, उसके पश्चात् 'खाँ' लगा होता था। तानसेन मुसलमान नहीं थे, इसीलिए

Scanned with OKEN Scanner

अकबर ने उन्हें 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि दी।

तानसेन के नाम के पूर्व 'मियाँ' विशेषण उन पर सूफी प्रभाव सिद्ध करता है, आज भी सूफी-भक्त हिन्दू परिवारों के व्यक्तियों के नाम के साथ अनेक स्थानों पर 'मियाँ' लगाया जाता है ।

प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने किंवदन्तियों के आधार पर लिख दिया कि तानसेन मुसलमान हो गए और उन्होंने 'मिर्ज़ा' उपाधि या तो धारण कर ली अथवा उन्हें यह उपाधि दी गई।[१]

स्मिथ का यह कथन सर्वथा भ्रामक है। 'मिर्जा' शब्द 'मीरज़ादा' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ 'अमीर का पुत्र' होता है। मिर्ज़ा राजा जयसिंह औरंगजेब के हिन्दू सेनापतियों में अग्रगण्य थे, 'मिर्ज़ा' शब्द ने जयसिंह को मुसलमान नहीं बना दिया। तानसेन के नाम के साथ 'मिर्ज़ा' शब्द का उपयोग कभी नहीं हुआ, न वे किसी राजवंश की सन्तान थे, जो उन्हें मिर्ज़ा कहा जाता।

स्मिथ को यदि मूल ग्रन्थों में तानसेन के मुसलमान हो जाने का कोई प्रमाण मिला होता तो उसका उल्लेख स्मिथ ने अवश्य किया होता।

तानसेन के समकालीन किसी लेखक तथा जहाँगीर अथवा शाहजहाँ के युग के किसी प्रामाणिक लेखक ने तानसेन के द्वारा इस्लाम अंगीकृत किए जाने की बात नहीं लिखी है ।

दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में गोविंद दीक्षित ने लिखा कि तानसेन आजीवन वृन्दावन रहे। 'निज़मत सिद्धान्त सार' में उनको कई लोगों का शिष्य बताया गया है ।

अठारहवीं शती में लिखे गए परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा अप्रामाणिक कुछ वैष्णव ग्रन्थों में तानसेन को आजन्म वैष्णव और गोविन्द स्वामी का शिष्य, कुछ ग्रंथों में हरिदास जी का शिष्य और कुछ ग्रन्थों में शैख मुहम्मद ग़ौस के आशीर्वाद से उत्पन्न और मुसलमान बताया गया है। प्रत्यक्ष है कि ये सभी रचनाएं साम्प्रदायिक आग्रह से मुक्त नहीं है।

Scanned with OKEN Scanner

ऐसे उदाहरण अनेक होते रहे हैं, जिनमें हिन्दू विलासियों की मुसलमान उपपत्नियाँ रही हैं और ये उपपत्नियाँ प्रायः संगीतजीवी जातियों में उत्पन्न थीं। इनके गर्भ से उत्पन्न हिन्दुओं की सन्तानें भी मुसलमान रहीं। तानसेन के पुत्र तानतरङ्गखाँ इसी प्रकार की सन्तान थे। 'तानतरङ्ग खाँ' शब्द भी उपाधि है, नाम नहीं। इस उपाधि के पश्चात् भी 'खाँ' लगा हुआ है, जो तानतरङ्ग खाँ के मुसलमान होने का द्योतक है, परन्तु तानसेन आजन्म हिन्दू रहे, उनकी शव यात्रा के साथ दरबारी गायक गाते-बजाते, विवाहोत्सव जैसा मनाते सम्मिलित हुए,[१०] उन्हें आज तक किसी ने 'तानसेन खाँ' नहीं कहा। तानसेन के हिन्दू पुत्रों, हमीरसेन और सूरतसेन की चर्चा प्रत्यक्षदर्शी फ़कीरूल्लाह ने की है।[११]

तानसेन आजन्म हिन्दू रहे। ग्वालियर वाली तथाकथित समाधि वैष्णव परम्पराओं और ऐतिहासिक तथ्यों को देखते हुए चिन्तनीय है।

तानसेन के मुसलमान होने की बात जितनी कपोल-कल्पित है, उतनी ही असंगत यह बात है कि औरंगज़ेब सङ्गीत का शत्रु था।

चालीस वर्ष की आयु (२३ जुलाई १६५८ ई०) में औरंगज़ेब गद्दी पर बैठा। राज्यारोहण के लिए उसने मुहूर्त निकलवाया था, उसके दरबार में गाना-बजाना हो, वह गवैयों को इनाम देता था, उपाधियाँ देता था। खुशहाल खाँ, बिलास खाँ, रसबैन खाँ, सुखीसेन कलावन्त, पखावज वादक किरपा उसके प्रिय कलाकार थे। १६६५ ई० में फकीरुल्लाह ने औरंगजेब को समर्पित करने के लिए ही रागदर्पण की रचना की। औरंगजेब के वेतनभोगी कर्मचारी मिर्जा रौशन जमीर ने १६६६ ई० में अहोबल के संगीत-पारिजात का फारसी अनुवाद किया। इबाद मुहम्मद कामिल खानी ने १६६७ ई० में 'रिसालाए कामिल खानी' की रचना की। ऐसी स्थिति में औरंगज़ेब को सङ्गीत का शत्रु कहना औरंग़ज़ेब के साथ न्याय नहीं है ।

अपने जीवन के उनचास वर्षों में औरंगज़ेब ने सङ्गीत का भरपूर आनन्द लिया। कलाकारों को प्रोत्साहित किया, सङ्गीत-ग्रन्थों की रचनाओं को भी।[१२]

यह सत्य है कि अपने जीवन के पचासवें वर्ष में औरंगज़ेब ने दरबार में गाने बजाने का निषेध कर दिया, परन्तु इस निषेधाज्ञा की पृष्ठभूमि में विशुद्ध राजनीतिक कारण थे।

Scanned with OKEN Scanner

गवैये राजनीतिक षड्यंत्रों में भाग लेने लगे थे। औरंगजेब ने स्वयं खुशहाल खाँ से मिलकर एक षड्यंत्र रचा था। इस षड्यंत्र के परिणामस्वरूप खुशहाल खाँ के गाने से मंत्रमुग्ध शाहजहाँ ने उस आदेशपत्र पर बिना पढ़े हस्ताक्षर कर दिए थे, जिसके अनुसार मुर्शिद कुलीखाँ को औरंगज़ेब के साथ दक्षिण जाना था। शाहजहाँ मुर्शिद कुलीखाँ को औरंगज़ेब के साथ दक्षिण न भेजना चाहता था। शाहजहाँ को जब इस षड़यंत्र का ज्ञान हुआ, तब उसने खुशहालखाँ को दण्डित किया।[१३] मुर्शिद कुलीखाँ औरंगज़ेब का योग्य दीवान था।

ऐसी स्थिति में घोर सन्देही औरंगजेब ने यदि दरबार में गाना-बजाना बन्द कर दिया, तो यह उसकी सतर्कता मात्र है, संगीत विरोध नहीं।

इतिहास से परिचित व्यक्ति जानते हैं कि औरंगज़ेब शिया मुसलमानों का कट्टर विरोधी था। शिया मुसलमान 'मर्सियों' में राग-रागनियों का प्रयोग करते हैं, मर्सिया गाने वाले सोजख्वां लोग तानपूरे के साथ विधिवत् राग-रागनियों का अभ्यास करते हैं। अत: दरबार में गाने-बजाने का बन्द किया जाना शियों के विरोध का परिचायक होने के साथ ही साथ सुन्नी मौलवियों को और उनके अनुयायी बहुसंख्यक मुसलमानों को संतुष्ट करने का प्रयत्नमात्र है, जो सङ्गीत को वर्जित अथवा त्याज्य समझते थे।

१६६६ में शिवाजी औरंगजेब की कैद से भाग गए थे, जाट लोग विद्रोह के लिए सिर उठा रहे थे, मिर्ज़ा राजा जयसिंह जैसे हिन्दू सेनापतियों पर औरंगजेब को विश्वास न रहा था, अत: सुन्नी मौलवियों और बहुसंख्यक सुन्नी मुसलमानों को प्रसन्न करने और उनका नेता बनने के लिए औरंगज़ेब 'जिन्दापीर' बना । दरबार में गाना-बजाना बन्द करने के पीछे ये राजनीतिक कारण थे। औरंगजेब के महलों में गाना-बजाना कभी बन्द न हुआ। अन्त:पुर के लिए गायिकाओं की नियुक्ति वह स्वयं करता रहा।[१४]

सङ्गीत की दृष्टि से ऐतिहासिक तथ्यों की खोज अभी अवशिष्ट है ।

Scanned with OKEN Scanner

सन्दर्भ

१. अकबरनामा खण्ड २, बेवरिज कृत अनुवाद, १.१३३-१३५

२. जहाँगीरनामा, अनुवादक मुंशी देवी प्रसाद, संस्करण १९०६ ई०

३. जोजुक-जहाँगी, खण्ड २, अनुवादक अलेक्जेंडर रोजर्स, १९२४ ई०

४. सहसरस, फारसी भूमिका का अनुवाद, १-१२

५. सङ्गीत-चिन्तामणि, १.४२८-४८३

६. जहाँगीरनामा, पृ० ३९६

७. सङ्गीत-चिन्तामणि, पृ० १.३२१

८. राग-दर्पण, दसवां बाब

९. अकबर दी ग्रेट मुग़ल, पृ० १२३ संस्करण १९१९ ई०

१०. अकबरनामा, खण्ड २ पृ० ८८०

११. रागदर्पण

१२. औरंगजेब के सङ्गीत-प्रेम से परिचय प्राप्त करने के लिए देखिए, औरंगजेबनामा, प्रथम खण्ड, पृ० ३५,४४,६२, द्वितीय खण्ड, पृ० ६,१० । संगीत-चिन्तामणि, पृ० २८८-२९२

१३. 'खुलासतुल ऐश आलमशाही', 'मिराते आफताबनुमा', सङ्गीत-चिन्तामणि, पृ० ३२७

१४. 'सङ्गीत-चिन्तामणि', पृ० ३२९ पर उद्धरण 'मुगल राजमहलों का जीवन', पृ० २३

Scanned with OKEN Scanner

'घरानेदार-गायकी' के सिद्धान्तों का निरूपणः एक अध्ययन

'घरानेदार गायकी' नामक पुस्तक श्री वा० ह० देशपांडे की मराठी पुस्तक 'घरंदाज गायकी' (प्रकाशन काल १९६१ ई०) का हिन्दी अनुवाद है। इस विषय पर संभवतः यह पहली पुस्तक है। पुस्तक के लेखक ने प्रारम्भ में अपने पिता से कुछ ध्रुवपद सीखे, ग्वालियर परम्परा के बाला गुरु के शिष्य स्वर्गीय शंकर राव कुलकर्णी से दो तीन वर्ष तथा यादव राव जोशी, प्रो० सुरेश बाबू माने तथा श्रीमती हीरा बाई बडौदकर बारह वर्ष, अल्लादिया खाँ के भतीजे स्व० नत्थन खाँ से छः वर्ष शिक्षा ली ।[१]

एक ओर श्री देशपाण्डे इतने घरानों की विशेषताओं को अपने हृदय में उतार चुके हैं, दूसरी ओर वे एक ऐसे गायक को ग्लानि-ग्रस्त सङ्गीत उद्धार के निमित्त अवतीर्ण भगवान कृष्ण मानते हैं, जो पारम्परिक रागों के अङ्ग-भङ्ग में भी रस का अनुभव करता है। परम्परा के प्रति भी आसक्ति और परम्परा के विद्रोह के लिए भी भक्ति, यह संगम स्वयं में अद्भुत है ।

घराने के उद्भव में कारण

देशपांडे जी के अनुसार किसी घराने के आधार-दण्ड तीन हैं- (१) किसी प्रभावशाली गुरु की आवाज़ की प्रकृति, (२) घराने की रीत या अनुशासन और (३) कम से कम तीन पीढ़ियाँ।[२]

किराना

अपनी इस स्थापना के आधार पर श्री देशपांडे जी स्व० अब्दुल करीम खाँ का एक स्वतंत्र घराना मानते हैं, उनकी दृष्टि में स्व० अब्दुल करीम खाँ की दूसरी पीढ़ी में सुरेश बाबू माने, सवाई गन्धर्व और श्रीमती हीराबाई बड़ौदकर तथा तीसरी

पीढ़ी में गंगूबाई हंगल और श्री भीमसेन जोशी हैं।[३]

देशपाण्डे जी का कथन है- 'किराना घराने की आवाज़ लगाने की पद्धति गला सिकोड़कर आवाज लगाने की, आवाज चुराने वाली एवं 'नक्की' याने नाक से गाने की है।'[४] देशपांडे जी की सम्मति में किराने की गायकी में कल्पना के विलास, प्रतिभा तथा महत्ता का अभाव है। इस घराने के स्वर में मस्ती, लचीलापन, चमक, शुचिता और मंगल है। इस घराने के लोगों को सूक्ष्म स्वर स्थान सही-सही मिल गए हैं।[५]

उपर्युक्त वक्तव्य पर किसी की प्रतिक्रिया हो सकती है कि शुचिता और मंगल हमारे लिए पर्याप्त हैं।

आगरा

देशपांडे जी कहते हैं कि आगरा घराने की पद्धति वैसी ही नक्की तो है, लेकिन स्वर रेंक कर, ठेलकर अथवा खुरच कर लगाने वाली है[६] उसकी बंदिश और रचना श्रोताओं पर शत्रु के जोश से हमला बोलकर मन का अपहरण कर ले जाने वाली है, श्रोताओं से मिलने वाली दाद पर भी गोया 'महसूस' की तरह उनका हक है और श्रोता भी मानो हारे हुए होने के कारण उसे अदा करते हैं।[७]

ग्वालियर

देशपांडे जी कहते हैं- 'ग्वालियर-गायकी को भला-बुरा कहना तथा उसका मखौल करना आजकल रिवाज ही बन गया है।'[८] 'आज इस घराने का नाम-निशान तक नहीं रह गया।'[९] 'ग्वालियर की गायकी अत्यन्त प्रसाद युक्त होते हुए भी सीधी सादी तथा सरल थी। उसमें पेंच नहीं थे और न स्वर और लय की सूक्ष्म कारीगिरी हो।'[१०] इस घराने की बोलतान की क्रिया में कुछ साफ-सुथरेपन की आवश्यकता थी।[१२]

संभवतः श्री देशपांडे जी ने वयोवृद्ध गायक श्री कृष्णराव शंकर पण्डित का नाम नहीं सुना है। अस्तु, पूर्वोक्त उद्धरणों में ग्वालियर को गायकी को पेचों से हीन और सीधी-सादी कहा गया है ।

Scanned with OKEN Scanner

बड़ी मनोरंजक बात यह है कि देशपांडे जी बड़े मुहम्मद खाँ को ग्वालियर गायकी का मूल-पुरुष मानते हैं, यह भी मानते हैं कि इन बड़े मुहम्मद खां का गान छिप छिप कर सुनने के पश्चात् ग्वालियर के हस्सू खाँ हद्दू खाँ की जोड़ी तैयार हुई थी, यह भी कहते हैं कि अल्लादिया खाँ साहब की बलदार और पेंचदार गायकी पर पूर्वोक्त बड़े मुहम्मद खां के अनौरस पुत्र मुबारक अली खां का ही प्रभाव था।[१२]

इन वक्तव्यों को पढ़ कर किसी के भी मन में यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि वह ग्वालियर-गायकी किसकी है, जो सीधी-सादी है और वह ग्वालियर-गायकी किसकी है, जो पेचदार है। पं० वासुदेव बुआ जोशी और उनके शिष्य बालकृष्ण बुआ इचलकंरजीकर को किस कोटि में रखा जाना चाहिए, बड़े मुहम्मद खाँ को सुनकर उड़ाई हुई गायकी की शिक्षा हद्दू खां और हस्सू खाँ ने किसे दी, जो पेंचदार और बलदार थी।

भातखण्डे जी ने कहा है – 'समाज के साधारण स्वभाव का प्रभाव उसकी भाषा, शिल्प, कला इत्यादि पर भी पड़ता है।'[१३] महाराष्ट्र के गायकों को रेडियो-श्रोता उद्घोषक की घोषणा सुने बिना भी पहचान लेते हैं कि कोई महाराष्ट्रीय सज्जन गा रहे हैं, क्योंकि देशपांडे जो महाराष्ट्र के एक प्रतिनिधि-विचारक हैं, उनका विचार है- 'सङ्गीत में लय एक ऐसी प्रभावशाली चीज़ है कि सिर्फ उसके ही उत्कर्ष से रंजकता निर्मित होती है, उसी में लोग तल्लीन हो जाते हैं।'[१४] --- 'गतिशीलता यह एक ऐसी प्रभावशाली प्रवृत्ति है कि केवल उसकी वजह से भी रंजकता उत्पन्न हो सकती है।'[१५]

अल्लादिया खाँ की गायकी

देशपांडे जी सङ्गीत में केवल दो तत्व 'स्वर' और लय मानते हैं। राग की ओर न तो उनका विशेष ध्यान है और न शब्दार्थ और उच्चारण की ओर। राग-शत्रु गायक उनकी ओर से प्रशंसा के पात्र और अवतार हैं। देशपांडे जी की दृष्टि में अल्ला दिया खाँ की गायकी के गुण ये हैं- 'अल्लादिया खाँ की गायकी, अगर देखा जाय, तो बहुत सूक्ष्म और पेंचदार है। उसके अधिकांश प्रकार टेढ़े और वक्र हैं। स्वर का प्रत्येक तार दूसरे तार में महत्वपूर्ण फर्क के साथ किस प्रकार उलझाना, इसका मानो उसने एक शास्त्र ही बना रखा है। इस गायकी की लय एकदम विलम्बित है और उसमें एक जगह से दूसरी जगह पहुंचने की प्रक्रिया लय के डोल के

Scanned with OKEN Scanner

बड़ी मनोरंजक बात यह है कि देशपांडे जी बड़े मुहम्मद खाँ को ग्वालियर गायकी का मूल-पुरुष मानते हैं, यह भी मानते हैं कि इन बड़े मुहम्मद खां का गान छिप छिप कर सुनने के पश्चात् ग्वालियर के हस्सू खाँ हद्दू खाँ की जोड़ी तैयार हुई थी, यह भी कहते हैं कि अल्लादिया खाँ साहब की बलदार और पेंचदार गायकी पर पूर्वोक्त बड़े मुहम्मद खां के अनौरस पुत्र मुबारक अली खां का ही प्रभाव था।[१२]

इन वक्तव्यों को पढ़ कर किसी के भी मन में यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि वह ग्वालियर-गायकी किसकी है, जो सीधी-सादी है और वह ग्वालियर-गायकी किसकी है, जो पेचदार है। पं० वासुदेव बुआ जोशी और उनके शिष्य बाल कृष्ण बुआ इचलकंरजीकर को किस कोटि में रखा जाना चाहिए, बड़े मुहम्मद खाँ को सुनकर उड़ाई हुई गायकी की शिक्षा हद्दू खां और हस्सू खाँ ने किसे दी, जो पेंचदार और बलदार थी।

भातखण्डे जी ने कहा है – 'समाज के साधारण स्वभाव का प्रभाव उसकी भाषा, शिल्प, कला इत्यादि पर भी पड़ता है।'[१३] महाराष्ट्र के गायकों को रेडियो-श्रोता उद्घोषक की घोषणा सुने बिना भी पहचान लेते हैं कि कोई महाराष्ट्रीय सज्जन गा रहे हैं, क्योंकि देशपांडे जो महाराष्ट्र के एक प्रतिनिधि-विचारक हैं, उनका विचार है- 'सङ्गीत में लय एक ऐसी प्रभावशाली चीज़ है कि सिर्फ उसके ही उत्कर्ष से रंजकता निर्मित होती है, उसी में लोग तल्लीन हो जाते हैं।'[१४] --- 'गतिशीलता यह एक ऐसी प्रभावशाली प्रवृत्ति है कि केवल उसकी वजह से भी रंजकता उत्पन्न हो सकती है।'[१५]

अल्लादिया खाँ की गायकी

देशपांडे जी सङ्गीत में केवल दो तत्व 'स्वर' और लय मानते हैं। राग की ओर न तो उनका विशेष ध्यान है और न शब्दार्थ और उच्चारण की ओर। राग-शत्रु गायक उनकी ओर से प्रशंसा के पात्र और अवतार हैं। देशपांडे जी की दृष्टि में अल्ला दिया खाँ की गायकी के गुण ये हैं- 'अल्लादिया खाँ की गायकी, अगर देखा जाय, तो बहुत सूक्ष्म और पेंचदार है। उसके अधिकांश प्रकार टेढ़े और वक्र हैं। स्वर का प्रत्येक तार दूसरे तार में महत्वपूर्ण फर्क के साथ किस प्रकार उलझाना, इसका मानो उसने एक शास्त्र ही बना रखा है। इस गायकी की लय एकदम विलम्बित है और उसमें एक जगह से दूसरी जगह पहुंचने की प्रक्रिया लय के डोल के

Scanned with OKEN Scanner

साथ ही चलने वाली है। ताल की हर एक मात्रा का ही नहीं, उसमें चतुर्थांश या अष्टमांश भाग का स्पष्ट हिसाब देते हुए भी शान को बनाए रखने वाला और विवक्षित स्वर की या स्वरवल्ली की सुन्दरता को निखार कर दिखाने के लिए उसकी पार्श्वभूमि एवं पुराभूमि किस प्रकार की हो, इसका अनिवार्य रूप से विचार करने वाली है।'[१६] 'इस गायकी का मर्म उसका लयसंस्कारित स्वर ही है, यह यह खासतौर से फिर एक बार ध्यान में रखना जरूरी है।'[१७] 'लयसंस्कारित स्वर, कोमलता, दुलराहट, आन्तरिक डोल तथा टेढ़ापन यह सब साध्य करते करते यह गायकी अत्यन्त सूक्ष्म, विकट, काफी कुछ पूर्व संस्कारों तथा अभ्यास के बगैर जिसकी मनोज्ञता समझ में नहीं आती ऐसी अर्थात् सर्व सामान्य श्रोताओं के पल्ले ही न पड़े, इतनी कठिन हो गई है --- यह गायकी गायक-श्रोताओं के लिए ही है, यह कहना होगा।'[१८]

जब कलाकार को मात्रा के आठवें हिस्से तक का हिसाब चुकाने तक की चिन्ता हो और स्वर की रग-रग शृंखलाओं से जकड़ी हो, तब गायकी विकट के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगी, जहां सरलता का नितान्त अभाव हो और कलाकार का मन केवल नये नये पेचों में उलझा हो, वहां 'हृदय' की बात पूछने वाला कौन होगा। 'हिसाबी लय' निकृष्ट है, 'जिगरी लय' ही नैसर्गिक लय है।

स्व० अल्लादिया खाँ साहब का गाना हमने सुना नहीं। उनके पुत्र मंजी खाँ, ग्वालियर के रहमत खाँ से प्रभावित थे, इसीलिए अल्लादिया खाँ साहब उनसे नाराज़ रहते थे।[१८] श्रीमती केसर बाई और श्रीमती मोधूबाई में स्व० अल्लादियाखाँ की वास्तविक प्रतिनिधि कौन है (क्योंकि दोनों के कण्ठ स्वर की प्रवृत्ति में पर्याप्त अन्तर है) यह कहना कठिन है, श्री अल्लादिया खाँ के निकृष्ट श्रेणी[२०] के आवाज का प्रभाव इन दोनों में किस प्रकार अधिक पड़ा है, ये भी अधिकारी लोग ही जानें।

क्या रहमत खां में अपने पिता हद्दू खां की उस गायकी का कोई प्रभाव न था, जो उन्होंने बड़े महमूद खां से उड़ाई थी। यदि अल्लादिया खाँ को सुन कर मुहम्मद खाँ के पुत्र मुबारक अली खां के बल और पेच उड़ाना अपने लिए सौभाग्य की बात समझते थे।[२१] तो फिर मुहम्मद खाँ की तालीम सुन कर उड़ाने वाले हद्दू खां के पुत्र रहमत खाँ का प्रभाव अपनी संतान पर क्यों न सह सकते थे।

शोधकर्त्ता के लिए इन प्रश्नों का महत्व है। जब अल्लादिया खाँ साहब यह बात स्वयं कहते थे कि उन्हें मुबारक अली खाँ से शिक्षा लेने का अवसर नहीं

बद्धता नहीं है, लयकारी नहीं है, बोलतान नहीं, रीति नहीं, अनुशासन नहीं, कायदा नहीं, दो स्वर-संगतियों में वैधर्म्य रखने के सिद्धांत का एहसास नहीं।'[२५]

आगरा वालों के लिए कहा गया है- 'रीति, अनुशासन, कायदे और बंदिश के महत्व को ये इतना चरम सीमा तक ले गए कि उसकी वजह से स्वरों की और सुरों की नाज़ुक करामात का और, आलाप की ओर से ये उदासीन रहे, ऐसी जानकारों की मान्यता है।'[२६]

देश पांडे जी का कथन है कि अल्लादियां खां की गायकी ने लय संस्कारित स्वर को ही अपनी गायकी का माध्यम निश्चित किया। उनकी दृष्टि में गायकी का आधार बंदिश है। यदि बंदिश में भी किसी के अज्ञान से कभी कहीं भूल आ घुसी है, तो भगवान मालिक है।

श्री देशपांडे जी ने ग्वालियर गायकी की शिक्षा से गाना आरम्भ किया, फिर वे बारह वर्ष तक किराना वालों के प्रभाव में रहे और अंत में वे अल्लादिया खां के अनुयायियों की शरण में आये। स्पष्ट है कि बारह वर्ष तक संभव है कि वे भी आवाज को चुराकर, दबाकर और नाक में गाते रहे हों। १२ वर्ष के इस परिपक्व को हटाने के लिए उन्हें आवाज़ को अल्लादिया खाँ के अनुयायियों के मार्ग पर डालना पड़ा होगा और वे किसी घराने की शिक्षा लेने में दत्त चित्त रहे होंगे। उनका धैर्य ध्यान देने योग्य है, यदि उन्होंने १०,११ वर्ष आगरा वालों से भी शिक्षा ली होती तो उनकी गायकी में अवशिष्ट अंगों की भी पूर्ति हो जाती । जो दूसरों को ज्ञान देने के लिए अपने समस्त जीवन को दांव पर लगा देते हैं और जिन्हें स्वयं यशस्वी गायक बनने का मोह नहीं होता ऐसे लोग धन्य हैं।

घरानेदार गायकी में चौथा अध्याय बंदिश और आंतरिक कायदे में गायकों के लिए विशेषतया पठनीय है जिसमें बुनावट, बनावट और बंदिश का विवेचन तो अल्लादिया खां की परम्परा का विवेचन करता ही है इसमें और भी बातें हैं जो बहुमूल्य और माननीय हैं।

घरानेदार गायकी में शब्दार्थ का कोई भी महत्व देशपांडे जी की दृष्टि में नहीं है। वे उच्चारण की अशुद्धता को शब्द की सङ्गीत क्षमता मानते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

इतना तो माना जा सकता है कि राग जन्य आनन्द की अभिव्यक्ति के लिए सांगीतिक ध्वनियां और लय पर्याप्त है। कृष्ण केवल वंशी बजाकर गौओं और गोपियों दोनों को बुला लिया करते थे, परन्तु कृष्ण का नाम मुरलीमनोहर हुआ, गानमनोहर नहीं।

श्री देशपांडे जी यदि शब्दार्थ को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं तो गायक को भी उसके उच्च पद से गिराकर उसे सितार या सरोद बना देना चाहते हैं तो सचमुच उन लोगों को आपत्ति होगी जिनकी भाषा का लोभ शब्दार्थ भक्षणी गायकों के द्वारा किया जाता है।

अच्छा हो कि मराठी भाषा में बंदिश कराई जाएं, क्योंकि आकार ईकार, उकार, एकार और ओकार आदि की कमी मराठी भाषा में भी नहीं है, और यदि शब्दार्थ भक्षी संगीत मराठी भाषा का भी स्वाद चखें तो क्या हानि है ? पुरानी बंदिशों में प्रभुत्व भाषा के शब्दों का विनाश निःसंदेह उन पूर्वजों की आत्मा को कष्ट पहुंचायेगा जो पुरानी बंदिशों के सृष्टा है।

संदर्भ

१. घरानेदार गायकी, पृ० १४
२. घरानेदार गायकी, पृ० २४
३. घरानेदार गायकी, पृ० २४-२५
४. घरानेदार गायकी, पृ० ३१
५. घरानेदार गायकी, पृ० ३०-३१
६. घरानेदार गायकी, पृ० ३०
७. घरानेदार गायकी, पृ० ३१-३२
८. घरानेदार गायकी, पृ० २३
९. घरानेदार गायकी, पृ० २३
१०.घरानेदार गायकी, पृ० १४
११. घरानेदार गायकी, पृ० २४
१२. घरानेदार गायकी, पृ० ७४
१३. क्र. पु. मा., भा. ६, पृ० २९
१४. घरानेदार गायकी, पृ० ६५
१५. घरानेदार गायकी, पृ० ६६
१६. घरानेदार गायकी, पृ० ७४
१७. घरानेदार गायकी, पृ० ७५
१८. घरानेदार गायकी, पृ० ७६
१९. घरानेदार गायकी, भूमिका, पृ० ६
२०. घरानेदार गायकी, पृ० २४
२१. घरानेदार गायकी, पृ० १२
२२. घरानेदार गायकी, प्रस्तावना, पृ० १
२३. घरानेदार गायकी, पृ० २२
२४. घरानेदार गायकी, पृ० २२
२५. घरानेदार गायकी, पृ० ६२
२६. घरानेदार गायकी, पृ० ६३

Scanned with OKEN Scanner

ज़िकरी, जकरी, जक्करी, जगडी या झकरी

शेख बहाउद्दीन 'बाजन' बुरहानपुर के एक प्रसिद्ध सूफी हुए हैं, इनका जन्म १३८८ ई० में हुआ और मृत्यु १५०६ ई० में। अर्थात् इनकी आयु १२२ वर्ष रही, इन्होंने एक विशेष प्रकार के गेय प्रबन्ध की रचना की जो विभिन्न रागों में गाये जाते थे। इन प्रबन्धों का नाम इन्होंने 'ज़िकरी' रक्खा। कव्वाल ज़िकरियाँ गाते थे ।

इन ज़िकरियों के आधार पर नाच भी होने लगे। महाराष्ट्र में ज़िकरी को चक्करी कहा गया, तो ब्रज और कश्मीर में ये 'जकरी' या 'झक्कड़ी' कहलाई, कुछ स्थानों पर इन्हें 'जगड़ी' भी कहा गया ।

अकबर के काल में किमिडि नारायण देव द्वारा रचित 'सङ्गीतनारायण' में जक्करि का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

कोमलाङ्गैर्यदा नृत्यं भ्रमर्यादि विराजितम्।
सशब्दा च क्रिया यत्र ध्रुवसंपादिभेदतः।
यत्र चेष्टाविरहितं तन्ननृत्यं जक्करिर्मता।[1]

अर्थात् 'वह चेष्टाहीन नृत्य चक्करि है जिसमें कोमल अङ्गों से युक्त भ्रमरियाँ और ध्रुव इत्यादि होती हैं।'

जगड़ी का एक अन्य लक्षण इस प्रकार है—

पुच्चपुच्चकरौ पानमत्तौ गीतं एवभाशया।
तुरुष्कौ नृत्यतोयत्र तन्नृत्यं जगडीति च॥[2]

अर्थात् पुच्च पुच्च करने वाले तुर्कों का जोड़ा अपनी भाषा में लिखे हुए गीतों के अनुसार जहाँ नृत्य करता है वह नृत्य 'जगड़ी' कहलाता है ।

आगे चलकर 'ज़िकरी' का क्षेत्र कुछ विस्तृत हो गया। 'सङ्गीतदर्पण' में चतुर

Scanned with OKEN Scanner

दामोदर ने मुग़ल सम्राट जहाँगीर काल में यों कहा है—

यवन्याभाषया युक्तं यत्र गीतं धृताञ्चलम्।
कौलादिगजरा युक्तं माहंगेन विभूतिषतम्॥
विदध्याझर्तनं नानालयत्रय विचित्रितम्।
कोमलाङ्गैर्यदानृत्यं भ्रमर्यादिविराजितम्॥
सशब्दादिक्रियायत्र ध्रुवझंपादिभेदतः।
यत्र चेष्टाविरहितं नृत्यं तज्जक्करिर्मतम्॥
पारसीकैः पण्डितैश्चोद्ग्राहादि स्वस्यभाषया।
यद्गीतं जक्करीसंज्ञा यवनानामतिप्रियम्॥

अर्थात् यवनों की भाषा से युक्त जहाँ धृताञ्चल (सिर पर दुपट्टा डाले हुए), कौल और गज़लों से युक्त, 'आहंग' (राग के लिए फारसी शब्द) से विभूषित, तीनों लयों से सुसज्जित , भ्रमरी आदि से युक्त तथा ध्रुव, झम्पा आदि सशब्द क्रियाओं से युक्त, चेष्टा विरहित वह नृत्य 'जक्करि' कहलाता है जहां कोमल अङ्गों का प्रयोग हो। जिसमें पारसीक (ईरानी) पंडितों ने अपनी भाषा का आश्रय लेकर, उद्ग्राह इत्यादि की रचना की हो वो यवनों को अति प्रिय गीत 'जक्करि' कहलाता है। [३]

शिवाजी के पिता शाह जी के सभापंडित वेद ने अपने ग्रंथ 'सङ्गीतमकरंद' में जक्करि का लक्षण 'सङ्गीतदर्पण' से जैसा का तैसा उद्धृत कर दिया[४] और इसकी गणना देशी नृत्तों में की है। यहां इस पक्ष की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए कि ज़िकरी के इस प्रकार में मुसलमानों ने किसी नवीन गायन शैली को जन्म् नहीं दिया अपितु विषय के अनुसार इस नवीन प्रबन्ध का नाम रक्खा।

गुजरात में अमीर ख़ुसरो के समकालीन काज़ी महमूद दरियाई बीरपुरी (मृत्यु १३४० ई०) ज़िकरियों की रचना कर चुके थे। इन्होंने बिलावल, धनाश्री, मलार, केदारा, कल्याण, बिहागड़ा, सारङ्ग, रामकली, तोड़ी और आसावरी जैसे रागों में ज़िकरियाँ कही हैं और रागों को 'परदः' कहा है।[५] काज़ी महमूद दरियाई की एक ज़िकरी के शब्द यों हैं—

'एक समन्दर सात कहावे, धोनोस बादल मेंह बरसावे।
वही समंद हो बूँद दिखाले, नदियाँ नाले होकर चाले।
पीउ मिला गल लाग रही है, सुख मँह दुख की बात न कीजै।'[६]

Scanned with OKEN Scanner

'अर्थात् समुद्र एक ही है परन्तु लोग जो सात समुद्र कहते हैं, वही इन्द्रधनुष है, वही मेह बारसाने वाला बादल है, वही बूंद है जो नदी नाले होकर चलती है। उसी बूंद को समुद्र मिल गया, यह पिया के गले लग रही है। सुख के समय दुःख की बात करना उचित नहीं है, यह वास्तव में अद्वैतवाद है और इसमें जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का वर्णन है, लोग उसे व्यर्थ में मरण समझकर दुःख करते हैं।'

स्पष्ट है कि ऐसे विषय खानकाहों (सूफी मठों) तक सीमित रहे। कव्वाल इन्हें दरबारों में गाकर क्या पाते। आजकल ज़िकरियां लोक गीत कहलाती हैं।

यहाँ ख़याल के विषय में भी कुछ चर्चा कर देना अप्रासंगिक न होगा। शाह बुरहानउद्दीन जानम की रचनाओं का काल १५८२ ई० है, अर्थात् यह अक़बर के समकालीन थे, इनका लिखा हुआ एक ख़याल है—

अब सन्देसा मुझसे है शह का जब कब भागों अन्तर मिले।
पीर प्रेम के हेड़े मेरे नैनों माँझ जों कंकर मिले।
निस दिन जागे बिरह मारी न नींदा देखे नैन पड़े
पलकें मेरी आग बले क्यों सपने देखूँ सो खड़े।
क़ौल पिया तुझ आस लगी मन आस लगी तुझ पास रहन।
जब का झांसा तैं मुझ लाया इक तिल मुझे सास रहैं।
ना का पनिया मुझको लागा लोग दिवानी देख हँसै।
जग की हाँसी क्या मुझ होय, कहो सिरीजन कहाँ बसैं।[७]

यह ख़याल इस बात का अखंडनीय प्रमाण है कि जिन रचनाओं का विषय प्रिय का चिंतन होता था वे विषय की दृष्टि से सूफियों के यहाँ 'ख़याल' कहलाती थी, ख़याल की कोई अलग गायकी न थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि सदारङ्ग ने ख़याल में शब्दों को कम किया और उन्हें दरबारों में स्थान दिलाया ।

वर्तमान ख़याल गायकी में तानों की भरमार बड़े मुहम्मद खाँ की देन है, तो बोलतान आगरे वाले नत्थन खाँ की, शब्द और शब्दार्थ की उपेक्षा निरक्षर गायकों का प्रचार है। सदारङ्ग के युग में ख़याल गायकी ऐसी न थी ।

सन्दर्भ

१. भरतकोष, पृ० ८३७
२. भरतकोष, पृ० ८३७
३. सङ्गीतदर्पण– सरस्वती महल सीरीज़, पृ० २२६
४. भरतकोष, पृ० २२२
५. हज़रत अमीर खुसरो का इल्मे मूसिक़ी और दूसरे मकालात, रशीद मलिक, पृ० ३०३
६. मुसलमान और भारतीय सङ्गीत, ले० आ० बृ०, पृ. ११४
७. मुसलमान और भातमरीय सङ्गीत, ले० आ० बृ०, पृ० ११२

Scanned with OKEN Scanner

ध्रुवपद-धमार की लोकप्रियता कैसे संभव हो?

भारतीय सङ्गीत की गायन शैलियों में सबसे प्राचीन शैली 'ध्रुवपद' की है। ध्रुवपद का गायन कब से प्रारम्भ हुआ यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है, किन्तु अनुमानतः पाँच सौ वर्षों से यह शैली उत्तर भारत में लोकप्रिय रही है जैसा कि इतिहास से यह स्पष्ट होता है। भावभट्ट के ग्रन्थ 'अनूप सङ्गीत रत्नाकर' में ध्रुवपद के लक्षण इस प्रकार दिए हैं—

गीर्वाणमध्यदेशीय भाषासाहित्यराजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्न नर-नारी कथाश्रयम् ॥
श्रृंगाररसभावाद्यं रागालापपदात्मकम्।
पादान्तानुप्रासयुक्तं पादान्तयुगकं च वा॥
प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम्।
उद्ग्रहाध्रुवकाभोगान्तरं ध्रुवपदं स्मृतम्॥

उपरोक्त लक्षण के अनुसार ध्रुवपद की भाषा संस्कृत अथवा मध्यदेशीय हो, दो चार वाक्यों से युक्त हो, नर-नारी की कथा हो, शृंगार रस के भावों से युक्त हो, रागालाप और पद से सम्पन्न हो, जिसमें चार चरण हों ओर चरण के अंत में पादान्त अनुप्रास अथवा पादान्तयुग्म से युक्त हो। उद्ग्राह, ध्रुवक, आभोग और अन्तर से युक्त हो।

वर्तमान युग की धारणा यह है कि ध्रुवपद शैली सब लोगों के लिए उपयुक्त नहीं है। पं० भातखण्डे जी ने ध्रुवपद गायन को मर्दाना जोरदार गायकी कहा है। किन्तु यह बहुत हास्यास्पद बात है कि ध्रुवपद के उपरोक्त लक्षण में जहाँ शृंगार रस के भावों से युक्त कोई पद है, वहाँ उसमें शब्दों की सुन्दरता के साथ कोमलता भी होगी, तब इस शैली को केवल मर्दाना गायकी कहना उचित नहीं है।

'ध्रुवपद गान के समय उसी प्रकार नर्तन भी किया जाता था, जिस प्रकार

Scanned with OKEN Scanner

ठुमरी गाते समय अच्छन महाराज जैसे गुणी ठुमरी के भावों के अभिनय करते थे।'[१] अकबरी दरबार के प्रसिद्ध इतिहास लेखक अबुल-फज्ल ने 'दफ़ज़न' कही जाने वाली नारियों के विषय में परिचय देते हुए कहा है—

प्रधानतया वे पंजाबी नारियाँ 'दफ़जन' कहलाती हैं, जो दफ़ और ढोल बजाती तथा ध्रुवपद, सुहेला, विवाह संबंधी गीत अथवा वर्षगाँठ के गीत गाती है। पहले वे महिलाओं के सामने ही आती थीं, परन्तु आजकल वे जनता के समक्ष प्रदर्शन करती है।[२]

मानसिंह तोमर को अपने युग का सङ्गीत उद्धारक कहा जाता है। उसके युग का ग्रन्थ 'मानुकुतूहल' जिसका अनुवाद फारसी में 'रागदर्पण' में किया गया है, इस ग्रंथ में ध्रुवपद के लक्षण में सभी रसों का विनियोग है । 'ध्रुवपद गान' का प्रचार मानसिंह तोमर के पश्चात् मुस्लिम दरबारों में हुआ। पुरुष और नारियों दोनों ही उसका गान करती थीं। 'ध्रुवपद' गाते समय पदानुसार नृत्य भी होता था ।

आजकल इस गायकी के कलाकारों ने इस शैली को दंगल अथवा कुश्ती का रूप दे दिया है। उनके गायन में नीरसता और शुष्कता आ गई है। यही कारण है जिससे यह शैली जोरदार व मर्दाना कही जाने लगी । वास्तविकता तो यह है कि गायक और पखावजी की भिड़न्त होने से दोनों कलाकार एक दूसरे को पछाड़ने में लगे रहते हैं जिससे गायन रसहीन होने लगा और श्रोताओं की रुचि धीरे-धीरे शून्य होने लगी।

ध्रुवपद की गायकी

भातखण्डे जी का कथन है-'रामपुर की ओर तानसेनी शिष्य-परम्परा तथा पूर्व की और सभी स्थानों की ध्रुवपद-परम्परा में ताल की खट-खट बिल्कुल नहीं। पहले तो राग का सर्वांगपूर्ण आलाप (जिसे हम व्यवहार में नोम्-तोम् कहते हैं) करके, उसके बाद उसी राग का ध्रुवपद 'तालीमे-बरहुक्म' (शिक्षानुसार) शुद्ध मुद्रा एवं शुद्ध वाणी रखकर गाना ही वहां की प्रथा है । वे लोग लय की खट-खट होरी, सादरा, तराने इत्यादि गीतों में करते हैं।'[३]

'वर्तमान समय में गायक तथा पखावजी की सङ्गति का ध्रुवपद सुनने की बजाय प्रायः उनकी विसंगति या प्रतियोगिता का ध्रुवपद ही सुनाई देता है। परिणाम में

Scanned with OKEN Scanner

'कौन हारा, कौन जीता' इसकी दिल्लगी उड़ती है और सङ्गीतानन्द शून्य हो जाता है। इस प्रकार के गान का आदर यदि श्रोताओं द्वारा न हो तो, उचित ही है।'[४]

'तार-प्रधान गायकी में जब गायक-वादक 'ज़ोर-आजमाई करते हैं, तब गायकों को श्वास, स्वर इत्यादि के संतुलन पर अधिकार नहीं रहता, अंग प्रत्यंग को लय की कुश्ती में झंझोड़ डालने के कारण सङ्गीत-भूमिका में भूकम्प आ जाता है, जो माधुर्य्य और रस का विनाश कर देता है।'[५]

ध्रुवपद-गायकी में इसी विनाशकार प्रथा ने घुसकर उसका पतन किया। फलतः ध्रुवपद को 'शिकार का हाँका' कहा जाने लगा।[६]

आलाप

ध्रुवपद गायकी में सर्वप्रथम राग का आलाप प्रारम्भ करते हैं। 'आ+लाप' अर्थात् आसमन्तात (चारों ओर से) लाप -अभिव्यक्ति। आलाप का अर्थ राग का आरंभ करके अपने और श्रोताओं के मन को एक विशिष्ट रंग में रंग देना अथवा विशिष्ट आनन्द में निमग्न कर देना है यदि हम कलाकार और श्रोताओं के मन को किसी श्वेत वस्त्र की उपमा दें तो विभिन्न राग उस वस्त्र को तरह-तरह के रंग में रंग देने वाले रंग कहलाएंगे । वस्त्र जितना अच्छा धुला हो, उस पर रंग उतना ही अच्छा चढ़ता है, इसीलिए राग प्रस्तुत करते समय गायक और श्रोता के मन को शांत,स्थिर और राग द्वेष हीन होना चाहिए।

आलाप का प्रयोजन राग की स्थापना है। आलाप को हम किसी राग में गाई जाने वाली बंदिश की भूमिका भी कह सकते हैं। ध्रुवपद गायक पहले किसी राग का आलाप करते हैं तत्पश्चात् उसकी बंदिश प्रस्तुत करते हैं। आलाप में लाग-डाट, सूत-मींड, लड़क इत्यादि गमकों का प्रयोग होता है। इसीलिए आलाप में वे एक आलाप मंत्र का आधार होते हैं जिसके शब्द 'औऽम् अन्तरे त्वम्' है। इसको आलाप में 'ओ ऽम न तरे तो म्' बोला जाता है। इन अक्षरों की बढ़त 'ओ ऽ म न न न, न त रे ऽ तोम्' जैसी होती है। इन अक्षरों में ओंकार शामिल करके नोम् तोम् भी कहा जाता है। 'रे' को 'री' भी कहा जाता है ।

इन अक्षरों के विभिन्न संयोगों से 'अ न न न, न त रे ऽ' जैसे अक्षर समूह बनाए

Scanned with OKEN Scanner

जाते हैं। कुछ लोग 'रै न न न' भी बोलते हैं। 'ओम् अन्तरे त्वम्' आलाप मंत्र के इस आधार का विस्तार वेद-पाठ की विभिन्न शैलियों में है। इस पद्धति के रहस्य से अपरिचित लोग इसे 'नोम् तोम्' का आलाप कहते हैं। ' ओम अन्तरे त्वम्' का अर्थ है कि ' हे ईश्वर तू हृदय में है ।'

ध्रुवपद शैली के आलाप में लय का आनन्द द्विगुणित हो सकता है यदि इसका प्रस्तुतिकरण पखावज की संगति के साथ-साथ किया जाये। रामपुर-परम्परा में ऐसा व्यवहार में होता रहा है। अतः ध्रुवपद शैली को लोकप्रिय बनाने के लिए गायन का प्रथम चरण महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार स्वस्थान नियम के सभी नियमों का पालन करते हुए, नोम तोम् के आलाप में जोड़ आलाप के सुर व लय से सजाना एक कुशल गायक का गुण है। गायक की सफलता उसी में है जब उसका प्रदर्शन प्रारम्भ से ही श्रोताओं को स्वर-लय द्वारा रसमग्र कर दे।

स्व० भातखण्डे जी ने एक स्थान पर कहा है कि -'ध्रुवपद में दुगुन, चौगुन, बोल-बाँट, गमक इत्यादि प्रकार हो सकते हैं। रामपुर की तानसेन -परम्परा के ध्रुवपद गायक तो ऐसा भी कहते हैं कि प्राचीन काल में दुगुन, चौगुन, बोलतान इत्यादि प्रकार ध्रुवपद में निषिद्ध माने जाते थे। वे प्रकार केवल धमार गीत में चलते थे, परन्तु आजकल प्रचार में दुगुन, चौगुन और बोलतान ये प्रकार भी ध्रुवपद में पाए जाते हैं।'[७]

ध्रुवपद का स्थायी अन्तरा सुचारू ढंग से प्रस्तुत किया जाये, उसके शब्द स्पष्ट सुनाई दें। अतः ध्रुवपद के पदों का साहित्य सरल व सुन्दर होना आवश्यक है। लयकारी पदाश्रित होती है अतः पद की प्रत्येक पंक्ति अर्थपूर्ण हो और उसके स्वरों का उतार-चढ़ाव भी स्वाभाविक हो। इसलिए सुन्दर पदों का चयन होना भी गायक की सफल्ता का आधार है ।

धमार

धमार की धूमधाम केवल लोक जीवन अथवा वैष्णवों के मंदिर में ही नहीं थी अपितु मुग़लों के दरबार और अंतःपुर रंगीन धमारों से गूंजते थे। अकबर की राजधानी आगरा की, जो ब्रज-क्षेत्र है, ब्रज की होली देश भर में प्रसिद्ध रही है ।

तानसेन उनके वंशजों और शिष्यों ने भी धमारों की रचना की और लोकगीत

Scanned with OKEN Scanner

का यह प्रकार एक विशेष रूप धारण करके मुग़ल दरबार में प्रतिष्ठित हुआ ।

धमाल, धमार, धमारी इन तीनों रूपों का मूल एक ही है। संस्कृत धतु 'धम्' का अर्थ सुलगाना, भड़काना, शब्द करना, ज़ोर से फूंक मारना और बजाना है। इसी धातु से बने विशेषण 'धम्' का अर्थ सुलगाने वाला, भड़काने वाला, शब्द करने वाला इत्यादि है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'धम् इव ऋच्छति' हो सकती है, जिसका अर्थ होगा 'गान का वह प्रकार, जो प्रेरित करता हुआ अथवा फड़कता हुआ सा चले।'

लोक सङ्गीत में 'धमार' एक सामूहिक गान है जो टोलियों में गाया जाता है। होली खेलने वालों की टोलियां इस खेलती हुई धमार गाती हैं और इनकी सङ्गीत के लिए प्रधान वाद्य ढोल होता है। धमारों का वर्ण्य विषय होली से सम्बद्ध होता है, कन्हैया और गोपियों का होली खेलने का चित्रण भी धमारों की विशेषता है ।

दरबारों में गाये जाने वाले धमारों की सङ्गति 'बीन' और 'पखावज' से होती थी ।

उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध तंत्री वादक उस्ताद बहादुर हुसेन खाँ, ध्रुवपद गायक अमीर खाँ सदारङ्ग-परम्परा के थे। सदारङ्ग के संगीतकार प्रसिद्ध पखावजी भवानीदास जी की परम्परा के प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह थे। रामपुर दरबार के अन्य गुणी कलाकारों में महापण्डित दत्तराम जी का नाम उल्लेखनीय है जो स्वयं श्रेष्ठ वीणावादक थे। आचार्य्य बृहस्पति इसी कुल के थे जिनको बीन की शिक्षा प्राप्त थी, पखावज की शिक्षा तथा ध्रुवपद धमार शैली की शिक्षा विभिन्न परम्परागत उस्तादों से ग्रहण की थी।

संदर्भ

१. संगीत-चिन्तामणि- प्रथम खण्ड आचार्य्य बृहस्पति, पृ० ५४
२. आईने अकबरी का अनुवाद, पृ० ७३४
३. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग-६, भातखण्डे, पृ० ४६
४. क्रमिक पुस्तक मालिाक, भाग-६, भातखण्डे, पृ० ४६
५. संगीत-चिन्तामणि- प्रथम खण्ड आचार्य्य बृहस्पति, पृ० 60
६. संगीत-चिन्तामणि- प्रथम खण्ड आचार्य्य बृहस्पति, पृ० ६०
७. संगीत-चिन्तामणि- प्रथम खण्ड आचार्य्य बृहस्पति, पृ० ४३

Scanned with OKEN Scanner

पंजाब और सङ्गीत

पाँच नदियों से सिंचित उर्वरा भूमि से संयुक्त, स्वस्थ जलवायु से पूरित, लहलहाती हुए अन्न के पौधों से हरी भरी और श्यामल प्रतीत होने वाली पंजाब की भूमि वास्तव में स्वर्गोपय है। पंजाब नाम से जाना जाने वाला भू-भाग प्राचीन काल से ही सीमा की कटौती का शिकार रहा है। कभी इसकी सीमा अफगानिस्तान क्षेत्र को भी स्वंय में समाविष्ट किये हुए थी। बाद में इसकी उत्तरी पश्चिमी सरहदी सीमा हिन्दू कुश पर्वत श्रेणी (सम्प्रति पाकिस्तान) तक ही रह गई। कश्मीर प्रदेश भी पहले पंजाब के ही अन्तर्गत था, लेकिन वह भी कालांतर में अलग हो गया। भारत विभाजन के पश्चात् उत्तरी पश्चिमी सूबा, आधा पंजाब सिन्ध और बिलोचिस्तान के क्षेत्र में भारतीय पंजाब से अलग हो गए। पुनः स्वतंत्र भारत में नवम्बर १९६६ में पंजाब के विभाजन के फलस्वरूप हिमाचल प्रदेश व हरियाणा प्रदेश के क्षेत्र स्वतंत्र प्रदेश बनाकर पृथक् कर दिए गए। खण्ड-खण्ड हो जाने पर भी पाँच नदियों से सिंचित पंजाब की भूमि पंजाब के नाम से ही प्रसिद्ध रही। पंजाब के निवासियों को इस नाम से विशेष प्रेम है तथा इस नाम से उन्हें कुछ ऐसी आत्मीयता का बोध होता है कि पाकिस्तान के पंजाबी भू-भाग का नाम भी पंजाब ही रहा और भारतीय सीमा में भी उसका नाम पंजाब ही रहा तथा भारतीय सीमा में भी उसका नाम पंजाब ही रहा। इसीलिए 'पंजाब' से जाने जाने वाले अब दो भूमि-खण्ड विश्व के मानचित्र पर दिखाई देते हैं।

भिन्न-भिन्न कालों में पंजाब की सीमाएं घटती बढ़ती रहीं। ऋग्वेद के पंजाब में वह सारा भूभाग इसी सीमा के अन्तर्गत था जो सिन्ध और उसकी सहायक नदियों से सिंचित था। इन नदियों के ऋग्वैदिक नाम निम्नलिखित रूप में पाये जाते हैं-

१. सिन्धु (सन्धू)
२. रावी (परुशकी)
३. चिनाब (असूकी)
४. जिहलम (जेलम)

Scanned with OKEN Scanner

५. व्यास (विआप)
६. सतलुज (सतद्रुव)
७. सरस्ती (सरस्वती)[१]

इन्हीं सात नदियों के कारण इस भू-भाग को 'सप्त सिन्धु प्रदेश' की संज्ञा दी जाती थी। जिन पाँच नदियों के आधार पर इस प्रदेश को पंजाब कहा गया, उसमें सिन्धु व सरस्वती को छोड़कर शेष पांच नदियों की गणना की जाती है। सरस्वती नदी अब लुप्त हो चुकी है। शेष छः नदियों में सिन्धु के अतिरिक्त अन्य पाँच नदियों द्वारा अधिक भू-भाग सिंचित होने के कारण ही इस अंचल का नाम पंजाब पड़ा।

राजनैतिक एवं ऐतिहासिक अवस्था

अधिकांश इतिहासकारों द्वारा आर्यों ने लगभग १५०० ईसा-पूर्व पंजाब में प्रवेश किया।[२] इस जाति को सङ्गीत से कोई विशेष लगाव नहीं था। परन्तु फिर भी कुछ मूर्तियों तथा सिक्कों पर (इस काल के) वाद्य-यंत्रों के चित्र देखने को मिलते हैं। परन्तु एक विद्वान के अनुसार तत्कालीन आर्यों के मनोरंजन के अनेक साधनों में सङ्गीत को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।[३] राग-रङ्ग द्वारा तथा नृत्य (जिसमें स्त्री व पुरुष दोनों सम्मिलित रहते थे) द्वारा यह अपना मनोरंजन किया करते थे। आजकल भी पंजाब के गाँवों में गड़ा, सम्मी, तीआं आदि पुरुष-स्त्रियों के सम्मिलित नृत्य हैं। अघारी, भरुमी, करकरी, वाण और नादी कुछ ऐसे साजों के नाम हैं जिनका प्रयोग वह लोग राग-रङ्ग तथा नृत्य के लिए करते थे।[४] भारतीय आर्यों का प्रथम आवासीय अंचल पंजाब ही था तथा यहीं से सम्पूर्ण भारत में उनका प्रसार हुआ। पंजाब में ही वेदों की रचना हुई तथा यज्ञादि एवं कर्मकाण्ड का प्रथम सूत्रपात भी इसी भूमि पर हुआ होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इन धार्मिक कृत्यों के अवसर पर मंत्रों का सरचर पाठ पुरातन समय से ही परम्परागत रूप में चला आ रहा है जो आज भी उसी भाँति प्रचलित है। इसलिए आर्यों के प्राचीन स्थिति का अध्ययन वस्तुतः पंजाबी अंचल के प्राचीन सङ्गीत का ही अध्ययन है।

Scanned with OKEN Scanner

धार्मिक परिस्थितियां

हिन्दू धर्म के प्राणस्वरूप ग्रंथ 'रामायण' तथा 'श्रीमद्भागवतगीता' ही माने गए हैं जिनमें इस तथ्य का उल्लेख मिलता है कि जब धर्म की अवनति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचती है, तब ईश्वर संतों के लिए तथा धर्म के पुनरुत्थान के लिए अवतरित होते हैं।

गुरु नानक देव जी के अवतरित होने के युग में धार्मिक मर्यादाएँ तथा सामाजिक व्यवस्था दोनों ही शोचनीय दशा को पहुंच चुकी थीं। धर्म के क्षेत्र में आडम्बर और ढोंग अपनी चरम-सीमा पर था।

मुस्लिम आक्रमणकारियों के चरण इस धरती पर तेरहवीं शताब्दी ई० के आरम्भ में पड़ चुके थे तथा शताब्दी के अंत तक पूर्ण-रूप से जम गए थे। इस्लाम में सङ्गीतपूर्णतः वर्जित है। गायन तथा वादन को अधार्मिक कृत्य माना गया है। परन्तु कुछ उदार मुस्लिम शासकों ने भारतीय सङ्गीत को उच्च स्थान तो नहीं दिया, परन्तु इसके लिए वह घातक भी नहीं बने।[५] इसके विपरीत कुछ धर्मान्ध शासकों ने सङ्गीत को जड़ से अखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। ऐसी स्थिति में भारतीय सङ्गीत के शास्त्रीय स्त्ररूप की शिक्षा केवल गुरुद्वारों तथा मंदिरों में ही हो सकी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय सङ्गीत के प्रति मुसलमान शासकों का रवैया कुछ अच्छा नहीं रहा जिसका मूल कारण यह रहा कि मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थ कुरान में सङ्गीत को पूर्णतः त्याज्य माना गया है।[६] ऐसी दशा में मुसलमान शासकों द्वारा ऐसा कोई भी प्रयास करना असंभव था जिससे सङ्गीत की रक्षा की जाय, उसकी शिक्षा दी जाए या उसका विकास किया जाय। दरबारों में सङ्गीत के लिए कोई स्थान नहीं था। इन सात-आठ शताब्दियों में सुल्तान हुसैन शाह शर्की, अथवा अकबर या मुहम्मद शाह रङ्गीले को अपवाद मानना चाहिए। इन लोगों ने भी अपने आनंद के लिए सङ्गीत को एक मनोरंजन के माध्यम के रूप में माना, इसे विलास का एक साधन समझा, न कि भारतीय सङ्गीत के लिए उनके हृदय में वास्तविक दर्द था।[७] उन्होंने धार्मिक शिक्षा देने के लिए पाठशालाएं खुलवायीं, अरबी और फारसी भाषा एवं साहित्य के लिए मकतब खोले, दरगाहें खोलीं, लेकिन सङ्गीत की शिक्षा देने के लिए कहीं भी कोई भी प्रयास किया हो- ऐसे प्रमाण नहीं मिलते।

सङ्गीत के प्रति पंजाब के अभिजात्य वर्ग की प्रवृत्ति

किसी राज्य का अभिजात्य वर्ग ही सामंत अथवा रईस वर्ग की गणना में आता है। बादशाहों के युग में यह वर्ग शासकों के काफी समीप होता था तथा शासकों की रुचि के अनुसार ही व्यवहार करता था। यह वर्ग समयानुसार शासक का रुख देखकर ही किसी वस्तु को अपनाता अथवा त्याग देता था। अगर शासक धर्म-परायण हो तो सभी धर्म परायण होते थे, यदि शासक विलासी हो तो सभी विलासी हो जाते थे, यदि शासक सङ्गीत-प्रेमी होता तो सभी सङ्गीत-प्रेमी होने का दम भरते थे अन्यथा सङ्गीत के प्रति उदासीन हो जाते थे। साधारण शब्दों में यह वर्ग अवसरवादी वर्ग था। मुस्लिम शासन काल में प्रायः इस वर्ग में मुस्लिम ही होते थे। परन्तु इतिहास में एक दो जगह हिन्दू नाम भी दिखाई पड़ते हैं जैसे मुहम्मद शाह सूर का मंत्री हेमू था, जो जाति का बनिया था। इसी प्रकार अकबर के नवरत्नों में तानसेन, बीरबल, टोडरमल और मानसिंह हिन्दू थे। लेकिन सात आठ सौ वर्षों के मुस्लिम शासनकाल में ऐसे उदाहरण दो-चार से अधिक नहीं हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम शासकों का सङ्गीत के प्रति जो दृष्टिकोण होता था वही दृष्टिकोण अभिजात्य वर्ग का भी होता था। ऐसी विषम परिस्थितियों में पंजाब ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सिख-गुरुओं ने गुरुद्वारों में राग तथा तालबद्ध कीर्तन की प्रथा को अनिवार्य कर सङ्गीत को जीवन प्रदान किया तथा कीर्तन गायन का आधार पाकर राग-गायन शिक्षा एवं अभ्यास का विषय बना। सिखों की कीर्तन पद्धति का प्रभाव सगुण भक्तों के भजन कीर्तन पर भी पड़ा। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दोनों के मूल में धार्मिक भावना ही प्रधान थी।

सङ्गीत की रक्षा में धर्म का योगदान

हिन्दू धर्म से ही उत्पन्न सिख धर्म में भी प्रत्येक कार्य व्यवहार में भी धर्म-विहित रीति का ही अनुसरण किया जाता था, आदि गुरु श्री गुरु नानक देव जी ने कीर्तन के महत्त्व पर बल दिया था, परन्तु साधारण कीर्तन पर नहीं, बल्कि स्वरबद्ध व लयबद्ध कीर्तन पर। गुरु द्वारा सिखाए गए मार्ग का अनुसरण करना शिष्यों का परम कर्त्तव्य माना गया है, इसलिए कीर्तन के साथ-साथ सङ्गीत को भी मान्यता प्राप्त हो गयी। यद्यपि उस काल में सिख धर्म ने सुनिश्चित रूप प्राप्त नहीं किया था तथा न उसे सिख संज्ञा ही प्राप्त हुई थी। परन्तु गुरु नानक देव के शिष्य होने

के कारण ही उनके अनुयायियों में रागबद्ध कीर्तन का प्रचार हुआ। गुरु नानक देव जी अपने साथ भाई मरदाना मीरासी को लेकर देश-विदेश भ्रमण करते रहे तथा भजन कीर्तन के महत्त्व पर पर प्रकाश डालते रहे। गुरु नानक देव जी कीर्तन करते भाई मरदाना रबाब बजाते हुए कीर्तन में उनका साथ देते। इस प्रकार पंजाब की धरती ने भारतीय सङ्गीत की रक्षा में योगदान दिया।

दूसरी ओर मुस्लिम धार्मिक भावनाओं पर आधारित कव्वाली गायन का जन्म् हुआ जो मुसलमान जन-साधारण में अत्यधिक लोकप्रिय हुई।

मीरासी कौन थे

अरब में काव्य रचनाओं को धुनों में पढ़ने वाले लोग 'मीरासी' कहलाए तथा भारत में भी इन्हें इसी नाम से पुकारा जाने लगा। कालान्तर में इस वर्ग ने जाति विशेष का रूप ले लिया। मीरासी इस्लाम धर्म के अनुयायी ही थे परन्तु इस्लाम धर्म के जाति वर्ग विहीन होने पर भी सङ्गीत-सेवी होने के कारण मुसलमान समाज में हीन दृष्टि से देखे जाते थे। आज भी मुस्लिम समाज में इनका वही स्थान है। उच्च कुल के मुस्लिम आज भी इनके साथ व्यवहार नहीं रखते ।

पंजाब में लोक सङ्गीत के विभिन्न रूप

लोक सङ्गीत किसी भी संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। लोकगीत और उसका गायन जनसाधारण के हृदय में स्थित भावनाओं की अभिव्यक्ति का सरलतम माध्यम हैं। मानव हृदय का मनोरंजन करने वाली सभी कलाएं मानव के हृदय की अनुभूतियों से संबंधित होती है। इसलिए सङ्गीत-कला का अध्ययन करते समय लोक-सङ्गीत की उपेक्षा नहीं की जा सकती । वास्तव में लोकगीत व लोकनृत्य ही मनुष्य के हृदय की अनुभूतियों की सरल, निर्दोष, उन्मुक्त स्वच्छन्द तथा सहज अभिव्यक्ति है। भारत का प्रत्येक प्रान्त अपने विशिष्ट लोक सङ्गीत का धनी है, लेकिन पंजाब का लोक सङ्गीत अपनी विशेषताओं के कारण सम्पूर्ण भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित किए हुए है। पंजाब के बहुत से लोक-गीतों में शास्त्रीय रागों का आभास भी मिलता है। अन्य भाषाओं के लोकगीतों की भांति पंजाब के लोकगीतों को भी दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:—

Scanned with OKEN Scanner

१. मुक्तक लोकगीत
२. प्रबंधात्मक लोकगीत

मुक्तक लोकगीतों को भी तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-

अ. समय चक्र से सम्बन्धित लोकगीत
आ. संस्कार सम्बन्धित लोकगीत
इ. स्फुट लोकगीत

अ. समय चक्र के लोकगीत

इस श्रेणी के अन्तर्गत पंजाब के पर्वों, त्यौहारों तथा ऋतुओं से संबंधित लोकगीत आते हैं। ऋतुएँ छः हैं—वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर, बसंत, ग्रीष्म। वर्ष के बारह महीने होते हैं—पंजाबी गीतों में प्रायः बारह माह शीर्षक के अन्तर्गत भी रचनाएँ मिलती हैं। इन गीतों में उस महीने विशेष की प्राकृतिक छटा, उसके शीत, ताप, तथा मानव हृदय पर उसके प्रभाव आदि का वर्णन होता है ।

आ. संस्कार सम्बन्धी लोकगीत

अन्य प्रान्तों की ही भांति पंजाब में भी जन्म् से लेकर मृत्यु तक सभी संस्कारों के विभिन्न लोकगीत गाये जाते हैं तथा इनमें ताल के लिए लोक वाद्य ढोलक का प्रयोग होता है । विवाह संस्कार के गीत भी बहुलता से गाए जाते हैं। ये गीत सामूहिक रूप से गाये जाते हैं। इन गीतों का प्रयोग प्रायः विवाह से कुछ दिनों पहले ही आरमभ हो जाता है तथा विवाह के पश्चात् भी कुछ दिनों तक चलता रहता है। वर पक्ष तथा वधू पक्ष के गीतों में अन्तर होता है।

१. वर पक्ष के गीत- बधावा, घोड़ियॉ, छंद, सिठणियाँ
२. वधू पक्ष के गीत- विदाई, बटणे, सुहाग, सिठणियाँ, छंद।

इनमें छन्द व सिठणियाँ समान रूप से दोनों पक्षों में गायी जाती हैं। सुहाग के गीत अत्यन्त भावपूर्ण होते हैं, माता-पिता और गुरुजनों के पक्ष से गाए गए गीतों में आशीर्वादात्मक भावों का विशेष पुट रहता है । सुहाग के गीतों में कन्या

Scanned with OKEN Scanner

अपने माता-पिता से अनुरोध करती है कि उसके लिए सुशील, धनी तथा सम्भ्रांत परिवार का वर ढूंढा जाए। इन सुहाग गीतों में कन्या का ससुराल जाते वक्त सखियों से विदा मांगना, माता-पिता, परिवारजन, भाई-बहन इत्यादि से भूल न जाने की विनती रहती है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में इन्हें 'बाबुल' कहा जाता है।

घोड़ियाँ

यह प्रकार वर पक्ष द्वारा गाया जाता है, विवाह के वक्त घोड़ी पर चढ़कर जब वर प्रस्थान करता है तो इन गीतों में उस दृश्य का वर्णन रहता है। यह गीत स्त्रियों द्वारा ही गाया जाता है ।

सिठणियाँ

वर जब विवाह के लिए ससुराल जाता है तो अवसर पाकर वधू की बहनें व सहेलियाँ उसे घेर लेती हैं तथा हास-परिहास, व्यंग-विनोद से भरा संवाद आरम्भ हो जाता है। यह संवाद प्राचीनकाल में प्रायः छंदों में हुआ करते थे तथा इससे वर की साहित्यिक अभिरुचि एवं प्रत्युत्पन्न मतिशीलता की परीक्षा हो जाती थी। परन्तु आजकल यह रटे रटाए ही प्रयोग किए जाते हैं जो हास-परिहास का माध्यम बनते हैं।

मृत्यु सम्बन्धी गीत-वैण और अलाहणे

मनुष्य के जीवन का अन्त होने पर पंजाबी सभ्यता में गाये जाने वाले गीतों को अलाहणे और वैण कहा जाता है। इन गीतों के माध्यंम से दुःख के प्रभाव को दूर किया जाता है। इस प्रकार की रचनाओं में ऐसे गीत होते हैं जिससे शोकाकुल परिवार को सांत्वना मिलती है । जब कोई स्त्री ऐसे गीत अकेले गाती है तो उसे वैण तथा जब सामूहिक रूप में गाता है तो ये अलाहणे कहलाते हैं।

स्फुट लोकगीत

इन गीतों का विषय भी प्रेम तथा जीवन के प्रति अनुरक्ति है। इनके अन्तर्गत टप्पे, माहीआ, बोलियाँ, ढोले, जिंदुआ, किकली, थाल, जुगनी, हार सिंगार आदि

के गीत आते हैं।

प्रबन्धात्मक लोक काव्य तथा उनका गायन

अ. वीर रस काव्य- १. वार, २. जगनामा-वास्तविक घटनाओं का वर्णन।

आ. प्रेम काव्य- हीर-रांझा, मिर्जा-साहिब, सस्सी-पुन्नू, सोहनी-महिवाल, पूरन-भगत इत्यादि ।

गुरु ग्रन्थ साहिब में २२ वारे संकलित हैं जिनको १७ रागों में गाने का निर्देश है, जो निम्न हैं—

गुरु नानक देव	–	तीन वारे
गुरु अमरदास	–	चार वारे
गुरु रामदास	–	आठ वारे
गुरु अर्जुन देव	–	छः वारे
सत्ता वलवंड	–	एक वार

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि पंजाब का भारतीय सङ्गीत से बहुत गहरा सम्बन्ध है । शास्त्रीय, उप-शास्त्रीय, सुगम तथा लोक-सङ्गीत की कोई भी विधा इससे अछूती नहीं रही है । यदि शास्त्रीय सङ्गीत को ले लिया जाय तो नजाकत अली व सलामत अली की जोड़ी को सारा संसार ही जानता है। विभाजन के बाद भले ही वह पाकिस्तान चले गये हों, परन्तु वास्तविकता यही है कि वह भारतीय पंजाब की ही देन है। यदि उप-शास्त्रीय सङ्गीत की बात की जाय तो बड़े गुलाम अली खाँ साहब ने देश में ही नहीं वरन् विदेशों में भी भारतीय सङ्गीत को गौरवान्वित किया है। उन्हीं के अग्रज उ० बरकत अली खाँ साहब भी विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान चले गये थे। बड़े गुलाम अली खाँ साहब के सुपुत्र उ० मुनव्वर अली खाँ साहब ने भी सङ्गीत-जगत में पंजाब का नाम ऊँचा किया । पंजाब के ही मियाँ शोरी ने तो शास्त्रीय सङ्गीत को टप्पा नामक एक विशेष विधा प्रदान की है ।

Scanned with OKEN Scanner

संदर्भ

१. पंजाब दा ऐतिहासिक सर्वेक्षण- प्रो० गुरुचरन सिंह, पृ० २९

२. भारतीय सङ्गीत का इतिहास- उमेश जोशी, पृ० ११६

३. पंजाब दा ऐतिहासिक सर्वेक्षण- प्रो० गुरुचरन सिंह, पृ० ६०

४. पंजाब दा ऐतिहासिक सर्वेक्षण- प्रो० गुरुचरन सिंह, पृ० ७४-७५

५. यूनिवर्सल हिस्ट्री आफ म्यूजिक- राजा एस०एम० वागोरे, पृ. ५४

६. मुसलमान व भारतीय सङ्गीत- आ० के० सी० डी० बृहस्पती, पृ. ३

Scanned with OKEN Scanner

पंजाब का लोक-सङ्गीत

किसी भी देश का लोक सङ्गीत उसकी समृद्धि का परिचायक होता है। इसी प्रकार देश के अलग-अलग प्रान्तों का लोक सङ्गीत उस प्रान्त के रीति-रिवाजों, ऋतुओं मनाए जाने वाले त्योंहारों का परिचायक होता है। इसी प्रकार भारत का प्रत्येक प्रान्त भी अपने-अपने विशिष्ट लोक सङ्गीत के लिए प्रसिद्ध है। अपने-अपने प्रान्त की विशेषताएं ग्रहण किए हुए इनके लोकगीत व लोकनृत्य सम्पूर्ण विश्व में अपनी छटा का दिग्दर्शन कराते हैं।

पंजाब के लोकगीतों की अपनी अलग ही विशेषताएं हैं, इन्हीं विशेषताओं के कारण यहां का लोक सङ्गीत पूरे देश का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व का चहेता बना हुआ है। पंजाब लोक गीतों का भण्डार है जिसमें पंजाब की आत्मा बोलती है। इन्हीं के द्वारा इसका सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक पक्ष स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। पंजाब के लोक गीतों में जन्म से मरण तक, दु:ख सुख, कार्य-व्यवसाय, त्यौहार, हार-शृंगार, ऋतुओं इत्यादि के वर्णन मिलते हैं जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व धार्मिक पक्ष स्पष्ट होते हैं। पंजाब के लोक-गीतों में बहुत से शास्त्रीय रागों का आभास भी मिलता है। संगीतविदों द्वारा शास्त्रीय सङ्गीत के रागों के अतिरिक्त इनमें देसी सङ्गीत के रागों का भी उल्लेख मिलता है जिसमें सिन्दूरा, मांड, पहाड़ी आदि रागों की गणना पंजाब के देसी रागों में की है।[१] परन्तु इन रागों को देसी राग कहने का आधार क्या है? क्योंकि यह सभी राग शास्त्रीय सङ्गीत की सीमा के भीतर आते हैं। आजकल कुछ लोगों द्वारा यह लिखा जाने लगा है कि कुछ लोक धुनें शास्त्रीय सङ्गीत क रागों पर आधारित हैं, ऐसे लेखकों के विषय में कुछ भी कहना अथवा लिखना यहां का विषय नहीं है ।

पंजाब के लोकगीतों की परम्परा प्राचीन है। पंजाबवासी इन गीतों में ही जन्म् लेता है। लोरियों, किकलियों में पलता है तथा घोड़ियों, सिठनियों, छन्द तथा गद्दों में ब्याहा जाता है। इनका अन्तिम संस्कार भी स्यापों (गीत का एक प्रकार)

Scanned with OKEN Scanner

द्वारा किया जाता है। विवाह, बेटी की विदाई, पति प्रवास, भाई का प्यार, मां की ममता, सास बहू के झगड़े इत्यादि भावनाएं लोक गीतों में अधिक मिलती हैं तथा प्रतिदिन के जीवन के व्यवहारिक गीतों में भी अपने हृदय की भावनाएँ उन्मुक्त रूप से व्यक्त की जाती हैं। पंजाब के लोक गीतों के विषय में मानव-जीवन की प्रत्येक स्थिति का वर्णन रहता है, जैसे व्यवहारिक जीवन, व्यक्तिगत जीवन, कार्य्यगत जीवन इत्यादि। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक वस्तुएं, खेतों की हरियाली, पशु-पक्षियों का वर्णन, नदियों का पहाड़ों का वर्णन स्पष्ट रूप से किया जाता है। यह विषय सदैव समाज से सम्बन्धित रहता है। लोक गीतों की विषय वस्तु, स्वभाव तथा अधिक प्रचलित लोकगीतों को यदि वर्गीकरण का आधार मान लिया जाय तो पंजाबी लोक गीतों को निम्नांकित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है- (१) अनुष्ठान गीत (२) कार्य्य गीत (३) प्रेम गीत (४)वीर गाथाओं पर आधारित लोक गीत (५) नृत्य गीत (६) पेशावरों अथवा जातियों के गीत (७) विविध गीत ।

(१) अनुष्ठान गीत

इस वर्ग में संस्कारों, रीति-रिवाज़ों, मेलों व उत्सवों, ऋतुओं, धार्मिक उत्सवों व देवी-देवताओं से सम्बन्धित गीत रखे जा सकते हैं, जैसे (१) संस्कारों से सम्बन्धित गीत, (२) ऋतुओं व त्योहारों से सम्बन्धित गीत, तथा (३) धार्मिक अनुष्ठानों से सम्बन्धित गीत ।

संस्कारों से सम्बन्धित गीत

इन गीतों में पुत्र जन्म, तेहरवां, नामकरण, जनेऊ, मुण्डन, मंगनी, विवाह, घोड़ी, बटणा, सिठानियाँ, सुहाग, लावाँ, बेदी, डोली, पानी धारणा, मुकलावा तथा मरण गीत जैसे- अलाहुणियाँ, वेण, कीरने, वरे गंड, बरसी इत्यादि का वर्णन होता है ।

ऋतुओं तथा त्यौहारों से सम्बन्धित गीत

इन गीतों में बसन्त, तीआँ (तीज) पीगें, (झूला) राखी(रक्षा बन्धन), सकरांत (संक्रान्ति), होली, दीपावली तथा रामनवमी इत्यादि का वर्णन होता है।

Scanned with OKEN Scanner

धार्मिक अनुष्ठानों से सम्बन्धित गीत-इन गीतों में देवी की भेंटें, तुलसी, हनुमान, भजन, आरती इत्यादि गीतों का वर्णन होता है ।

२. कार्य्य गीत

लोक गीतों की इस श्रेणी में कार्य्य करते समय गाए जाने वाले गीत जैसे- गेहूं छांटने, कोल्हू चलाते वक्त इसमें गाये जाने वाले, चक्की पीसने, पानी भरने तथा चरखा कातने तक के गीतों का वर्णन रहता है। इन गीतों का 'श्रम गीत' भी कहा जा सकता है।

३. प्रेम गीत व लोक गाथाओं पर आधारित गीत

माहिया, टप्पे, बोलियाँ, जिन्दुआ, डोला, काफिआं, बिरहड़े आदि शैलियों में प्रेमगीत प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त प्रेम गाथाओं व प्रेम कथाओं से सम्बन्धित लोक गीत, जिन्हें संयोग- वियोग के गीत भी कहा जाता है, शामिल कर लिए जाते हैं। इन लोक गीतों में उन युगल प्रेमियों का वर्णन होता है, जिन्होंने प्रेम को अपना धर्म माना तथा उसकी पराकाष्ठा तक पहुंचे। इन्होंने अपने प्रेम को पाने के लिए अपना सर्वस्व होम कर दिया। इसमें सोहनी-महिवाल, लैला-मजनूँ, हीर-राझाँ, सस्सी-पुन्नू आदि प्रमुख हैं।

४. वीर गाथाओं पर आधारित गीत

इन लोक गीतों में ऐसे गीतों का वर्णन मिलता है जो वीरता से परिपूर्ण होते हैं। इनमें पंजाब के ऐसे योद्धाओं की गाथाओं का वर्णन मिलता है जिन्हें पंजाब के लिए अथवा देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया । ऐसे गीतों को वार कहा जाता है ।

५. नृत्य गीत

लोक गीतों के समान ही लोक नृत्यों में प्रयुक्त गीतों का भी अपना एक अलग महत्त्व है। भंगड़ा, गिद्दा, झूमर, बाघी, लुड्डी, डंडास इत्यादि लोक नृत्यों के लिए प्रयुक्त गीतों को नृत्यगीतों की इस श्रेणी में रखा जाता है ।

Scanned with OKEN Scanner

६. पेशावरों अथवा जातियों के गीत

तेली, धोबी, सपेरे, जोगी, मीरासी, भांड, गूजर, कुम्हार, बाजीगर आदि जातियों के गीत, जो अधिकांशतः इन्हीं लोगों तक सीमित रह जाते हैं, को इस श्रेणी में रखा जाता है ।

७. विविध गीत

ऐसी लोकोत्तिआं जो गीतों का रूप धारण कर लेती है तथा अन्य ऐसे गीत जो किसी श्रेणी में नहीं आते, उन्हें इस वर्ग में रखा जाता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार पंजाब के लोकगीतों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है— (१) मुक्तक लोकगीत तथा (२) प्रबन्धात्मक लोकगीत।[२] मुक्तक लोकगीतों को भी ३ श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है — (क) समय चक्र से सम्बन्धित लोकगीत (ख) संस्कार सम्बन्धी लोकगीत (ग) स्फुट लोकगीत।[३]

समय चक्र से सम्बन्धित लोक गीतों में पंजाब के पर्वों, त्यौहारों तथा ऋतुओं से सम्बन्धित लोकगीत आते हैं।[४] ऋतुएं छह मानी गयी हैं— वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, बसन्त तथा ग्रीष्म। लेकिन लोकगीतों की दृष्टि से इन्हें प्रायः तीन ऋतुओं के अन्तर्गत ही समाविष्ट कर दिया गया है, जिन्हें ग्रीष्मकाल, शीतकाल तथा वर्षाकाल कहा जाता है। इसके अतिरिक्त बारहमाहा भी गाया जाता है, जिसमें हर महीने के मौसम के अनुसार ही शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बारहमाहा काव्य के स्वरूप का वर्णन एक विद्वान यूं देते हैं :—प्राप्त पंजाबी साहित्य में गुरु नानक देव जी का बारहमाहा सबसे पुराना है, जिससे यह ज्ञात होता है कि गुरु नानक देव जी के काल में भी बारहमाह जैसी रचनाओं की परम्परा पूर्णतः विकसित थी, लोक साहित्य में भी तथा दूसरे साहित्य में भी।[५] इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि पंजाब के धर्म्म में भी लोकगीतों का सुदृढ़ स्थान प्राप्त था।

गुरु नानकदेव जी तथा गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा रचित बारहमाहों का वर्णन भी मिलता है। गुरु नानकदेव जी द्वारा रचित बारहमाहे का वर्णन 'तुखारी' राग

Scanned with OKEN Scanner

में मिलता है।[६] गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा रचित बारहमाहा राग 'मांझ' में अंकित मिलता है।[७] प्रस्तुत है एक बारामाह—

बिसाख दे महीने जी बिसाखी आई,
लूं परदेसी नाल वे उदासी छाई
जेठ घोडा हेठ वे बीबा पुष्पां पेण बलाई
चैत दे महीने सीन बाए जी नराते
सुन्नी पई सेज पिया, घर आई आप्पे।

संस्कार सम्बन्धी लोक गीतों में मुण्डन तथा चूड़ाकर्म संस्कार इत्यादि के गीत आते हैं, यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह संस्कार आदि के गीत अपना अलग ही महत्त्व रखते हैं। विवाह संस्कार के गीत सामूहिक रूप से गाए जाते हैं तथा ताल के लिए ढोलक का प्रयोग किया जाता है। यह मंगल गीत विवाह से काफी पहले ही आरम्भ हो जाते हैं। इन गीतों में वर तथा वधू दोनों पक्षों में गीत गाए जाते हैं। वर पक्ष के गीतों में बधावा घोड़ियां, छन्द तथा सिठणियाँ इत्यादि गाई जाती हैं तथा वधू पक्ष के गीतों में विदाई, बटणे के गीत सुहाग, सिठणियाँ, छन्द इत्यादि होते हैं।

सुहाग के गीत भावों से ओत-प्रोत होते हैं। इनमें परिवार के बुजुर्गों द्वारा दिए गए आशीर्वादक भावुक शब्द समाहित रहते हैं। विदा होते समय कन्या अपने परिवारजनों तथा सखियों से उसे याद रखने की विनती करती है। पिता को कहती है कि मैं तो यह आंगन छोड़कर जा रही हूं क्योंकि मुझे तुम इस आँगन से भेज रहे हो, परन्तु मेरे भाई को तुम सदा अपने पास रखते हो। अपने पिता से वह कहती है कि - मुझे एक दिन और अपने पास रख लो- जैसे-

रंग रंगीली डोली है मेरी रख लै इक दिन होर
बाबुला अज ना तू मैनू तोर-

चिड़िया दा चम्बा नामक गीत जिसे बावल कहा जाता है काफी प्रसिद्ध है जो एक भावुक गीत है तथा पंजाब में ही नहीं वरन् सम्पूण्र विश्व में प्रसिद्ध है- जिसका काव्य है—

साड्डा चिड़ियां दा चम्बा वे
बाबल असां उड्ड जाण
साड्डी लम्मी उडारी वे
बावल केहड़े देस जाणा
बावल बावल करदी माए
धी तेरी परदेस बियाहे
घर दीयां कुजियाँ सांभ ले माए
अस्सां उड्ड जाणा-२

घोड़ियाँ

पंजाब में दूल्हे को घोड़ी पर चढ़ाए जाने की एक महत्त्वपूर्ण प्रथा है। जब वर घोड़ी पर चढ़ता है तो उसकी बहन अथवा घर की स्त्रियों द्वारा यह लोकगीत गाया जाता है। पंजाब के लोकगीतों का यह एक प्रसिद्ध प्रकार है- एक घोड़ी का काव्य यहां दिया जा रहा है जो कि वर की बहन द्वारा गाया गया है—

जदों चढ्या वीरा घोड़ी वे
तेरे नाल भरवां दी जोड़ी वे
लटकैंदे वाल सुनहरे
सुणया वीरा मैं तैनू घोड़ी चढै दिया-

इस अवसर पर उस घोड़ी को भीगी हुई चने की दाल खिलाने की प्रथा भी है।

सिट्ठणियाँ

गीतों का ये प्रकार उमंगों से भरपूर होता है तथा दोनों पक्षों के युवा वर्ग के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण अवसर होता है। यह गीत सामूहिक रूप से गाए जाते हैं। दोनों पक्षों द्वारा एक दूसरे पर व्यंगबाण छोड़े जाते हैं तथा एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास किया जाता है परन्तु इस नीचा दिखाने में किसी पक्ष का अपमान करने की आकांक्षा नहीं होती वरन् मस्ती का पुट होता है। प्रस्तुत है इसका एक

Scanned with OKEN Scanner

काव्य -

कुड़ी तां साड्डी तिल्ले दी तार ऐ
मुंडा ता दिसदा कोई घुमिआर ऐ
जोड़ी ता फबदी नहीं।[८]

छन्द

छन्द का अर्थ साधारणतया काव्य की छह पंक्तियों से लिया जाता है जो पद्यात्मक रूप में हो। परन्तु पंजाब के लोक गीतों में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है, यहां पर इसका अर्थ सिर्फ पद्यात्मक रचना से लिया जाता है जिसमें हास-परिहास तथा व्यंग-विनोद से भरे पद्यात्मक सम्वाद होते हैं तथा प्रायः दोनों पक्ष ही इसका प्रयोग करते हैं तथा अकसर इनकी रचना भी सवाल जवाब के रूप में गाते-गाते ही कर ली जाती है, जैसे-

छन्द परागे आइये जाइये, छन्द परागे बालिआँ
सोने दा मैं महल चिणावां विच्च बिठावां सालिआँ

मृत्यु सम्बन्धी गीत

इस प्रकार के गीतों को वेण कहा जाता है तथा यह किसी की मृत्यु के उपरान्त गाये जाते हैं तथा यह स्त्रियों द्वारा ही गाए जाते हैं। जब कोई स्त्री एकल रूप में इसे गाती है तो यह गीत 'वैण' कहलाते हैं तथा जब कई स्त्रियों द्वारा सामूहिक रूप से इसका गायन होता है तब यह 'अलाहणे' कहलाते हैं। इन गीतों के लिए प्रायः भैरवी राग का प्रयोग किया जाता है । गुरु ग्रन्थ साहिब में भी गुरु नानक देव जी द्वारा रचित पांच अलाहणों का संकलन है।[९] लोकगीतों के इस प्रकार में प्रायः ऐसा काव्य प्रस्तुत किया जाता है जिससे दुःखी परिवार को सांत्वना मिलती है। जैसे-

एत्थे रह नहीं जाणा नीं
ऐह है चार दिणा दी जिन्दड़ी

Scanned with OKEN Scanner

इसके अतिरिक्त कुछ लोकगीत जो इन श्रेणियों में नहीं आते, परन्तु पंजाब के जन जीवन से जिनका गहरा सम्बन्ध है वह गीत इस श्रेणी में आते हैं तथा 'स्फुट लोकगीत' कहलाते हैं। वैसे अधिकांशतः इनका विषय भी प्रेम तथा जीवन के विभिन्न पहलू ही होते हैं। लोक गीतों के इस प्रकार में जिन्दुआ, किकली, टप्पे, बोलिआं, माहिया, जुगनी, थाल, ढोले तथा श्रृंगार तथा आभूषण इत्यादि के गीत होते हैं।

जिन्दुआ

जिन्दुआ पूर्वी पंजाब का लोकगीत है। यह सामूहिक रूप से गाया जाता है । एक व्यक्त गीत की एक पंक्ति उठाता है तथा शेष व्यक्ति 'अहा-अहा' कहते हुए सहयोग देते हैं। प्रस्तुत गीत नव विवाहित दम्पत्ति के जीवन का एक ऐसा प्रसंग है, जिसमें पति रोजगार की खोज में बाहर जाना चाहता है, किन्तु पत्नी उसे जाने से रोकती है। वह कहती है- तू कुछ समय के लिए और रुक जा, तेरे बोल मीठे लगते हैं, अभी पहला-पहला साल है, तेरे बिना जीवन सूना हो जायेगा, मुझे अपने साथ ले चल। गीत इस प्रकार है—

जिन्दा माही जे टुरियो परदेस, रोवण आँखियाँ अहा।
कि रोवण आँखियाँ ते खुल्ले केस, साड़ा जोगियाँ वाला भेस अहां।
कि साड्डा जोगियां वाला भेस, जिन्दड़ी रूल जाणी अहा।
कि जिन्दड़ी रूल़ जाणी मेरे मक्खणा
तेरे बाँझों वेहड़ा सखणा, इक पल बै जाणा अहा ।
कि इक पहल बै जाणा मेरे कौल, तेरे मिठड़े लगते बोल अहा।
तेरे मिठड़े लगदे बोल ओह----

टप्पे

पंजाब के लोक गीतों में 'टप्पे' का विशेष स्थान है । विवाह के अवसर, विवाह से कई दिन पहले ही स्त्रियां ढोलक के साथ गीत गाती हैं, जिनमें टप्पे अवश्य गाये जाते हैं।[११] टप्पों की संख्या बहुत अधिक है- यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत है- निम्नांकित छह टप्पे जो केवल स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं-

Scanned with OKEN Scanner

गड्डी चलदी ए लीकां ते, अगे माही नित मिलदा हुण मिलदा तरीकां ते।
तन्दूरी ताई ओई ए, खसमाँ नूँ खाण रोटियाँ चिटठी माइये दी आई ओई हे।
चिट्टी चादर सूतर दी, माही मेरा एँज टुरदा जीवें चाल कबूतर दी।
चलती गड्डी वी खलो गई ए,जेड़ा सानूं नित मिलदा ओदी बदली वी हो गईए,
कोठे ते काँ बोले, चिट्ठी मेरे माइये दी विच मेरा वी नाँ बोले।
गड्डी चलदी नूँ लुक लावाँ, अज मेरे माही आणा सिर धो के कलिप लावाँ॥[१२]

कई बार 'टप्पे' गाते समय आपस में मुकाबला शुरू हो जाता है और घण्टों तक चलता रहता है। मुकाबले में दो टोलियाँ बन जाती है। एक टोली प्रश्न करती हैं और दूसरी उसका उत्तर देती है। यदि 'टप्पे' गाते समय केवल औरतें ही हों, तो औरतों के ही दो दल बन जाते हैं अथवा (पुरुषों के भी होने पर) औरतों की पंक्तियां औरतें व पुरुषों की पंक्तियां पुरुष गाते हैं।[१३] एक उदाहरण देखिए–

लड़की-सुण हीर पई कैंदी ए,जिंदड़ी दी बाजी चन्ना ऐस खेड दी लग जांदीए
लड़का-सुण रांझा प्या कैंदा ए, रौशन रेंदी शर्मा परवाना जल जांदा ए।
लड़की-मिलने दी थाँ दस जा, जेड़ा सानूं लाया ए उस रोग दा नौ दस जा।
लड़का-मिलने दी थाँ कोई ना,जेड़ा तुहानूं रोग होया उस रोग दा नाँ कोई ना।
लड़की-पए वाण वटेंदे हो, जे तुसी नईं सोणे जिडा मान करेंदे हो।
लड़का- पए वाण वटेंदे हो, जे असी नईं सोणे क्यों मुड़-मुड़ वेंदे हो।[१४]

यदि मौका आ जाए तो एक दूसरे पर मीठे-मीठे कटाक्ष भी किए जाते हैं–

लड़की- तुसी भोले-भाले हो, कुज ते शरम करो धियाँ-पुतराँ वाले हो।
लड़का- बागे विच पंज नाखाँ, मां दी लाडलिए तैनूं लोकाँ विच को आँखाँ।

यदि अधिक 'मूड' में आ जाएँ, तो हँसी-मजाक की पंक्तियाँ भी जोड़ दी जाती हैं, जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में लड़की लड़के से कहती है कि 'बाग में आया करो, जब हम सो जाएँ, तो आप मक्खियाँ उड़ाया करो।'[१५]

लड़का-बागे विच फल कोई न, गोरियाँ गलां दे उते काली जुल्फाँ दा मुल कोई न।
लड़की- बागे विच आया करो, जद असी सौं जाइये तुसी मक्खियाँ उड़ाया करो।

लड़का- बागे विच पंज लड़ियां, असी पिछ्र नइओं छडणा भावें लग जाण हथकड़ियां।[१६]

एक स्त्री, जो अपने पति से रूठी हुई है, अपने पति से कह रही है—

'मैं अमृतसर की वड़ियाँ नहीं खाऊंगी, क्योंकि मुझे दड़ियों से पीटता है, मैं ये सहन नही कर सकती । तेरी चोटी मेरे हाथ में और मेरी चुटिया तेरे हाथ में हो, ऐसी दशा होते हुए कुछ नहीं खाऊंगी। मुझे अपने घर में रखना हो तो रख, अन्यथा निकाल दे। एक मैं ही हूं जो तेरे साथ गुजारा कर रही हूँ, यदि और कोई होती तो यहाँ न बसती।'[१७]

इसी प्रकार वह हर बार चीजों क नाम बदल-बदल कर कहती हैं, जैसे मैं पापड़ नहीं खाऊंगी , क्योंकि तूझे थप्पड़ मारता है, मैं छोले नहीं खाऊंगी क्योंकि तू तड़ातड़ बोलता है।[१८]

अम्बरसरे दियाँ बड़ियाँ दे मैं खांदी न, तू मरेंदा छड़ियां वे मैं सांदी न।
छनाछनक तेरी बोदी मेरे हथ, मेरी गुत तेरे हथ।
तू रखनाइँ रख वे, कडनाइँ कड्ड वे,
मइयों तेरे नाल बसिआँ ते होर कोई वसे वी न।
अम्बरसरे दे पापड़ वे मैं खांदी न, तू मरेंदा थप्पड़ वे मैं सांदी न।
छनाछनक तेरी बोदी मेरे हथ, मेरी गुत तेरे हथ।
तू रखनाइँ रख वे, कडनाइँ कड वे,
मइयों तेरे नाल वसिआँ ते होर कोई बसे वी न।
अम्बरसरे दे छोले वे मैं खांदी न, तू तड़ातड़ बोले वे मैं सांदी न।
छनाछनक तेरी बोदी मेरे हथ, मेरी गुत तेरे हथ।
तू रखनाइँ रख वे, कडनाइँ कड वे,
मइयों तेरे नाल वसिआँ ते होर कोई वसे वी न।
अम्बसरे दियाँ गुच्छियाँ वे मैं खांदी नख,तू मरेंदा जुतियाँ वे मैं सांदी न।
अछनाछनक तेरी बोदी मेरे हथ, मेरी गुत तेरे हथ।
तू रखनाइँ रख वे, कडनाइँ कड वे,
मइयों तेरे नाल वसिआँ ते होर कोई वसे वी न।[१९]

Scanned with OKEN Scanner

टप्पे अधिकतर कहरवा ताल में गाए जाते हैं। यह गायन शैली शास्त्रीय सङ्गीत में भी प्रचलित हो गई हैं, जिसके अविष्कर्ता मियाँ शोरी माने गए हैं। टप्पा परिवार के अन्तर्गत ही माहीआ, ढोला, बोलियाँ, छल्ला तथा झूमर इत्यादि लोक गीत भी आते हैं।[20]

माहीआ

कुछ विद्वानों के अनुसार माहीआ भी टप्पे का ही एक प्रकार है[२१] तथा कुछ लोगों के अनुसार माहीआ का प्राचीन नाम ही टप्पा है।[२२] प्रायः इसमें प्रेम प्रसंग का ही वर्णन होता है। परन्तु कुछ माहिए जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को दर्शाते हुए भी मिलते हैं। इन गीतों में प्रेमी व प्रेमिका के सम्वाद होते हैं-

सवाल-

हट्टिया ते फीता ई
सच दस नी बालौ
कदै याद वी कीताई[२२]

जवाब

मैं खड़ी होई आं विच वेले
कसमे खुदा नी माहिआ
याद करनी आं हर वेले[२३]

बोलियाँ

इसी प्रकार बोलियों का भी पंजाबी लोक सङ्गीत में एक महत्वपूर्ण स्थान है। पंजाब के लोकनृत्यों गिद्दा तथा भंगड़ा में भी इनका भरपूर प्रयोग किया जाता है। इनका काव्य भी प्रायःसवाल जवाब के रूप में ही होता है।

इसके अतिरिक्त लोकगीतों के कुछ अन्य प्रकार भी पंजाब में प्रचलित हैं जिनमें से कुछ गीत यहाँ दिए जा रहे हैं—

Scanned with OKEN Scanner

संस्कार गीतों में पुत्र-जन्म के समय पर भी गीत गाए जाते हैं। जैसे —

घर नंद के मिलण गवाइयाँ जी घर नन्द दे
अद्‌दी रात मेरा गोविन्द जमिया
जग विच धुम्मा पइयाँ।

इस गीत में जन्म् लेने वाले पुत्र की तुलना भगवान श्री कृष्ण से की गई है ।

लोरी गीतों की भी पंजाब के लोक गीतों में भरमार देखी गयी है। प्रस्तुत है एक लोरी काव्य—

बोल बोल बोल नी नीन्दा दिये परिये
काके दा वियाह भी असां किवें करिये
ऊं--- ऊं----ऊं-----
बोल बोल नी सुपत्तिये नींदे
राजे दे पुत्त की खान्दे ते पीन्दे

इस गीत में माँ ऊं---ऊं करके लोरी देती हुई अपने बच्चे को सुला रही है तथा उसे बहलाने के लिए नींद की परी से आग्रह कर रही है । साथ ही साथ अपने लाड़ले के ब्याह की बात भी कर रही है ।

विवाह इत्यादि के गीतों में मंगनी के गीत भी गाए जाते हैं। प्रस्तुत काव्य में कन्या अपनी मां को मुकलावा भेजने के लिए कहती है, साथ ही वह यह भी कहती है कि यदि तुमसे दहेज नहीं दिया जाता तो मुझे अङ्ग से लिपटे वस्त्रों के साथ पति के घर भेज दे—

माए नी मेरा अज्ज मुकलावा तोर दे,
जे मा नीं तेथों दाज ना सरदा,
अंगी दे नाल सानू तोर दे,
माए नी मेरा अज्ज मुकलावा तोर दे।

Scanned with OKEN Scanner

चैत के महीने में पति का वियोग सह रही औरत कुछ इस प्रकार गाती है—

चढ़ेया महीना चैत, दिलां दे भेद
कोई नहीं जाणदा, माही गिया परदेस
जी साड्डे हान दां।

लोहड़ी के पर्व पर भी कुछ विशेष प्रकार के लोकगीत गाए जाते हैं। इसी प्रकार बैसाखी पर भी विशेष लोकगीतों की एक परम्परा है। प्रस्तुत है लोहड़ी पर गाया जाने वाला एक गीत—

सुन्दर मुन्दरिए हो-
तेरा कौण विचारा हो-
दुल्ला भट्टी वाला हो-
दुल्ला धी ब्याई हो-
सेर शक्कर पाई हो-

इस त्योहार पर बच्चों की टोली घर-घर में लोहड़ी लेने जाती है तथा बच्चे ये गीत गाते हैं, हर पंक्तिके बाद ही हो ऐसा कहा जाता है।

पंजाब में चड्डिक का मेला भी मनाया जाता है तथा ऐसे मेलों पर भी लोकगीत गाए जाते हैं । प्रस्तुत है इस गीत की कुछ पंक्तियां जिसमें पति अपनी पत्नी से कह रहा है कि चलो चड्डिक का मेला देखने चलते हैं, तुम बेटे की फिक्र मत करो उसे मैं उठा लूंगा।

चल चल्लिए चड्डिक दे मेले
मुंडा तेरा मैं चक्क लूं॥

इसी प्रकार आभूषण गीतों की भी पंजाब में भरमार है। पंजाब की महिलाएं प्रयोग में लाई जाने वाली छोटी-छोटी वस्तुओं को भी सम्बोधित कर उनसे अपने हृदय की बात कहती है। चरखा, सूई, चूड़ा, मुंदरी, छल्ला इयादि ऐसी वस्तुएं हैं

Scanned with OKEN Scanner

जिन पर हमें गीत प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत है एक मुंदरी गीत—

मुंदरी दे जा माहिया, माहिया ढोल सिपाहिया।
मुंदरी मेरी पई सिरहाणे, माहिया साड्डी सार न जाणे।
ताँच दिलां दियाँ लाइयां, माहिया ढोल सिपाहिया।

इसी प्रकार छल्ला भी पंजाब के लोकगीतों का एक बहुत ही प्रसिद्ध प्रकार है ।

पंजाब के पारिवारिक जीवन में सास-बहू, देवर-भारी, नन्द-भाभी, बहन-भाई, पति-पत्नी के आपसी सम्बन्धों के विषय में भी अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। प्रस्तुत लोकगीत में सास द्वारा बहू को सताए जाने का वर्णन है, इसलिए पत्नी अपनी पति से कहती है कि मैं सास के साथ नहीं रह सकती ।

असां नहिं रैणा तेरी मां दे नाल,
बन्न लै गठरी, तुर पै नाल,
असां डोलियां कडिया जो इत्थे वे,
तेरी मां ने लाई नथ वे,
कित्ती सू बेशगनी साड्डे नाल,
अंसा नहीं रहनणा तेरी मां दे नाल ।

प्रस्तुत गीत में भाभी अपने देवर से कहती है कि ओ देवर हम दोनों एक ही उम्र के हैं क्या तू मुझे नहीं बतायेगा कि कुएं की ओर कौन सा रास्ता जाता है ।

ऐदर डेरा, ओदर डेरा,
वे देयोरा, सुए न रस्ता ई केड़ा,
वे साड्डे हाण देया।

प्रस्तुत गीत में भाभी अपनी नन्द को कहती है कि हे सांप जैसी ननद ये बात सुन ले कि जिन घरों में ननदों की बात मानी जाती है वह घर बसा नहीं

करते।

ni मैं तेरियां गल्लां दी मारी।
नणदे सप्प रंगिए ।
जित्थे नणदा दी सरदारी।
उह घर नहीं बसदे॥

प्रस्तुत गीत में बहन भाई के आने की प्रतीक्षा कर रही है—

वीर मेरे न बाग लवाया।
विच्च लवाइयां कलियां।
राहीयां नू राह पई पुच्छ दी।
कित्थे वीर दियाँ गलियाँ॥

पिता पुत्री से सम्बन्धित इस गीत में पुत्री पिता से कह रही है कि वह उसके लिए दुखी न हो, क्योंकि लड़कियों के भाग्य में तो दुख होते ही हैं-

महलां हठ मेरा बाप खड़ा। सुण-सुण नैण भरे।
ना रो बाबुल मेरेआ धीआं दे दुख बुरे॥

गीता पेन्तल अपनी पुस्तक पंजाब की सङ्गीत परम्परा में पृ० ३७ पर लिखती हैं कि पंजाब भाषा के लोक साहित्य में दो प्रकार के प्रबन्ध काव्य मिलते हैं। एक प्रकार तो ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्र अथवा उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर आधारित होता है और दूसरा प्रकार दन्त कथाओं पर आधारित है। पंजाबी प्रबन्ध काव्य को दो भागों में बांटा जा सकता है (अ) वीर रस काव्य तथा (आ) प्रेम काव्य ।

वीर रस काव्य भी दो रूपों में लिखा गया है- वीर तथा जंगनामा। 'जंगनामा' फारसी का प्रसिद्ध काव्य है।[२५] इसमें किसी प्राचीन युद्ध का वर्णन होता है। जंगनामा में वास्तविक घटना का वर्णन किया जाता है तथा ऐतिहासिक तथ्यों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। यह काव्य गेय नहीं होता।[२६]

पंजाबी संगीत में 'वार' गायन को बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है तथा गायन की यह शैली गुरु नानक देव से पहले भी प्रचलित थी।[२७] सिख कीर्तन के जन्म् के पश्चात् इस शैली को धार्मिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। गुरु ग्रन्थ साहिब में बाईस वारें संकलित हैं जिनको सत्रह रागों में गाया जाता है। इनमें गुरु नानक देव जी की तीन वारें, गुरु अमर दास की चार वारें, गुरु रामदास की आठ वारें, गुरु अर्जुदन देव की छह वों, सत्ता-बलवंड कर है। इन वारों को सिरी (श्री), माँझ, गौड़ी, आसा, गुजरी, बिहागड़ा, बड़हंस, सोरठ, जैतसिरी, सूही, बिलावल, रामकली, मरु, बसंत, सारंग, मलार, कान्हड़ा गाने का निर्देश गुरु ग्रन्थ साहिब में दिया गया है।[२८] वारों में वीर रस की ही प्रधानता रहती है तथा यह तार सप्तक में ही गायी जाती है। ढाढी जाति के लोगों में इस परम्परा का निर्वाह रहा है तथा अन्य जाति के लोगों को इसकी शिक्षा नहीं दी जाती ।

प्रेम काव्य के अन्तर्गत प्रेम कथाओं का वर्णन रहता है, जिनमें हीर रांझा, सोहनी-महिवाल, सस्सी, पुन्नू, मिर्जा-साहिबा, यूसुफ जुलैखा, पूरन-भगत इत्यादि प्रमुख हैं। इन्हें लोक गाथाएं भी कहा जा सकता है। यह गाथाएं लय प्रधान होती हैं। इन गीतों को पंजाब के प्रायः सभी लोकगायक गाते हैं तथा कभी-कभी शास्त्रीय गायक भी इन गीतों को गाते हैं जिससे इन गीतों की सुन्दरता में चार चाँद लग जाते हैं-

हीर-रांझा

पंजाब में 'हीर-राँझा' की प्रेम-कहानी काफी प्रसिद्ध है। कवि 'वारसशाह' ने यह प्रेमगाथा पद्य बद्ध की है, जो पुस्तक रूप में प्राप्य है और पंजाब में बहुत लोकप्रिय है। प्रस्तुत पंक्तियाँ उसी में से उद्धृत हैं, जिनमें कवि ने बताया है कि—

'जब हीर की डोली जाने लगी तो हीर चीखें मार-मार कर रोने लगी और उसने अपने पिता से कहा कि मुझे अपने घर में ही रख ले। मैं तो तेरी छाया में अपना समय मुसाफिरों की तरह बिता चली हूँ, यदि कोई बोल-चाल में मेरी ओर से त्रुटि हुई हो तो क्षमा करना। साथ में हीर ने यह भी कहा कि मेरी सब आशाओं पर पानी फिर गया है। ओ 'रांझा', तुझे मैं भगवान के सहारो छोड़कर जा रही हूं। मैं जालिमों के हाथों में पड़ गई हूँ। अब मैं यहां आकर फिर से पुरानी

Scanned with OKEN Scanner

यादें ताजा न कर सकूंगी, क्योंकि मैंने जो प्रेम की बाज़ी लगी थी, वह समाप्त किए जा रही हूं। एक गीत यहां दिया जा रहा है।'[२९]

डोली चढ़दियां मारियां हीर चीकाँ मैनूँ ले चले बाबला लै चले वे ।
मैनूँ रख लै अपने कोल बाबल डोली घत कहार नी लै चले वे॥
सानूँ बोल्या-चाल्या माफ करना पंज रोज तेरे घर रह चले वे।
तेरी छतर छाँवें रुख हेठ बाबल झट वाँग मुसफाराँ बै चले वे।।
जेहरे नाल ख्याल उसारदी साँ खाने सब उम्मीद दे ढह चले वे।
लै वे राझेआ रब नूं सौंपयों तूं बस जालमां दे असी पै चले वे॥
असाँ वत न आन के खेडणा ए बाजी इश्क-बाली करके तै चले वे।
कूड़ी दुनियाँ ते शान गुमान कूड़ा 'वारसशाह' होणी सच कह चले वे।

वारिस शाह द्वारा रचित हीर के शब्द यहाँ प्रस्तुत हैं, जो पंजाब में बहुत ही प्रचलित हैं—

हीर आखदिए जोगीआ झूठ बोले।
कौन रूठड़े याद मनाऊंदा।
वे ऐसी कोई ना मिल्या।
मैं ढूठ सकी जेड़ा गेंया नू मोड़ लिआंउदाई।
साड्डे चम्म दियां जूतियां करे कोई।
जेड़ा जिउदा रोग गवाउदां ई।
इक काँ न बाज तो कुंज खोई।
वेखां चुप्प है कि कुरलाउदां ई।
पॉवा चूरियां छेयो दे वाल दीते।
वारिसशाह जे सुणां ते आऊँदा ई॥

आज हीर विश्व के हर कोने में प्रसिद्ध है, जो लोग पंजाबी भाषा नहीं जानते वह भी इसकी धुन को सुनकर पहचान लेते हैं कि यह पंजाब की हीर है ।

पंजाब के लोग सङ्गीत में प्रयोग होने वाले लोक वाद्य

लोक सङ्गीत में लोक वाद्यों का एक प्रमुख स्थान है। लोकगीतों में लोकवाद्यों का प्रयोग किसी न कसी रूप में आ ही जाता है। इन वाद्यों के बिना लोक सङ्गीत प्राणहीन हैं। लोक वाद्यों में जन साधारण के हृदय में उठ रहे भावों तथा विचारों को साक्षात रूप प्रदान करने की शक्ति है। इनके द्वारा ही अन्तर्आत्मा में अंकुरित भावों को जीवन तथा साक्षात रूप प्रदान किया जा सकता है । स्वरवाद्यों का प्रयोग हृदय की सुख-दुखात्मक अवस्था एवं हर्ष व शोक के अवसरों पर किया जाता है तथा ताल वाद्यों का प्रयोग हर्षोल्लास को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। लोक गीतों में लोक वाद्यों का प्रयोग होते ही मानवहृदय हर्ष तथा उल्लास से भर उठता है तथा झूमने लगता है। वास्तव में लोक वाद्य ही लोक संगीत के प्राण हैं। पंजाब के लोक सङ्गीत में प्रायः निम्न वाद्यों का प्रयोग होता है —

(१) चिमटा (२) झांझ (३) मंजीरे (४) करताल (५) काटो (६) सांप (७) ढोल (८) ढोलक (९)खंजरी (१०) ढठ (११) अल्गोजा (१२) बीन (१३) इकतारा (१४) ढढ-सारंगी इत्यादि।

पंजाब के लोक गीतों की विशेषताएँ

(१) इनका काव्य सरल होता है।
(२) काव्य भावपूर्ण होता है।
(३) स्वर रचना सरल होती है।
(४) स्वरालंकरणों का प्रयोग होता है ।
(५) विभिन्न प्रकार के लोकवाद्यों का प्रयोग होता है ।
(६) लय तथा ताल सरल होती है।
(७) इनका रचयिता अज्ञात होता है।
(८) इनकी परम्परा मौखिक होती है।
(९) यह स्वयंभू, स्वतंत्र तथा प्राकृतिक होता है ।

Scanned with OKEN Scanner

संदर्भ

१. पंजाब दी लोकधारा, ले० सोहिन्दर सिंह बेदी, पृ० २०४
२. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० २७
३. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० २७
४. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० २७
५. पंजाबी बारहमाहे , ले० प्यारा सिंह पदम, पृ० ४६
६. आद गुरु ग्रन्थ साहिब तुखारी छंत महला १ बारहमाहा, पृ० ११०७
७. आदि गुरु ग्रन्थ साहिब बारहमाला, माझ महला ५ घरु ४, पृ० १३३
८. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० ३३
९. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० ३३
१०. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० २०१
११. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० १९७
१२. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० १९७
१३. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० १९८
१४. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० १९८
१५. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० १९८
१६. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० १९८
१७. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० १९९
१८. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० १९९
१९. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० १९९
२०. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० ३४
२१. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० ३५
२२. पंजाब दा लोक साहित्य, ले० सोहिन्दर सिंह बेदी, पृ० ३८५
२३. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० ३५
२४. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० ३५
२५. साहित्यिक निबन्ध, ले० प्रो० प्यार सिंह भोगल, पृ० ३३५
२६. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० ३७
२७. गुरु नानक जीवन दर्शन ते काव्य कला, ले० एस० ए० कोहली, पृ० ३११
२८. पंजाब की सङ्गीत परम्परा, ले० गीता पेन्तल, पृ० ३९
२९. मासिक पत्रिका सङ्गीत, लोक सङ्गीत अंक, ज० फ० १९६६, पृ० २००

Scanned with OKEN Scanner

लेखक के विषय में

इस पुस्तक के लेखक डॉ० सौभाग्यवर्द्धन का जन्म् २३ जनवरी सन् १९५९ ई० में कानपुर में हुआ। आप आचार्य्य बृहस्पति के सबसे छोटे पुत्र हैं । जब आपकी आयु ढाई वर्ष की थी तब इनकी माता श्रीमती साधना देवी का देहान्त हो गया तथा चौदह वर्ष की अवस्था तक आपका लालन-पालन अपनी बुआ श्रीमती सावित्री देवी के पास रियासत रामपुर में हुआ। दसवीं तक आपकी शिक्षा रामपुर के राजकीय मुर्तज़ा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में हुई तत्पश्चात् १९७७ ई० में आप चण्डीगढ़ आ गए तथा सङ्गीत गायन में (एम०ए० प्रथम व द्वितीय वर्ष) पंजाब विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक प्राप्त किए। १९८८ ई० से आप चण्डीगढ़ के विभिन्न महाविद्यालयों में सङ्गीत (गायन) की शिक्षा दे रहे हैं। आई०सी०सी०आर० की ओर से आप मारीशस तथा पंजाब कल्चरल अफेएर्ज की ओर से गुजरात, उड़ीसा, आन्ध्र-प्रदेश, मणिपुर, नागालैण्ड, बंगाल तथा कर्नाटक की यात्राएं कर चुके हैं। लेखक की प्रथम पुस्तक "भारतीय सङ्गीत के आप्त ऋषि आचार्य्य बृहस्पति एक अध्ययन" ८ अगस्त २००३ को प्रकाशित हुई थी ।

Scanned with OKEN Scanner